''हम्मीर महाकाव्य का साहित्यिक मूल्याङ्कन''

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
की डी० फिल्० उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध - प्रबन्ध

निर्देशिका
डॉ० किश्वर जबीं नसरीन
रीडर, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहावाद

अनुसन्धात्री
कु० प्रियङ्का

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2003

प्राक्कथन

किसी भी राष्ट्र का इतिहास उसके अतीत की घटनाओं का जीवंत विवरण होता है। जिससे प्रेरणा प्राप्त करके वह राष्ट्र अभ्युन्नति के पथ पर निरन्तर अग्रसरित होता रहता है। घटनाओं के प्रेरक तत्व के रूप में कोई न कोई महापुरुष अवश्य रहता है जो तात्कालिक समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं से प्रतिबद्ध होकर आविर्भूत होता है। भारत वर्ष का समृद्ध इतिहास भी इसका अपवाद नहीं है। इस शस्य श्यामला, वीर प्रसूता वसुन्धरा पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया जिनसे हमे सतत प्रेरणा प्राप्त होती रहती है।

भारत वर्ष के प्रान्तों में अन्यतम राजस्थान की वीर रत्नगर्भा धरित्री को ही अनेक महापुरुषों को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है जिनके कर्तृत्वों की कहानी आज भी समूचे देश में लोगों की जबान पर है। विदेशी आक्रान्ताओं के भीषण झञ्झावात को जिन शूरवीरों ने हँसते-हँसते झेल लिया, भले ही उसमें उन्हें आत्मोत्सर्ग ही क्यों न करना पड़ा हो, उनमे हम्मीर देव का नाम देदीप्यमान नक्षत्र के समान अनवरत प्रकाशित होता रहता है।

ईसा की चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो में जब यवन सम्राट अलावदीन खिलजी के आक्रमणों के भयङ्कर झञ्झालिन मे अनेको भारतीय नृप-तरु धराशायी हो रहे थे तो उस समय शरणागत रक्षक की भूमिका का निर्वाह करते हुए हम्मीरदेव ने यवन सम्राट् से स्वतः शत्रुता मोल ली। यद्यपि हम्मीर देव अलावदीन खिलजी के आक्रमण वेग को न सह सके तथापि आत्मबलिदान द्वारा उन्होंने (शतात किलत्रायत इत्युदग्रह शत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः) इस कालिदासोक्ति को सर्वतो भावेन चरितार्थ किया। हम्मीरदेव के

इसी उत्सर्ग की गाथा ने समकालिक और पश्चवर्ती कवियों को भी प्रभावित किया। फलतः अनेक महाकवियों ने हम्मीरदेव को लक्ष्य करके अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। इन्हीं महाकवियों में से एक है--नयचन्द्र सूरि। जिन्होंने 'हम्मीर महाकाव्य' की रचना की।

विद्यार्थी जीवन के उषः काल से ही संस्कृत के साथ-साथ इतिहास मेरा प्रिय विषय रहा है। संस्कृत साहित्य के महासागर में ऐतिहासिक महाकाव्यो की संख्या बिन्दु मात्र ही है। संस्कृत से स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मेरी प्रवृत्ति जब शोधकार्य के प्रति हुई तो मेरी इतिहास के प्रति अभिरुचि भी बलवती हो गयी। विभाग की वरिष्ठ उपाचार्या डॉ० सुश्री किश्वर जबीं नसरीन, जिनका सहज स्नेह मुझे विश्वविद्यालयीय अध्ययन के प्रारम्भ से ही प्राप्त है' के निर्देशन में शोध करने का जब अवसर प्राप्त हुआ तो मैंने उन्हें अपनी इतिहास के प्रति अभिरुचि बतायी। इस पर उन्होंने 'हम्मीर महाकाव्य' पर शोध करने की न केवल मुझे सलाह दी अपितु शोध विषय के रूप में इसे विभाग द्वारा आबण्टित भी करा दिया। जिसकी चरम परिणति के रूप में आज यह शोध प्रबन्ध लोकलोचन गोचर हो रहा है। शोधकार्य के प्रारम्भ से लेकर अद्यावधि डॉ० नसरीन ने जिस सहज वात्सल्य से मेरा मार्गदर्शन किया, विपरीत परिस्थितियों मे भी उन्होंने जिस प्रकार मेरा उत्साहवर्द्धन किया उसके लिये किसी भी प्रकार की कृतज्ञता-ज्ञापन उनके गौरव का सर्वथा विघातक होगा

विभागाध्यक्षा प्रो० मृदुला त्रिपाठी के प्रति भी मैं सहज श्रद्धावनत हूँ, क्योंकि इनकी प्रेरणा मेरे लिए सदैव मूल्यवती रही है।

परम श्रद्धेय गुरुवर्य श्री श्रीकान्त मौर्य एवं श्री विज्ञमित्र शास्त्री जी का आशीर्वाद एवं स्नेह सदैव मेरा मार्ग दर्शन करता रहा है। परम श्रद्धास्पद

पिता श्री प्रेमनाथ वर्मा एवं ममतामयी माँ श्रीमती लीलावती वर्मा के वात्सल्य एवं आशीर्वाद का ही फल मेरा शोध प्रबन्ध है। यदि माता-पिता की सुखद छाया मेरे ऊपर न होती तो शायद शोधकार्य पूरा करना मेरे लिए सम्भव न होता। इनके प्रति अनृण कामना ही मेरा घोर अपराध होगा। यही मान कर मेरी लेखनी सहसा अवरुद्ध हो जा रही है। इसी सन्दर्भ मे श्रेद्धेय मातामह श्री रामनरेश वर्मा का भी उल्लेख अप्रासंगिक न होगा जिनका स्वप्न ही शोध प्रबन्ध के रूप में परिणत हुआ है। उनकी प्रेरणा सदैव मेरे लिए दीपस्तम्भ का कार्य करती रही है। मैं अपनी मातृष्वसा श्रीमती उर्मिला वर्मा की भी सर्वथा कृतज्ञ हूँ जिन्होंने विषम परिस्थितियो मे अपना प्यार व आशीर्वाद देकर मुझे सदैव शोधकार्य में प्रवृत्त किया।

पितृतुल्य अभिभावक श्री रामदास जी एवं माता (स्वर्गीया) श्रीमती लीलावती का आशीर्वाद भी मेरे शोध प्रबन्ध सम्पादन का प्रकाश स्तम्भ रहा है। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकाशन की औपचारिकता व्यक्त करना मेरे लिए मनसा, वाचा, कर्मणा सम्भव नहीं है।

मैं परवीन दीदी एवं शीरी दीदी के प्रति भी श्रद्धावनत हूँ जिन्होने शोध काल में असीम स्नेह दिया।

शोध प्रबन्ध के सुचारु सम्पादन में अग्रजा सुश्री डा0 जहाँआरा की प्रेरणापूर्ण बातें भी मेरे लिए सदैव प्रेरक रही हैं। अपने वात्सल्य से आप मुझे हमेशा सिंचित करती रही हैं। आप इसी विश्वविद्यालय के मानव विज्ञान विभाग की सफल शोधकर्त्री रह चुकी हैं, वर्तमान में कृषि मान्य विश्वविद्यालय, नैनी, इलाहाबाद में मानव विज्ञान विभाग की विभागाध्यक्षा भी हैं। मैं अपने अध्ययन के प्रसङ्ग में अपने मातुलत्रयी अनुराग, अनुपम, आशुतोष, अनुजद्वय शशाङ्क, शिवाङ्क और बहन प्रगति को कैसे विस्मरण कर सकती हूँ जिनकी

स्नेह परम्परा मेरे लिए सर्वदा स्फूर्तिदायक रही है।

छात्रावास जीवन की सुख, दुख की साथी वन्दना दीक्षित दीदी, अम्बेश्वरी, राज, बेबी परवीन, एवं किरन सिंह के प्रति भी मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जिनके असीम स्नेह ने मुझे शोधकार्य पूरा करने में सम्बल प्रदान किया।

मैं कम्प्यूटर कर्मी श्री प्रवेश कुमार जी एवं श्री जितेन्द्र जी की कृतज्ञ हूँ। आप लोगों का समयबद्ध प्रयास ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पूर्णता का प्राण है।

इस शोध प्रबन्ध की प्रस्तुति में जिन विद्वानों के ग्रन्थों से सहायता प्राप्त हुई है, उनके प्रति मैं सादर आभारी हूँ। शोध प्रबन्ध मे जो अच्छाइयां हैं वे गुरुजनों की देन है और जो त्रुटियाँ हैं वे मेरी अल्पज्ञता के कारण है।

निर्देशिका
डॉ० किश्वर जबी नसरीन
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
K.J.Nasreen
4.8.2003

शारदाराधिका
कु० प्रियङ्का
कु० प्रियङ्का

विषय अनुक्रमणिका

क्रम सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	**प्राक्कथन**	
2.	**प्रथम अध्याय**	1 – 33
	संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य परम्परा का आरम्भ और उसका विकास क्रम	
क	ऐतिहासिक महाकाव्यो की प्रमुख प्रवृत्तियॉ	
ख	ऐतिहासिक महाकाव्यो का सक्षिप्त परिचय	
	1. नव साहसांक चरित	
	2. विक्रमाक देव चरित	
	3. राजतरंगिणी	
	4. कुमार पाल चरितम्	
	5. पृथ्वीराज विजय काव्य	
	6. वसन्त विलास महाकाव्य	
	7. वीरभानूदय महाकाव्य	
	8. सुर्जन चरित महाकाव्य	
	9. अजितोदय महाकाव्य	
	10. ईश्वर विलास महाकाव्य	
	11. कीर्ति कौमुदी	
	12. सुकृतसंकीर्तन	
3.	**द्वितीय अध्याय**	34 – 68
	हम्मीर महाकाव्यकर्ता नयचन्द्र सूरि एवं उनकी कृतियों का परिचय	
	क. हम्मीर महाकाव्य के रचयिता नयचन्द्र सूरि	
	ख. नयचन्द्र सूरि के पूर्ववर्ती गुरु	
	ग. नयचन्द्र का स्थितिकाल एवं जन्मस्थान	

ड. नयचन्द्र का व्याक्तत्व

च. पाण्डित्य

छ. ऐतिहासिक महाकवियो मे स्थान

ज. कृतियो का परिचय

1 रम्भा मजरी

2. हम्मीर महाकाव्य

3 हम्मीर महाकाव्य का रचनाकाल

5. **तृतीय अध्याय** 69 – 113

हम्मीर महाकाव्य की कथावस्तु और कथानक औचित्य

क. हम्मीर महाकाव्य की कथावस्तु

ख. कथानक औचित्य

6. **चतुर्थ अध्याय** 114 – 153

हम्मीर महाकाव्य का ऐतिहासिक महत्त्व

क. महाकाव्य मे वर्णित राजाओ का विवेचन

ख. हम्मीर महाकाव्य मे वर्णित राष्ट्रीय भावना

7. **पंचम अध्याय** 154 – 175

हम्मीर महाकाव्य का महाकाव्यत्व और उस पर ग्रन्थान्तर प्रभाव

8. **षष्ठ अध्याय** 176 – 270

रसादि दृष्टि से हम्मीर महाकाव्य का विवेचन

क. रसादि विमर्श

ख दोष

ग. गुण

घ. अलंकार

ड. छन्द

च. सूक्तियाँ

9. सप्तम अध्याय 271 – 308

पात्रों का चरित्र चित्रण और तात्कालिक समाज का चित्रण

10. अष्टम अध्याय 309 – 329

प्रकृति चित्रण

11. नवम अध्याय 330 – 366

महाकाव्य में संकेतिक प्रमुख भौगोलिक स्थानों आदि का परिचय

क नदियाँ

1. वर्णनाशा

2. शिप्रा नदी

ख. प्रमुख दुर्ग

1. रणस्तम्भपुर दुर्ग

2. चित्रकूट दुर्ग

3. अजयमेरू दुर्ग

4. माण्डलकृतदुर्ग

ग. प्रमुख मन्दिर

1. अर्बुदा देवी मन्दिर 2. वस्तुपाल मन्दिर

3. अचलेश्वर मन्दिर 4. विमलवसही मन्दिर

5. महाकालेश्वर मन्दिर 6. शाकम्भरी मन्दिर

घ. प्रमुख नगर

1. काशी, कांची, 2. अवन्ती

3. गोपालचल नगर 4. वक्षस्थल पुर

5. कुन्तलदेश 6. मालवदेश

7. काश्मीर देश 8. खण्डिल्ल

9. सिरोही वर्धनपुर

ड. प्रमुख पर्वत

1. मलय शैल 2. अर्बुदाचल

च प्रमुख आश्रम

1. वशिष्ठ आश्रम

2. श्रीआश्रम

3. तीर्थराज पुष्कर

छ. प्रमुख सरोवर

1. जैत्रसागर सर

2. पद्मसर

3. पुष्कर सर

12. **उपसंहार** 367 – 374

13. **सहायक ग्रन्थों की सूची** 375 – 381

प्रथम अध्याय

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य परम्परा का आरम्भ और उसका विकास क्रम—

(क) ऐतिहासिक महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

(ख) ऐतिहासिक महाकाव्यों का संक्षिप्त परिचय

1. नवसाहसाङ्क चरितम्
2. राजतरंगिणी
3. कुमारपालचरितम्
4. पृथ्वीराजविजय काव्य
5. वसन्त विलास महाकाव्य
6. वीरभानूदय महाकाव्य
7. सुर्जनचरित महाकाव्य
8. अजितोदय महाकाव्य
9. ईश्वर विलास महाकाव्य
10. कीर्तिकौमुदी
11. सुकृतसंकीर्तनम्

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य परम्परा का आरम्भ

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरजं भयम्।।

मानव संस्कृति के प्रवर्तक भारत वर्ष के वेद, उपनिषद, स्मृति आदि सम्पूर्ण भूमण्डल में प्राचीन काल से जिस प्रकार सर्वाधिक गौरव प्राप्त किये हैं उसी प्रकार यहाँ के महाकवियों ने भी निरन्तर ललित-साहित्य के द्वारा इस देश के मस्तक को उन्नत किया है। कौन ऐसा विद्वान होगा जिसने **महाकवि कालिदास, भवभूति, बाणभट्ट, भारवि, श्रीहर्ष, जयदेव, पण्डित राजजगन्नाथ** की कथा को न सुना हो। काव्य निश्चय ही सहृदयों के हृदय में प्रवेश कर सरलता से सम्पूर्ण अभीष्ट की प्राप्ति करवाता है, ऐसा विद्वानों से ज्ञात हुआ है। इस कारण नीति सदाचार आदि की शिक्षा काव्य के माध्यम से प्राचीन काल से ही भारत में प्रचलित है।

काव्य के द्वारा इस भूमण्डल पर प्राचीन काल में इतिहास का भी प्रचार हुआ था। प्राचीनकाल में इतिहास को याद करना अत्यन्त नीरस कार्य था। किन्तु काव्य पद्धति से यदि किसी ने इतिहास को बाँधा तो उसी से सभी लोगों के मन में दीर्घकाल तक प्रवर्तित हुआ और आगे चलकर मानव समाज को स्थिरता प्रदान किया।

अनेक युगों पूर्व कौरव पाण्डवों आदि के चरित्र को कौन जान पाता यदि **महाभारत** में उसका वर्णन न हुआ होता।

संस्कृत साहित्य में जिस प्रकार पौराणिक वृत्तियों का आश्रय लेकर महाकवियों ने महाकाव्यों का प्रणयन किया उसी प्रकार ऐतिहासिक कथावस्तुओं का आश्रय लेकर समय-समय पर अनेक काव्यों और महाकाव्यों की रचना की। गुणवान विद्वानों के लिए राजा लोग प्रति वर्ष लाखों मुद्रायें ग्रामादि

देकर ग्रन्थ रचना में समर्थ कवियों और प्रौढ़ पण्डितो को अपने राज्य में सम्मान पूर्वक निवास क़रने के लिए आश्रय देते थे। महाकवि **कालिदास** कल्पना प्रसूत महाकाव्यों के ही जन्मदाता नहीं हैं अपितु ऐतिहासिक काव्य निर्माताओं में उनका सर्वप्रथम परिगणन उचित ही है जिसमें **रघुवंश महाकाव्य** ऐतिहासिक महाकाव्यों में सर्वप्रथम है जो अपने नाम के अनुरूप ऐतिहासिकता को प्रकट करता है। इसमें सूर्यवंशीय पौराणिक राजाओं का वंशानुक्रम से ऐतिहासिक चरित्र-चित्रण किया गया है। **रघुवंश** में राम के चरित्र वर्णन के लिए **दिलीप, रघु** आदि राजाओं का ऐतिहासिक वर्णन किया गया है। इस प्रकार केवल ऐतिहासिक वृत्ति पर आश्रित, रघुवंश के समान अन्य किसी महाकाव्य का निर्माण नहीं हुआ है।

इतिहास का आश्रय लेकर ललित काव्य निर्माण की परम्परा संस्कृत साहित्य में निश्चय ही नवीन नहीं है। परन्तु यह भी सत्य है कि संस्कृत भाषा की रचनाओं में ऐतिहासिक महाकाव्यों की संख्या अत्यन्त न्यून है।

कुछ ग्रन्थ इतिहास का आश्रय लेकर तो लिखे गये हैं किन्तु उसमें इतिहास की प्रधानता होने से काव्यात्मकता का परित्याग कर दिया गया है। गुप्त काल के कवि **वत्सभट्टि** ने कुछ प्रशस्तियों को स्थापित किया। **वाणभट्ट** ने राजा **हर्षवर्धन** के चरित्र का आश्रय लेकर **हर्षचरित** नामक काव्य की रचना की। इसे हम ऐतिहासिक काव्य निर्माण श्रृंखला की प्रथम रचना कह सकते हैं। **कल्हण** की **राजतरंगिणी**, **शंकुक** रचित **भुवनाभ्युदय**, काव्य को हम ऐतिहासिक काव्यों की श्रेणी में रख सकते हैं। हमारे ऐतिहासिक महाकाव्यों में ऐतिहासिक महाकाव्यत्व की दृष्टि से **पद्मगुप्त 'परिमल'** रचित **'नवसाहसांकचरित'** को इतिहासकारों ने प्रथम महाकाव्य माना है।

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक काव्य परम्परा का आरम्भ

संस्कृत के ऐतिहासिक काव्यों का मूल निश्चय ही **ऋग्वेद** की संवाद-सूक्तियों में मिलता है।

उसके पश्चात् **ब्राह्मण ग्रन्थों** में इतिहास, आख्यान और पुराणो का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में यज्ञों में, संस्कारों, उत्सवों और अन्यान्य अवसरों पर ब्राह्मणग्रन्थों की कथा सुनने की प्रथा प्रचलित थी। ऐतिहासिक काव्य के निर्माताओं जिसमें **बौद्ध, जैन** भी सम्मिलित थे, वे बौद्धकाल से पूर्व के इतिहास, प्राचीन आख्यानो से, पुराणों से और गाथाओं से पर्याप्त सामग्री प्राप्त किये। **महाभारत** में विस्तृत इतिहास का वर्णन प्राप्त होता है। अनुमान किया जाता है, कि ऐतिहासिक काव्य परम्परा के मूल तथा विकास में सैकड़ों प्राचीन कथायें सहायक हुई हैं। **रामायण** और **महाभारत** की रचना में अनेक पुरानी कथायें ही मुख्य कारण प्रतीत होती है। पाश्चात्य विद्वान तो इस प्रकार कहते हैं कि, 'संस्कृत साहित्य में वास्तविक इतिहास ग्रन्थों का निर्माण हुआ ही नहीं है। उनके मतानुसार संस्कृत के ऐतिहासिक काव्यों में तिथि, विषय और घटनाओं के सन्दर्भ में प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त नहीं होती। परन्तु जिस दृष्टि से प्राचीन आलोचकों ने संस्कृत के ऐतिहासिक ग्रन्थों की आलोचना की है, वह नितान्त भ्रमयुक्त है। इतिहास के आधुनिक ग्रन्थों को आदर्श मानकर संस्कृत ग्रन्थो का पर्यालोचन उचित नहीं है।

हमारे भारतीय आदर्श के अनुसार ऐतिहासिक काव्यों का उद्देश्य तिथि, घटनाओं आदि का वर्णन मात्र नहीं है अपितु जीवन के सनातन सिद्धान्तों का, महापुरुषों की जीवन चरित्र को प्रदर्शित कर राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्थान में सहायता प्रदान करना है। **ऐतिहासिक ग्रन्थ, पुराण** और **रामायण,**

महाभारत ही वस्तुतः हमारे लिए ऐतिहासिक ग्रन्थ है। मानव जीवन के शाश्वत आदर्शों के प्रतीक के रूप मे इन ग्रन्थों का सभी लोगों के लिए, सभी देशों के लिए और सभी कालों में महत्व प्राचीन काल से स्वीकार किया गया है और आज भी स्वीकार किया जाता है।

हम वर्तमानकाल में **महाभारत** के जिस स्वरूप का अवलोकन करते हैं वह वस्तुतः पूर्व के स्वरूप से भिन्न है जो निम्न पद्य में दिखायी पड़ता है।

आचरव्युः कवयः केचित सम्प्रत्याचक्षते परे।
आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि॥''

इति

अतः इतिहास को कुछ कवियों ने पूर्व की तरह कहा। कुछ इस प्रकार कहते हैं कुछ भविष्य में कहेंगे। ऐतिहासिक महाकाव्यों का विकास अनेक प्रकार से धीरे-धीरे हुआ।

ऐतिहासिक महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1. ऐतिहासिक महाकाव्यों के रचयिता प्रायः राज्याश्रित महाकवि थे। वे अपने आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा के लिए व कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए काव्यों का निर्माण किये। आश्रयदाताओं के जीवन से सम्बद्ध यदि कोई घटना अप्रिय तथा प्रतिकूल थी तो कवियो ने प्रायः उसका वर्णन ही नहीं किया अथवा उनके अनुकूल कुछ परिवर्तन करके उनका वर्णन किया। यथा—**वस्तुपाल** वस्तुतः किसी पुनर्विवाहित महिला का पुत्र था किन्तु उसकेजीवन पर आश्रित लिखे महाकाव्यों में कहीं भी इस घटना का संकेत नहीं मिलता है।

2. ऐतिहासिक महाकाव्यों में मुख्य कथावस्तु तो ऐतिहासिक ही होती है

किन्तु उसमें घटनाओं का अतिशयोक्ति वर्णन तथा काल्पनिक घटनाओं की अधिकता दिखायी पड़ती है।

3. उनके नायकों के शौर्य प्रदर्शन के लिए नायक की दिग्विजय यात्रा का कहीं-कहीं काल्पनिक विवरण भी कवियों ने किया है।

4. कुछ महाकाव्यों में वर्णित घटनाओं, तिथियों का वर्णन इतिहास के अनुकूल नहीं दिखायी पड़ता।

5. ऐतिहासिक महाकाव्यों में प्रायः नायक की उत्कृष्टता प्रदर्शित करने केलिए उसकी वंश परम्परा तथा उसकी कुल की उत्पत्ति का वर्णन पौराणिक पद्धति के अनुसार प्राप्त होता है। यथा—**चालुक्य वंश** की उत्पत्ति को कवि ने ब्राह्मण कुल से वर्णित किया है। इसी प्रकार **हम्मीर महाकाव्य** में भी **चाहमान वंश** की उत्पत्ति कवि ने **भगवान भास्कर** से प्रदर्शित किया है।

6. इस प्रकार महाकाव्यों में नायक का जन्म, विवाह, राज्य प्राप्ति युद्ध विजय आदि का अत्यन्त विस्तार से वर्णन किया गया है।

7. सब जगह प्रतिनायक की अपेक्षा नायक का सभी प्रकार से उत्कृष्टता प्रदर्शित किया गया है।

8. अन्य महाकवियों ने भी इस प्रकार ऋतु वर्णन, जलक्रीड़ा, वन विहार,सम्भोग-वियोग आदि का भली-भाँति वर्णन किया है।

9. संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य विद्वानों मे **कालिदास, माघ, भारवि, श्रीहर्ष** के समान महाकवियों की तरह इस संसार में अपने यश फैलाने की इच्छा से प्रायः कवियों ने अनेक ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना की। दूसरी तरहसे जैन संस्कृत साहित्य में मुनि **भद्रसूरि** के द्वारा शान्ति

नाथ की चरित्रकथा का वर्णन करने के लिए महाकाव्य की रचना किया। उन्होंने गर्व से कहा है यथा—

ये दोषान् प्रतिपादयन्ति सुधियः श्रीकालीदासोक्तिषु,
श्रीमद् भारविमाघपण्डितमहाकाव्यद्वयेऽप्यन्वहम्।
श्री हर्षामृतसूक्तिनैषधमहाकाव्येऽपि ते केवलं,
यावद् वृत्तविवर्णनेन भगवच्छान्तेश्चरित्रे गुणान्।।
इति।

दूसरे कवि की इस प्रकार की गर्वोक्ति से स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि **कालिदास, भारवि** महाकवियों जैसे कवियो की तरह अपने महाकवित्व से जगत में यश का प्रसार किया।

गोपाचल के तात्कालिक नरेश **वीरमदेव तोमर** ने एक बार राजसभा में प्रश्न किया कि इन प्राचीन कवियों की तरह मनोरम, सरस काव्य निर्माण में समर्थ कोई विलक्षण प्रतिभावान कवि दिखायी नहीं पड़ता है। अतः यह लज्जा और चिन्ता का विषय है।

तब इस प्रकार की व्यङ्ग्योक्ति को सुनकर महाकवि **नयचन्द्रसूरि** ने **हम्मीर महाकाव्य** के सदृश विलक्षण और अत्यन्त महत्वपूर्ण महाकाव्य की रचना किया। कविवर हरिश्चन्द्र ने **धर्मशर्माभ्युदय, वस्तुपाल** ने **नरनारायणनन्दनम्, जिनपालोपाध्याय** ने **सनत्कुमार चरित** की रचना की। इस प्रकार महाकवियों ने ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन-चरित का आश्रय लेकर ऐतिहासिक महाकाव्यों का निर्माण किया।

उन तीन जैन महाकाव्यों में से एक में जिसके सम्पूर्ण सर्ग में चित्रकाव्य का प्रयोग किया गया है। जिससे ऐसा प्रतीत होता है पाण्डित्य प्रदर्शन ही कवि का प्रधान उद्देश्य है। माना जाता है उन्होंने यश प्राप्ति के लिए

पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए ही इस महाकाव्य को लिखा है। इस प्रकार ऐतिहासिक महापुरुषों का, वीरों और राजाओं के जीवन चरित का आश्रय लेकर अपने आश्रयदाताओं की कीर्तिवर्द्धन के लिए और अर्थ लाभ के साथ-साथ विद्वत्मण्डली में पाण्डित्य और कवित्व प्रदर्शन के लिए महाकवियों ने समय-समय पर ऐतिहासिक महाकाव्यों की रचना की तथा इतिहास ग्रन्थों का पर्यालोचन किया।

ऐतिहासिक महाकाव्यों का संक्षिप्त परिचय

नवसाहसांकचरितम्

इस महाकाव्य में **धारा** नगर के सुप्रसिद्ध **भोजराज** के पिता **साहसांक प्रशस्ति** से युक्त **सिन्धुराज** का विवाह **शशि प्रभा** नाम की राजकुमारी के साथ वर्णित है। इस महाकाव्य के निर्माता **परिमलगुप्त** पूर्व सिन्धुराज के ज्येष्ठ भ्राता मुञ्ज के सभाकवि थेजिसकी उपाधि **वाक्पतिराज** थी। **मुञ्ज** गुणग्राही तथा स्वयं सरस्वती के उपासक सुकवि थे। मुञ्ज के परलोक चले जाने पर पद्मगुप्त ने स्वयं को निराश्रित मान लिया किन्तु सिन्धुराज ने अपने जीवन में परिमल गुप्त का तब से अन्त तक सम्मान किया जिससे परिमल गुप्त अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये। उनके प्रति अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए इस महाकाव्य को स्नेह निर्माण किया। इसका निर्माण 1005 ईस्वीय सन् में हुआ ऐसा इतिहास विद् मानते हैं।

अष्टादश सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य के बारहवें सर्ग में सिन्धुराज से पूर्ववर्ती समस्त **परमारवंशीय** राजाओं का कालक्रमानुसार वर्णन प्राप्त होता है। इसकी ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिकता उस समय के शिलालेखों में विद्यमान है। रचना की दृष्टि वैदर्भी रीति का यह सर्वोत्तम उदाहरण है। यह

काव्य आरम्भ से अन्त तक प्रसादगुण से परिपूर्ण है। प्राकृतक दृश्यो के वर्णन में सिद्धहस्त ये महाकवि गुण मे कालिदास का अनुकरण करते हैं।

अतः परिमल गुप्त ने उस काल में कालिदास के समान सम्मान प्राप्त किया। यहाँ पर प्रसाद गुण एवं अलंकार से युक्त पदावली दृष्टव्य है—

सत्यं वदाम्यंग न जातु मिथ्या,
यदीयसौधांगणवेदिकासु।
सम्मार्जनीभिः परतः क्रियन्ते,
विसूत्रहारा वलिमौक्तिकानि।।[1]

विषम अलंकार से विभूषित इस पद्य को **आचार्य मम्मट** ने भी सम्मान पूर्वक **काव्य प्रकाश** में ग्रहण किया है।

---

1. काव्य प्रकाश 10/539

विक्रमांकदेव चरितम्

दूसरा ऐतिहासिक महाकाव्य महाकवि **विल्हण** कृत **विक्रमांक देवचरित** है। इस महाकाव्य में तत्काल घटित घटनाओं का ऐतिहासिक ढंग से वर्णन अन्यों की अपेक्षा विलक्षण ढंग से किया गया है। इसमें भी 18 सर्ग हैं। अन्तिम सर्ग में कवि ने अपने वंश का विस्तार से वर्णन किया है। महाकवि विल्हण निश्चित रूप से कश्मीर के हैं। इनके पिता का नाम **ज्येष्ठ कलश,** पितामहका **राजकलश,** प्रपितामहका **मुक्तिकलश** था। कवि की माता का नाम **नागादेवी** था। कवि के दो भाई **इष्टराय** तथा **आनन्द** थे। विल्हण किसी आश्रयदाता के अन्वेषण के लिए काश्मीर से निकलकर **मथुरा, कान्यकुब्ज प्रयाग, काशी** आदि अनेक नगरों का भ्रमण करते हुए दक्षिण भारत में उस समय के प्रसिद्ध कल्याणों की राजधानी गये। उस समय वहाँ चालुक्य वंशीय **विक्रमादित्य षष्ठ** का शासन था (1006-1127 ई०) गुणो को पहचानने वाले विक्रमादित्य ने विल्हण का महान सम्मान किया।

राजा विक्रमांकदेव के आदर-सत्कार से सन्तुष्ट विल्हण ने '**विक्रमांकदेव चरित**' नामक महाकाव्य की रचना किया। उन्होंने इस महाकाव्य में विक्रमांकदेव का और उनके वंश का विस्तार से वर्णन किया। ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमानुसार जिस प्रकार निश्चित वर्णन किया गया है उसी प्रकार काव्यत्व में भी। कल्याण शासकों व चालुक्य वंशीय राजाओं के विषय में ऐतिहासिक ज्ञान के लिए यह परम उपयोगी है।

काव्य की दृष्टि से भी विल्हण ने **वैदर्भी रीति** को अंगीकार किया है। इनके काव्य में प्रसाद माधुर्य गुणों का अधिकता से प्रयोग पद-पद में दिखायी पड़ता है। प्रौढ़ि गुण से युक्त संस्कृत साहित्य में विल्हण चिरकाल से प्रसिद्ध है। रस में **वीर रस** अंगीकार किया है किन्तु श्रृंगार रस का भी

अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है। मेरे सूक्तिरत्न को अन्य कवि अपहृत करेंगे ऐसी पहले ही आशंका होने पर विल्हण स्वयं उत्तर देते हैं—

गृहणन्तु सर्वे यदि वा यथेष्टं ना,
नास्ति क्षति कापि कवीश्वराणाम्।
रत्नेषु लुप्तेषु बहुष्वमत्यै,
रद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः।।

राज सभा में राजा के यश का सम्पूर्ण महत्व कवि की रचना के लिए होता था। आत्म प्रशंसा अपने मुख से न कहकर ये महाकवि व्यङ्ग्य के द्वारा अपने महाकाव्य में इस प्रकार कहा है—

लंकापतेः संकुचितं यशोयत्,
यत्कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो,
न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः।।

कालिदास ने जिस प्रकार **रघुवंश** में इन्दुमती स्वयंवर का वर्णन किया है उसी प्रकार **विल्हण** ने भी स्वयंवर का ललित वर्णन कियाहै। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्यों का काल क्रम से वर्णन करने पर भी महाकवि विल्हण ने **विक्रमांकदेव चरित** में रस गुण आदि दृष्टि से विलक्षणता पद-पद में प्रदर्शित किया है।

राजतरंगिणी

संस्कृत भाषा के इतिहास लेखन में जितने विद्वानों ने प्रयास किया है उनके मध्य **कल्हण** प्रमुख हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। कल्हण ने स्वयमेव अपने विषय निर्दिष्ट किया है। कल्हण ने काश्मीर देश के आढ्य ब्राह्मण कुल में जन्म लिया था। इनके पिता **चणपक** तात्कालिक काश्मीर नरेश **हर्ष** के प्रधान आमात्य थे (1048-1101 ई०)। शत्रुओं के द्वारा कपट से हर्ष के मार दिये जाने पर **चणपक** का परिवार राज्याश्रय विहीन हो गया। कल्हण के चाचा कनक भी कश्मीर नरेश हर्ष के आश्रित थे। अतः हर्ष के मारे जाने पर काश्मीर छोड़कर वाराणसी आ गये। कल्हण का वास्तविक नाम **कल्याण** था। इन्होंने अलकदत्त नामक किसी विशेष पुरुष की छत्रछाया को अपनाया था। इन्होंने घटनाओं का निष्पक्ष दृष्टि से अवलोकन किया तथा वर्णन किया। कल्हण ने **राजतरंगिणी** की रचना सुस्सल के पुत्र राजा **जयसिंह** (1127-1159 ई० लगभग) के शासन काल में किया। कल्हण ने 1148 ई० में ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया तथा 1150 ई० में समाप्त किया।

कल्हण धार्मिक दृष्टि से सहनशील तथा बौद्धों के अहिसा सिद्धान्त को आदर देते हैं। वे **रामायण, महाभारत** जैसे अनेकों काव्यों के ज्ञाता तथा **ज्योतिष शास्त्र** के मर्मज्ञ थे। कल्हण ने अपने ग्रन्थ निर्माण में शिलालेख, दानपत्रों आदि उपलब्ध साधनों का समुचित प्रयोग किया है।

आठ तरंगों से युक्त राजतरंगिणी में जितनी काव्यता दिखायी पड़ती है उतनी ही ऐतिहासिकता भी विद्यमान है। कल्हण ने प्राचीन काल से लेकर अपने समय तक के इतिहास को लिखने का प्रयत्न किया। इस ग्रन्थ में पूर्व के इतिहास वर्णन में उतनी सफलता नहीं प्राप्त किये जितनी बाद के इतिहास लेखन में।

राजतरंगिणी के प्रथम तरंग में राजाओं का वर्णन काल निर्देश रहित है। सर्वप्रथम निर्दिष्ट की गयी तिथि 813-814 ईस्वी है। इस काल से आरम्भ होकर 1150 ई० तक की घटनाएं विशेष रूप से प्रमाणिक है।

इस प्रकार अनेक इतिहासज्ञ दिखायी पड़ते हैं, जो अपने देश की प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए अपने देश में विद्यमान गुणो का वर्णन करने मे जरा भी संकोच नहीं करते किन्तु **कल्हण** के सदृश उनमें कोई नहीं था। कल्हण ने निष्पक्ष होकर इतिहास लिखा। अतएव वह कहते है—

श्लाध्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृता।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती।।

इस प्रकार की धारणा का ही प्रमाण है कि कल्हण ने काश्मीरवासियों के भय को, असत्य भाषण की प्रवृत्ति को युद्ध से पलायन, दल-बदल देना जैसी क्षुद्र मानसिक दुर्बलता को स्पष्ट रूप से निर्देशित किया है। अतः कल्हण ने घटनाओं का समुचित व यथेष्ट वर्णन करके एक आदर्श उपस्थित किया है।

कुमारपालचरितम्

जैन **आचार्य हेमचन्द्र** द्वारा प्रणीत '**कुमारपालचरित**' नामक महाकाव्य भी ऐतिहासिक महाकाव्यों की श्रेणी में गिना जाता है। इस महाकाव्य में कवि ने 28 सर्गों में अपने आश्रयदाता राजा **कुमारपाल** का विस्तृत वर्णन किया है। इसमें 20 सर्ग संस्कृत में तथा अन्तिम 8 सर्ग प्राकृत भाषा में निबद्ध है। इस महाकाव्य के द्वारा कवि ने धर्म व विद्या के प्रचार तथा प्रसार में भी सहयोग दिया है। **हेमचन्द्र** के मतानुसार, "**कुमारपाल**" जैन मत के प्रति श्रद्धा रखने वाला राजा था। फलस्वरूप उनके जीवन वृत्ति के वर्णन मे हेमचन्द्र ने पूरी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। हेमचन्द्र के काव्य से अनेक कवि प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

हेमचन्द्र ने अपने काव्य में चालुक्य नरेश का विस्तृत इतिहास प्रस्तुत किया जिसकी राजधानी "**अणहिलपाटन**" थी। आरम्भिक 5 सर्गो मे **मूलराज** का वर्णन मिलता है। छठें सर्ग में मूलराज के पुत्र **चामुण्डराय** की जन्मकथा वर्णित है जो युवा होकर पिता के साथ लाट देश के ऊपर आक्रमण किया। चामुण्डराय के राज्याभिषेक के पश्चात् मूलराज की मृत्यु हो गयी। छठें सर्ग से दसवें सर्ग तक अनेक राजाओं का वर्णन हुआ है। ग्यारहवें सर्ग में कृतराज के **जयसिंह** नामक पुत्र हुआ तथा राजा के स्वर्गगमन का वर्णन है। बारहवें सर्ग से पन्द्रह सर्गो तक जय सिह के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का वर्णन है।

सोलहवें सर्ग में जयसिंह के उत्तराधिकारी **कुमारपाल** के राज्याभिषेक का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग में जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल के राज्याभिषेक का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग में कुमारपाल का स्त्रियों के साथ वनगमन, जलक्रीड़ा आदि का वर्णन है। 18वें सर्ग मे राजा का आत्रनायक

के साथ युद्ध तथा उसकी पराजय वर्णित है। उन्नीसवें सर्ग में राजा को प्रसन्न करने के लिए **आन्ननायक** द्वारा अपनी कन्या देना तथा राजा द्वारा अपने शत्रुओं की पराजय, न्यायपूर्वक राजकार्यो का संचालन वर्णित है। बीसवें सर्ग में कुमारपाल द्वारा अहिंसा के प्रसार तथा प्रचार के लिए किये गये कार्य वर्णित है। और भी अनेक प्रकार के संक्षिप्त परिचय के द्वारा महाकाव्य के ऐतिहासिक महत्व का संकेत मिलता है। गुर्जर देशीय चालुक्य वंशीय राजाओं के प्रामाणिक इतिहास के उपस्थापन में इस महाकाव्य का निश्चित रूप से महत्वपूर्ण स्थान है।

‘पृथ्वीराजविजय’

दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट **पृथ्वीराज** के शौर्यपूर्ण जीवनचरित का आश्रय लेकर काश्मीरी कवि **जयानक** ने संस्कृत भाषा में इस महाकाव्य की रचना की। जयानक पृथ्वीराज के महल में आये थे। अतः उनके समकालिक प्रतीत होते हैं। जर्मन विद्वान **प्रो० बुलर** महोदय के कश्मीर में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के समय कवि **जयानक** विरचित इस महाकाव्य के भोजपत्र में लिखित कुछ प्रतियाँ प्राप्त हुईं। उन्होंने इन प्रतियो को अध्ययन के लिए 1893 ई० **एशियाटिक सोसायटी** कलकत्ता को लिखा कि मेरे शिष्य जेम्स ने पृथ्वीराज विजय काव्य का अध्ययन किया जो मुझे 1875 ई० में काश्मीर में प्राप्त हुआ था। इस ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार पृथ्वीराज का समकालिक था। जयानक ने चाहमान वंश के विषय में जो-जो वर्णन किया है वह सब 1030 विक्रम संवत 1225 विक्रम संवत् मे लिखित शिलालेखों के साथ साम्यता है किन्तु चन्द लिखित ‘पृथ्वीराज’ नामक ग्रन्थ के विवरण से प्रायः विपरीत है।

अतः पृथ्वीराज की अपेक्षा पृथ्वीराज विजय की ही प्रामाणिकता दिखायी पड़ती है।—Report. पृथ्वीराज विजय के विस्तृत विवरण के प्रकाशन से उसकी ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है। डॉ० बुलर के अनुरोध से ही ऐतिहासिक दृष्टि से पृथ्वीराज रासो नामक ग्रन्थ के अप्रमाणिक होने से कलकत्ता सोसायटी द्वारा उसका प्रकाशन छोड़ दिया गया। कहीं से भी आज तक यह काव्य सम्पूर्ण रूप से नहीं प्राप्त हुआ है। इसकी प्राचीन प्रति ही एक बार प्राप्त हुई है वह भी खण्डित अवस्था में। उसी का प्रकाशन हुआ है।

यह महाकाव्य पृथ्वीराज की विजय की प्रशस्ति में लिखा गया। इसमें

केवल 12 सर्ग ही अवशिष्ट है। संस्कृत काव्य लेखन परम्परा के अनुसार इस काव्य में भी **चाहमान वंश** के संस्थापक **आदि पुरुष** से आरम्भ करके **पृथ्वीराज** के पिता के काल तक के सभी प्रसिद्ध राजाओं का उल्लेख किया है। पृथ्वीराज के द्वारा अपने शत्रु को पराजित करना ही इस काव्य का बीजतत्व है। इसमें यवनों के पराजय का भी उल्लेख है।

पृथ्वीराज के जीवन से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं हिन्दू-यवन लेखकों द्वारा एक समान वर्णन किया गया है, जो घटनायें पृथ्वीराज को भारत के इतिहास विशिष्ट राजा होने का कारण है, उन सभी का उल्लेख इस ग्रन्थ में हुआ है। शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने निश्चित रूप से यवनों का भारत पर स्थायी रूप से आधिपत्य स्थापित किया। **गोरी** को **पृथ्वीराज** ने अनेक बार युद्ध में पराजित किया किन्तु अन्ततोगत्वा **गोरी** ने ही विजय प्राप्त किया। इसके पश्चात् गोरी ने पृथ्वीराज को कारागार मे डालकर दण्ड दिया। जिस प्रकार **शहाबुद्दीन** यवन शासकों में प्रबलतम था उसी प्रकार हिन्दू शासकों के आभूषण स्वरूप पृथ्वीराज जैसा कोई नहीं था, किन्तु **पृथ्वीराजविजय** काव्य में इनकी मुख्य घटनाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतः चाहमानों के इतिहास की दृष्टि से इस काव्य का विशिष्ट महत्व नहीं है। इस ग्रन्थ में चाहमान वंश के आदि पुरुष के तथा इस वंश के प्रमुख राजाओं की जानकारी की दृष्टि से अधिक महत्व है।

म्लेच्छों के द्वारा **राजस्थान** के तीर्थ स्थानों का विनाश **पुष्कर नामक** तीर्थ स्थल पर गायों का संहार, देव मन्दिरों को नष्ट करना, इन कारणों से उन म्लेच्छों के विनाश के लिए **चाहमान वंश** की स्थापना हुई। पुनः इस वंश में **वासुदेव, वप्पराज, दुर्लभराज, विग्रहराज** आदि अनेक वीर पुरुष हुए जिन्होंने अपने पूर्वजों के मार्ग का अनुसरण करते हुए म्लेच्छों का नाश किया। बारहवीं शताब्दी में **अजयराज** नामक वीर राजा हुआ जिसने **पुष्कर**

के निकट **अजयमेरु** नगर की स्थापना की और उसे **शाकम्भरी** की राजधानी स्वीकार किया। अजयराज के पुत्र **अर्णोराज** ने पुष्कर के निकट म्लेच्छों को मारा और पराजित किया। म्लेच्छो के अपवित्र रक्त से दूषित वहाँ की भूमि को **चन्द्र नदी** के जल से पवित्रकरने के लिए एक सरोवर का निर्माण कराया। यही तालाब़ इस समय **अर्णसागर (आनासागर)** के नाम से प्रसिद्ध है। उसी वीर अर्णोराज के पुत्र **पृथ्वीराज** हुए। इस ऐतिहासिक काव्य में यवनों के साथ युद्ध करके अपने देश की, धर्म की रक्षा करते समय अनेक राजाओं ने अपने प्राणों का अर्पण किया, ऐसा संकेत मिलता है।

वसन्तविलासमहाकाव्य

चौदह सर्गों में समन्वित इस महाकाव्य के रचयिता निश्चय ही **बालचन्द्र**[1] **सूरि** है। इसमें गुर्जर प्रदेश के **धौलिका नगर** के राजा **वीर धवल** के प्रसिद्ध आमात्य **वस्तुपाल** के जीवन चरित का, उसके मन्त्रिकाल से आरम्भ करके स्वर्गारोहण तक की घटनाओं का वर्णन है। इस महाकाव्य मे ऐतिहासिक महाकाव्य के सभी गुण प्राप्त होते हैं। **वस्तुपाल** निश्चय ही कवि **बालचन्द्र** का समकालिक था। उस समय **गुर्जर प्रदेश** के ऐतिहासिक ज्ञान के सन्दर्भ में निश्चय ही महत्वपूर्ण माना जाता है।

इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से ऐतिहासिक तत्वों का वर्णन हुआ है।

चालुक्य वंश का आदि पुरुष चालुक्य था जिसकी उत्पत्ति **ब्रह्मा** के अंजुली के जल से हुई। चालुक्य ने विपक्षियों की हत्या करके अपना राज्य स्थापित किया।

इस वंश में **मूलराज नामक** प्रसिद्ध शासक हुआ। उसके बाद क्रम से **दुर्लभराज** व **भीम** ने गुर्जरों के ऊपर शासन किया। राजा भीम से युद्ध मे अवन्ती नरेश **भोज** पराजित हुआ। भीम के बाद क्रम से **कर्ण, जयसिंह, सिद्धराज** गुर्जर के शासक हुए। सिद्धराज जयसिंह ने युद्ध में धारा नरेश पर विजय प्राप्त किया। सिद्धराज के पश्चात् अणहिल पत्तन के राजसिहासन पर **कुमारपाल** आरूढ़ हुआ।

कुमारपाल ने **केदारनाथ, सोमेश्वरनाथ, देवस्थानों** का जीर्णोद्धार

---

1. श्री वस्तुपालागभुवो नवोक्तिप्रियस्य विद्वज्जनमज्जनस्य।
   श्री जैत्रसिंहस्य मनोविनोद कृते महाकाव्यमुदीर्यतेऽहो।।

   वसन्तविलासम् 1/75

करवाया। इन्होंने अपने पराक्रम से युद्ध में **कोंकण** और **वल्लाल** देश के राजा को पराजित किया।

निर्बल भीम की रक्षा का दायित्व चालुक्य वंश के **अर्णोराज** के ऊपर था। अर्णोराज का पुत्र **लवणप्रसाद** भी सुविख्यात वीर था।

लवणप्रसाद का पुत्र **वीरधवल** हुआ। **वीरधवल** ने स्वप्न में गुर्जर राजलक्ष्मी के आदेश के अनुसार मन्त्रीका पद सुयोग्य वस्तुपाल को सादर दिया। वस्तुपाल अपने धर्म के प्रति आस्थावान होकर भी विभिन्न धर्मों का आदर करता था। राजा वीर धवल की प्रतिष्ठा वर्धन के साथ-साथ वह विद्वानों द्वारा कवियों खुले हृदय से सम्मान करता था। एक बार **लूणसाक** के शासक के साथ **भेदपाट** के शासक के साथ युद्ध के समय भेदपाटेश्वर के पक्ष से राजा वीर धवल भी युद्ध करने गये। तब उस समय वीर धवल के राज्य को आरक्षित देख कर **भृगुकच्छ** के शासक **शङ्ख** ने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया। **वस्तुपाल** ने शौर्य एवं साहस से युद्ध करके **शङ्ख** को पराजित किया। **वस्तुपाल** अपने मन्त्रित्वकाल में संघ (सङ्घ) के साथ **शत्रुंजय, गिरिनार** स्थानों की यात्रा किया। वस्तुपाल 1296 विक्रम माघ कृष्ण पक्ष की पञ्चमी को सोमवार के दिन शत्रुंजय मे दिवंगत हुए।

इस प्रकार **वसन्तविलास महाकाव्य** का गुर्जर प्रदेश के तात्कालिक ऐतिहासिक तथ्यों के प्रकाशन में निश्चय ही महत्वपूर्ण स्थान है। अनेक प्रकार से मन्त्री वस्तुपाल का आश्रय लेकर अनेकों काव्य, महाकाव्य संस्कृत साहित्य में प्राप्त होता है।

वीरभानूदय महाकाव्य

बारह सर्गों से समन्वित इस महाकाव्य के रचयिता कवि **माघव** हैं। इसकी रचना 1550 ई० में हुई और प्रथम प्रकाशन 1938 ई० में रीवा नरेश महाराजा गुलाब सिंह ने डॉ० हीरानन्द शास्त्री के सम्पादकत्व में किया। यद्यपि भारत के **बघेलवंशीय** राजाओं में राजा भीम से आरम्भ कर राजा वीर भद्र तक जितने राजा हुए सभी का इस ऐतिहासिक काव्य में वर्णन है किन्तु इसमें मुख्यतः राजा **वीरभानु** का चरित्रवर्णित है। इसलिए ये ही इसके प्रमुख नायक हैं।[1]

यह महाकाव्य भारतीय राजाओं के स्वाभिमान और सांस्कृतिक अनुराग से परिपूर्ण है। इसमें भारतीय तीर्थस्थलों, देव स्थानो तथा पवित्रनदियो के विषय में श्रद्धा भाव से वर्णित है।[2] अपने राज्य के रक्षा के लिए, कोष, दण्ड, सेना लेख आदि की व्यवस्था के लिए, शत्रुओं की पराजय के उपाय इस ग्रन्थ में वर्णित है।[3] इसमें प्रजा की सुख शान्ति का अधिक महत्व से वर्णन है। लोगों के उपकार के लिए उद्यान, राजमार्ग तालाब, वापी के निर्माण उल्लेख मिलता है।[4] कृषि, वाणिज्य, के विकास के सन्दर्भ में भी कवि सावधान दिखायी पड़ते हैं।[5]

प्रबल विदेशी शासकों के समक्ष किस प्रकार अपने स्वाभिमान की रक्षा

---

1. 'वीरभानू महाकाव्य' तथा राजीवलोचन अग्निहोत्री द्वारा लिखित पुस्तक—बघेलखण्ड के सस्कृत काव्य।
2. वीरभानूदय महाकाव्य 4/1/56, 5/22-31, 94, 100
3. वीरभानूदय महाकाव्य—5/39-40, 46, 51, 64-68, 102-106, 131, 136, 151, 6/36-39
4. वीरभानूदय महाकाव्य—1/25-28, 2/26, 5/118
5. वीरभानूदय महाकाव्य—5/68, 78

करें इसे बताया गया है।[1] इस महाकाव्य में यह भी संकेत किया गया है कि विदेशी शासकों का शासन निश्चित रूप से समाप्त होगा।[2] यह महाकाव्य उस समय के बघेल वंशीय राजाओं के परिचय प्रदान करने में निश्चय ही बहुत सहायक है।

---

1 वीरभानूदय महाकाव्य—12/20-23

2 वीरभानूदय महाकाव्य—7/1-62

सुर्जनचरित महाकाव्य

इस महाकाव्य के रचयिता महाकवि **चन्द्रशेखर** है। इसमें 20 सर्ग और 1888 पद्य हैं। ये **वंग प्रदेश** के अम्बष्ट कुल मे उत्पन्न श्री **जितामित** के पुत्र थे। चन्द्रशेखर महाकाव्य के नायक श्री **रावसुर्जन** की सभा के राजकवि थे। इस महाकाव्य की रचना महाकवि ने रावसुर्जन के साथ काशी मे रहकर 1600 ई० के अन्तिम भाग में किया। अनेक वर्षों के पश्चात् श्री रावसुर्जन वंश के कोटा के राजा श्री भीमसिंह से आर्थिक सहायता प्राप्त कर **काशी हिन्दू विश्वविद्यालय** के प्राध्यापक **डॉ० चन्द्र धर शर्मा** ने 1952 ई० में **सुर्जनचरित महाकाव्य** का हिन्दी में अनुवाद किया और प्रकाशित किया।

इस महाकाव्य में चाहमान वंशीय राजाओं का ऐतिहासिक क्रम से वर्णन मिलता है। महाकवि ने चाहमान वंश के प्रथम राजा **वासुदेव** से प्रारम्भ कर **भोजदेव** तक के सभी चाहमान वंशीय राजाओं की वंशावली तथा शासन पद्धति का सरल साहित्यिक वर्णन किया है। देश की प्रजा और संस्कृति की प्राणों से रक्षा करने की पवित्र राष्ट्रीय भावना इस महाकाव्य में काव्य के द्वारा **पृथ्वीराज, हम्मीरदेव, सुर्जन राव** का चरित्रवर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

अपने देश की संस्कृति और सम्मान की रक्षा के लिए **पृथ्वीराज** ने शहाबुद्दीन जैसे प्रबल यवन शासक को युद्ध में 21 बार पराजित कर दया के कारण जीवित ही छोड़ दिया किन्तु **गोरी** ने अन्त में छलपूर्वक **पृथ्वीराज** को पकड़कर कारावास में डाल दिया। निर्दयी शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज की आँखें फोड़ दिया।

सौभाग्य से अन्त में **कवि चन्द्र** के शब्दों की सहायतासे गौरी की शब्द बेधी बाण से हत्या कर मित्र चन्द्र के साथ कारागार से बाहर आये। इस

प्रकार यह भारत की वीरता का अद्भुत उदाहरण है।[1]

पृथ्वीराज के पश्चात् इस महाकाव्य में वीर हम्मीर देव का शौर्यमय वर्णन किया गया है।[2] राजा हम्मीर ने भारतीयता को नष्ट करने वाले यवन शासक के साथ युद्ध में अद्भुत शौर्य प्रदर्शित किया। इनके कारण अलाउद्दीन के भाई उलुग खाँ का आक्रमण निष्फल हो गया।[3] शरणागतवत्सल **हम्मीर** ने **महिमाशाह** की रक्षा की तथा अलाउद्दीन के साथ भयंकर युद्ध किया। अपने देश की, धर्म की रक्षा के लिए प्राणों से प्रिय रानी तथा राजकुमारी अग्निदाह करके प्राणों को त्याग देने का आदेश राजा **हम्मीरदेव** ने दिया। स्वयं प्राणों का मोह छोड़कर देश के शत्रुओं का वध किया। और अन्त में युद्ध के मध्य देश के लिए सहर्ष वीर गति को प्राप्त हुए।[4]

इस महाकाव्य के प्रधान नायक **राव सुर्जन** है। उनकी देश भक्ति के साथ-साथ दूरदर्शिता का भी इस महाकाव्य में विशेष उल्लेख है। उन्होंने देश के यवन शत्रुओं को वीरतापूर्वक युद्ध में पराजित किया।[5] इन्होंने **अकबर** की सेना को 13 बार पराजित किया। सम्राट अकबर के संरक्षण में आक्रमण को तैयार सम्पूर्ण साधनों से सुसज्जित सेना **राव सुर्जन** के विलक्षण शौर्य को देखकर युद्ध में भय से व्याकुल हो गयी।

परिणामस्वरूप अकबर के समान बलवान सम्राट ने भी निराश होकर अन्त में राव सुर्जन के साथ सन्धि किया।[6]

---

1. सुर्जन चरितम्—10/126-166
2. सुर्जन चरितम्—11/5-16
3 सुर्जन चरितम्—11/64-70
4. सुर्जन चरितम्—12/1-66
5. सुर्जन चरितम्—13/76
6. सुर्जन चरितम्—16/11-18, 22

महाकवि इस महाकाव्य में राष्ट्र के कल्याण के लिए भी चिन्तित है।[1] भारतीय संस्कृति के विविध स्वरूपों का, देव आराधना[2] विष्णु[3] तथा शिव[4] की आराधना का वर्णन इसमें मिलता है। **पुष्कर[5], मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, काशी, प्रयाग[6]** आदि पवित्र तीर्थ स्थलों का मनोहारी वर्णन किया है। इसको पढ़कर सभी सहृदयी श्रद्धा से अपने राष्ट्र के प्रति नत मस्तक हो जाते हैं।

---

1. सुर्जन चरितम्—3/51, 4/30
2. सुर्जन चरितम्—3/51, 4/30
3 सुर्जन चरितम्—13/34-43
4. सुर्जन चरितम्—6/63-89
5. सुर्जन चरितम्—7/26, 8/25
6 सुर्जन चरितम्—18/25-80, 19/1-46

अजितोदयमहाकाव्य

कविवर **जगजीवन भट्ट** द्वारा रचित **अजितोदय महाकाव्य** एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। महाकवि **जगजीवन भट्ट** जोधपुर के महाराज **अजीत सिंह** केसमकालीन थे। श्री अजीत सिंह का शासन काल 1706 विक्रम से आरम्भ होकर 1824 विक्रम तक स्वीकार किया गयाहै। इन महाराज का संरक्षण प्राप्त कर अत्यन्त हर्ष से कविवर ने 32 सर्गो से सुसज्जित इस महाकाव्य का निर्माण किया। इस महाकाव्य में मुगलो, राजपुत्रों तथा महाराष्ट्र के शासकों और ऐतिहासिक घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

इस महाकाव्य के प्रारम्भ में महाकवि ने मंगलाचरण मे, **श्री कृष्ण** का, **गणेश** का, **वाग्देवी सरस्वती** की स्तुति किया है।[1] उसके पश्चात् **जोधपुर नगर** का[2] नगर के महाराज **श्री गजसिंह** के पुत्र श्रीमन् **यशवन्त सिंह**[3] का मनोरम वर्णन किया है।

धर्मप्रिय और भारतीय संस्कृति के रक्षक राजा महाराज यशवन्त सिह के सुयोग्य, वीर पुत्र श्रीमान् **अजित सिंह** हुए। कहते हैं कि महाराज यशवन्त सिंह की राजरानियों के मध्य दो नाम प्रसिद्ध थे। उनमें प्रथम मणिराज्ञी थी

1 अजितोदयमहाकाव्य

2 अरितक्षतौ हृतसमात्रिदिवाभिमानं,
सम्यग्गवाक्षनिकरैरूपराजमानम्।
शश्वत्सुहृज्जनमनोनयनानुपेयं;
द्रंग च योधपुरमित्यभिधानगेयम्।। अजि0 म0 1/5

3 धर्मावतारमिह यं मनुजा ब्रुवन्ति
धर्मेण सत्यभरशील समुच्चयेन।
क्षान्त्यार्जवेन विनयेन नयेन भक्त्या
दानेन पुण्य यशस्त्र यशवन्तासिंहम्।।

अजि0 म0 1/9

और द्वितीय **नरुकावंश** की रानी। कहा जाता है कि **यशवन्त सिंह** ने **नरुकावंश** में उत्पन्न रानी के साथ पुत्र प्राप्ति के लिए विवाह किया किन्तु उनको भी पुत्र प्राप्ति में असमर्थ देखकर वृद्धावस्था में ये निरन्तर चिन्तित रहते थे।[1] एक बार भगवान विष्णु ने स्वप्न में उनको वरदान दिया कि राजा तुम्हारे दो पुत्र होंगे। एक **मणिराज्ञी** से दूसरा **नरुकावंश** की रानी से। परन्तु दूसरा कुछ समय तक जीवित रहेगा।

कुछ समय पश्चात् दोनों रानियों को गर्भवती देखकर महाराज के मन में आनन्द उत्पन्न हुआ। किन्तु सन्तान सुख देखने से पहले ही वे दुर्भाग्यवश दिवंगत हो गये।[2] प्रसवपीड़ा से जब महारानी मणिराज्ञी व्याकुल थी तब उनके स्वप्न में माता **हिंगुला देवी** आकर स्वयं बोली, कि देवी, आपको वीर, धर्मात्मा और धनुर्धर राजकुमार होगा। वह युद्ध में सभी राजाओं को जीतकर धर्म को धारण करेगा। युद्ध मे हमेशा शत्रुओं को परास्त कर **अजित सिंह** नाम से प्रसिद्ध होगा।[3]

इस प्रकार चैत्र मास में कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को सोमवार के दिन, स्वाती नक्षत्र, मकर लग्न में लाहौर नगर में तेज के सागर, सिंहों के रक्षक **अजीत सिंह** का जन्म **मणिराज्ञी** के कोख से हुआ। इसके एक घण्टा पश्चात् नारुक वंश की रानी को भी **भानु** नामक पुत्र पैदा हुआ।

राजा यशवन्त सिंह के स्वर्गारोहण के पश्चात् श्री केसरी सिंह मारवाड़

---

1. तृतीय सर्ग/श्लोक—1, अजि0 महाकाव्य
2. 4/11-12 अजि0 म0
3. यो वै विजित्य सकलामपि भूमिमेता
   धर्म धरिष्यति हि धर्म धुरन्धरः सन्।
   पृथ्वीश्वरत्वमुपयास्यति चोरुधामा
   युद्धे परैरविजितोऽजितसिंह नामा।।

   अजितोदय महाकाव्य—6/7

ने राज्य के प्रशासनिक कार्यो की देखभाल की। इस महाकाव्य में मुगल शासकों में मुख्यतया औरंगजेब के जीवन के विषय में वर्णन मिलता है। इसमें **दुर्गादास युद्ध, श्वेतसर युद्ध, पुष्कर युद्धों** का ओजपूर्ण वर्णन हुआ है। इस महाकाव्य में महाराज **अमरसिंह** का भी वर्णन किया गया है जिसने अन्याय के द्वारा **मेवाड़ राज्य** को अपने अधीन कर लिया था।

इस महाकाव्य में अजीत सिंह द्वारा प्राप्त उपलब्धियों का मनोरम वर्णन किया गया है। इन्होंने अपने राज्य और स्वाभिमान की रक्षा के लिए यवनो से युद्ध किया। उन्होंने **मेड़ता, डीडवाना** आदि राज्यों को अपने बल से अपने अधीन किया।[1] स्वयं सम्राट **अकबर** ने भी अजीत सिह से पराजित होकर **मारवाड़** राज्य को उनके अधीन देने की इच्छा प्रकट की।

अजीत सिंह ने **इन्द्रसिंह** के पुत्र **मोहकमसिंह** के साथ **नागौर** राज्य के ऊपर आक्रमण किया। राजा अजीत सिंह धार्मिक भी थे। अतः उन्होंने **नागौर मेड़ता** आदि तीर्थ स्थानों की श्रद्धापूर्वक यात्रा किया।

इस महाकाव्य में **आगरा, वृन्दावन, अजयमेरु, जयपुर** आदि नगरों का, **अन्नासागर** नामक तालाब, **मण्डौर** और **नागडेरी** नामक नदी का वर्णन हुआ है। इस महाकाव्य के अध्ययन से पता चलता है कि अजीत सिह की अन्त्येष्टि क्रिया **नागडेरी** नदी के तट पर हुआ।[2] इस महाकाव्य मे प्रायः महाकाव्य के सभी लक्षण पाये जाते हैं। यह महाकाव्य केवल ऐतिहासिक दृष्टि से ही नहीं अपितु साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है।

---

1. सर्ग-11/47-53 अजितोदय महाकाव्य
2. सर्ग इकतीस/15, 34

ईश्वरविलासमहाकाव्य

कविकलानिधि उपाधि धारी देवर्षि **श्री कृष्ण भट्ट** ने इस महाकाव्य को सवाई **जयसिंह महाराज** के पुत्र **श्रीमन् ईश्वरीसिंह** महाराज का आश्रय लेकर लिखा। राजसभा में राज्याधिकार प्राप्ति के सुअवसर पर महाराज **ईश्वरी सिंह** ने अपनी वंश परम्परा को वर्णन करने वाले एक महाकाव्य के निर्माण का निवेदन कविवर श्री कृष्ण भट्ट से किया।[1]

उनके अनुसार कविकलानिधि ने चौदह सर्गों से युक्त इस महाकाव्य की रचना की। इसमें अन्तिम चौदहवाँ सर्ग '**राजापराभवो नाम चतुर्दशः सर्ग**'' ऐसा प्राप्त हुआ। किन्तु ग्रन्थ जिस प्रकार प्रारम्भ हुआ उस प्रकार उसका उपसंहार उतना ठीक नहीं है। अथवा किसी कारण से कवि ने इतना ही लिखा। महाराज ईश्वरीसिंह का समय 1800 विक्रम से आरम्भ होकर 1807 विक्रम तक इतिहासज्ञों ने स्वीकार किया है।[2]

अतः इसके मध्य महाकाव्य का निर्माण हुआ।

इस महाकाव्य में सूर्य वंश के वर्णन के साथ **पृथ्वीराज, भारमल्ल, भगवन्तदास, महाराणा प्रताप, भावसिंह, जगत सिंह** आदि बहुत से ऐतिहासिक राजाओं का सलिल वाणी में वर्णन किया गया है। महाराज सवाई जयसिंह ने दिगविजय के लिए **अश्वमेध यज्ञ** किया उसका वर्णन इस महाकाव्य में है।

---

1. "तत्रैव राजतिलकोत्सव एष राजा श्री कृष्ण भट्टकवये कुरु काव्येमेकम्।
   अस्मत्कुल क्रमकथनाभिरामामित्याज्ञया सह ददौ समुहाप्रसादम्।।"

   ईश्वरविलास महाकाव्य—10/34

2. अतः परं कर्तुमनाः किलास्मि भवत्प्रसादादहमश्वमेधम।
   जवेन तन्मामनुमन्तुमर्हाः सर्वे बुधाः शास्त्रदृशो भवन्त।।

   ई० वि० महा०—4/2

इस महाकाव्य का ऐतिहासिक दृष्टि से तो महत्व है किन्तु साथ-साथ इसका साहित्यिक महत्व भी कम नहीं। महाकवि इस महाकाव्य में वर्ण्य विषय के साथ-साथ रस गुण अलंकार और भाषा के प्रयोग में विलक्षण है। श्रीमन् वीरवर ईश्वर सिंह के कृपा दृष्टि से समस्त कलाविद् अनुगृहीत हुए—

वीणा प्रवीणानपि गानदक्षान्,[1]
सुशिक्षितानान्नाट्यकला कलापे।
महोद्भटांश्चापि भटानप्यस्त्रम्
अन्वग्रहीदेष कृपा कटाक्षैः॥

महाराज **ईश्वरी सिंह** का जीवन काल अत्यन्त संक्षिप्त था। थोड़े समय जीवित रहने पर भी अधिकतर राजाओं केसाथ, आपसी संघर्ष में, भाई केसाथ विरोध होने पर भी युद्ध करना पड़ा। इन्होंने बहुत थोड़े समय में साहित्य सेवा तथा जनहित कार्यों को किया। राजस्थान एवं जयपुर के विषय में ऐतिहासिक ज्ञान प्रदान करने में इस महाकाव्य का अत्यधिक महत्व है।

महाराज ईश्वरीसिंह ने जिन राजाओं को पराजित किया था, उन सभी का इसमें विस्तार से वर्णन है। अनेक धार्मिक कार्यों, परोपकार के लिए किये कार्यों का भी वर्णन है।

इस महाकाव्य में **राजस्थान** के प्राचीन इतिहास का, वीरों का प्रमाणयुक्त विस्तृत वर्णन है। इस महाकाव्य में **जयपुर** नगर जितने विस्तार से वर्णन किया गया है वह अन्यत्र सुलभ नहीं है।[2] इस महाकाव्य के रचयिता भाषा विज्ञानी, विलक्षण कवित्व शक्ति युक्त थे। इन्होंने इस महाकाव्य का

---

1. ईश्वरविलास महाकाव्य—11/19
2. ईश्वरविलास महाकाव्य—सर्ग 2, 3

निर्माण कर श्रीमन् राजा ईश्वरीसिंह को राजसभा में आदर पूर्वक समर्पित किया। सुललित, रस,गुण, अलंकार आदि से विभूषित इस महाकाव्य को सुनकर महाराज ने उनको **कर्मपुर** नामक ग्राम को पारितोषिक के रूप में प्रदान किया।[1] इन्हीं कृष्ण भट्ट के वंश में जन्मे **श्री मथुरानाथ शास्त्री** के पुत्र पाश्चात्य, प्राचीन दोनों साहित्य एवं कला मर्मज्ञ जयपुर भाषा विज्ञान के निदेशक **कलानाथ शास्त्री** महोदय निरन्तर भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत की सेवा किये।

---

1. ईश्वरविलास महाकाव्य—10/36

कीर्तिकौमुदी

हेमचन्द्र के अतिरिक्त अनेक मान्य कवियों द्वारा रचित ऐतिहासिक व 'अर्द्ध ऐतिहासिक' जैन काव्य संस्कृत में मिलते हैं। परन्तु इनमें उदात्त कल्पना का अभाव रहता है। गुर्जर देश के विख्यात बघेल राजा **वीर धवल** के व उसके पुत्र **वीसलदेव** के गुण का, दानशीलता, मन्त्री **वस्तुपाल** और **तेजपाल** के जीवन वृत्ति से सम्बन्धित अनेक महाकाव्य प्राप्त होते हैं। कविवर **सोमेश्वर ने कीर्तिकौमुदी** नामक काव्य का प्रणयन **वस्तुपाल** की प्रशस्ति के रूप में किया। और ये दोनों **अणहिल पाटन** नगर के चालुक्य वंशीय राजा के वंश परम्परा के अनुसार पुरोहित थे। **सोमेश्वर वस्तुपाल** की अवस्था के और उन पर आश्रित कवि थे। **अर्बुद पर्वत** और गिरिनार पर्वत पर वस्तुपाल द्वारा निर्मित जैन देवालयों पर शिलालेख के रूप में अंकित प्रशस्ति काव्य भी **सोमेश्वर** की रचना है।

सुकृतसंकीर्तनम्

श्रीमत् अरिसिंह द्वारा रचित इस ऐतिहासिक महाकाव्य में ग्यारह सर्ग हैं। इसमें वस्तुपाल द्वारा बनवाये गये देवालयों और धार्मिक कृत्यो का विशिष्ट वर्णन उपलब्ध है। इसके रचयिता **अरिसिंह** निश्चय ही **अमरचन्द्र** का समकालिक तथा **बीसल देव** के सभा पण्डित थे। इसमें अमरसिंह ने **सुकृतसंकीर्तन** प्रत्येक सर्ग के अन्त में चार नवीन पद्यों का निर्माण करके जोड़ा।[1] साहित्य जगत् में दोनों की सम्मिलित रचना '**कविकल्पितम्**' के नाम से प्रसिद्ध है। इसके ही विषय का अनुकरण करके **बालचन्द्र** ने "**वसन्तविलास**"[2] नामक तृतीय रचना की। चौदह सर्गो से समन्वित इस काव्य में वस्तुपाल के द्वारा किये गये उदार कार्यो का विस्तृत वर्णन है।

---

1. सुकृत संकीर्तन
2. श्री वस्तुपालांगभुवो नवाक्तिप्रियस्य विद्वज्जनमज्जनस्य।
   श्री जैत्रसिंहस्य मनोविनोदकृते महाकाव्यमुदीर्यते हो।।

वसन्तविलासम् 1/75

द्वितीय अध्याय

हम्मीर महाकाव्य के रचयिता नयचन्द्र की कृतियाँ एवं परिचय

क. हम्मीर महाकाव्य के रचयिता नयचन्द्र सूरि

ख. नयचन्द्र सूरि के पूर्ववर्ती गुरु

ग. नयचन्द्र का स्थितिकाल तथा जन्मस्थान

घ. हम्मीर महाकाव्य के निर्माण के कारण

ङ. नयचन्द्र का व्यक्तित्व

च. पाण्डित्य

छ. ऐतिहासिक महाकाव्यों में स्थान

ज. कृति परिचय—

1. रम्भा मंजरी

2. हम्मीर महाकाव्य

3. हम्मीर महाकाव्य का रचनाकाल

हम्मीर महाकाव्य के रचयिता नयचन्द्र सूरि

नियतिकृतनियमरहिताम्[1] **आचार्य मम्मट** के इस मत के अनुसार कवि की सृष्टि ब्रह्मा की सृष्टि से अधिक उत्कृष्ट है। यहकैसे न होता। ब्रह्मा की सृष्टि नियति कृत नियम से युक्त है, ब्रह्मा की सृष्टि अदृष्ट के सिद्धान्त पर निर्भर है, सुख-दुःख, मोह स्वभाव वाली है, छह रसों से युक्त है परन्तु कवि की सृष्टि में दो ही लक्षण है। जहाँ ब्रह्मा की सृष्टि के नियम, बन्धन नही होते हैं वहाँ कवि का साम्राज्य होता है। कवि अपनी इच्छा के अनुसार काव्य का निर्माण करता है। जैसा कहा गया है—

अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।[2]

इस प्रकार। कवते। वर्णयति। कौति कुवते। शब्दायते। इति कवि। इस व्युत्पत्ति के अनुसार[3] कवृ वर्णे इति धातोः कवि पदं सिद्धयेति।

अमरकोशकार ने भी कहा है—बुद्धिमान पण्डित कवि है।[4] इसके अनुसार विद्वान ही कवि है।

आचार्य **यास्क** ने कवि शब्द का मेधावी अर्थ अंगीकार किया है।[5]

इस प्रकार रूढ़ यौगिक व्युत्पत्ति के समन्वय से ज्ञात होता है, यदि कोई

---

1. नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
   नवरसरुचिरां निर्भिरतिमादधती भारती कवेर्जयति।।

   काव्य प्रकाश 1/1

2. धन्यालोक—तृतीय उद्योत
3. शब्दार्थ कौस्तुभ
4. धीरो मनीषी ज्ञः प्रज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः।

   अमरकोषः 2/7/5

5. निरुक्त

विद्वान किसी वस्तु को विलक्षण दृष्टि से प्रतिपादित करने मे समर्थ है, तो वह कवि है। परन्तु सभी विद्वान कवि नहीं होते हैं। कवि की सृष्टि ही काव्य है। लोकोत्तर वर्णन में निपुणता ही कवि का कर्म होता है। विशिष्ट संस्कार आ जाने से ही मनुष्य कवित्व शक्ति से सम्पन्न होता है। अतः सत्य कहा गया है–

''नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्रसुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।

अतः विरले ही कवि होते हैं। उसमें भी महाकवि तो अत्यन्त कम ही होते हैं। कवि भावना केवल पदार्थों को समान एवं प्रत्यक्ष दृष्टि से वर्णित ही नहीं अपितु आनन्द को उत्पन्न करने में समर्थ है। इस विषय में कहा भी गया है—

''कविशक्त्यर्पिता भावास्तन्मयीभावयुक्तितः।
यथा स्फुरन्त्यमी काव्यान्न तथाध्यक्षतः किल।।[2]

इति

कवि की प्रतिभा के कारण दीवारें भी गाने लगती हैं, पाषाण से अमृत बहने लगता है, तालाब भी सागर बन जाते हैं, धोबी भी इन्द्र के तुल्य हो जाता है।

कौआ भी हंस हो जाता है। किसी भी कवि के लिए काव्य उसके जीवन और व्यक्तित्व का परिचायक होता है। काव्य कवि के जीवन और व्यक्तित्व का किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त करता है।

---

1. अग्निपुराण, साहित्यदर्पण—प्रथम परिच्छेद, पृ0 6
2. प्राची पत्रिका, सम्पादक—डॉ0 जगन्नारायण पाण्डेय

यह सत्य है संस्कृत साहित्य में **महाकवि कालिदास भवभूति** के सदृश रससिद्ध कवियों की संख्या निश्चय ही अंगुली पर गिनी जा सकती है किन्तु इनके बाद भी अनेक महाकवि हुए हैं जिनके काव्यों और महाकाव्यो में उनके जैसा ही रसप्रवाह, कल्पना और अलंकार आदि चमत्कार दिखायी पड़ते हैं। ऐतिहासिक महाकाव्यों के निर्माणकर्ताओं मे **परिमलगुप्त, विल्हण** और इनके पश्चात् **कवीन्द्र नयचन्द्र** जैसे समर्थ सुकवि हमारे समक्ष दिखायी पड़ते हैं जिनका महाकाव्य **हम्मीर महाकाव्य** सभी लोगों के हृदय को ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टि से बलपूर्वक आकर्षित करते हैं।

संस्कृत साहित्य में आदि काल से इस प्रकार की परम्परा दिखायी पड़ती है कि महाकवि स्वाभिमान रूपी धन से युक्त तथा अहंकार से रहित होते हैं।

इसलिए महान महाकाव्य रूपी रत्नों को उन महाकवियों ने हर्ष से लिखा किन्तु कहीं भी अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है। जिस प्रकार **कालिदास** आदि ने अपनी रचनाओं में अपने नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है, उसी प्रकार **कविवर नयचन्द्र** ने भी कुछ भी नहीं लिखा है। किन्तु यह दुःख की बात है। आत्म प्रशंसा के डर से अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखने के कारण यह वस्तुतः खोज करने वालों के लिए अत्यन्त कठिनाई उत्पन्न करता है। हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि इस महाकाव्य की समाप्ति के पश्चात **श्री नयचन्द्र** के ही शिष्य ने उनके विषय में थोड़ा बहुत लिखा है।[1] **कविवर नयचन्द्र सूरि** कृष्णगच्छीय जैनाचार्य थे। कृष्णगच्छ मार्ग की स्थापना 1391 विक्रम संवत् में श्री मत **जयसिंह सूरि** ने किया।

श्री नयचन्द्र सूरि उन्हीं जयसिंह सूरि के शिष्य थे। जय सिंह सूरि के

---

1. एतदर्थ हम्मीरमहाकाव्यसमाप्तौ शिष्यकृता काव्यं कर्तुः प्रशस्तिः

गुरु निश्चय ही आचार्य **महेन्द्र** थे। श्री महेन्द्र अचलगच्छ के 10वें आचार्य हुए।[1]

इसका पट्टकाल 1395 विक्रम संवत् से 1444 विक्रम तक स्वीकार किया जाता है। **अचल गच्छ** की स्थापना 1202 विक्रम स्वीकार किया गया है। महेन्द्र सूरि के पट्टधर आचार्य **जयसिंह सूरि** हुए जिनके पट्टधर **प्रसन्नचन्द्र सूरि** थे किन्तु विद्यागुरु जयसिंह सूरि ही थे। नयचन्द्र सूरि विद्यागुरु जयसिंह सूरि के साहित्योपासना के चिन्तन में तत्पर हुए।

श्री नयचन्द्र सूरि विलक्षण महाकवि होने के साथ-साथ प्रमाण शास्त्र (न्यायशास्त्र) के भी ज्ञाता थे। इस प्रकार ये अनेक विधाओं को प्रयोग व सम्पादन करने में भी निपुण थे। इस प्रकार नयचन्द्र अत्यन्त उत्कृष्ट विद्वान तथा महाकवि थे। कवि ने अपने वर्णन में एक जगह जयसिंह सूरि के पौत्र के लिए भी किया है।

पौत्रोऽप्ययं कविगुरोर्जयसिहसूरेः काव्येषु पुत्रतितमां नयचन्द्र सूरिः।

नव्यार्थसार्थ घटना पदपंक्तियुक्ति,

विन्यासरीतिरसभावविधानयत्नैः।[3]

---

1. जयति जनितपृथ्वीसम्मदः कृष्णगच्छो
   विकसित नव जाती गुच्छवत् स्वच्छमूर्तिः।
   विविधबुधजनालीभृंग
   कृतवसतिरजस्रं मौलिषुच्छेकिलानाम्।।

   हम्मीर महाकाव्य—14/22

2. हिन्दी विश्व कोष कलकत्ता भाग 8, पृ0 81
3. हम्मीर महाकाव्य 14/26

नयचन्द्रसूरि के पूर्ववर्ती गुरु

नयचन्द्र के पूर्ववर्ती गुरुओं ने **राजस्थान, नागौर** इत्यादि प्रदेशों के लोगों को धार्मिक कार्यो में प्रेरित किया। इनके उपदेशों को सुनकर लोकोपयोगी अनेक देवस्थानों का निर्माण हुआ।

आचार्य श्री महेन्द्र सूरि

नयचन्द्रसूरि के प्रगुरु निश्चय ही आचार्य **महेन्द्र** थे जिनका यवन शासक भी सम्मान करते हैं और उनके उपदेश को सुनकर लाखों दीनार (स्वर्ण मुद्रा) गरीबों की सहायता के लिए व्यय करते थे। उन्ही महेन्द्र सूरि के पट्टधर आचार्य **श्री जयसिंह सूरि** हुए। जिनके पट्टधर प्रसन्नचन्द्र सूरि थे परन्तु विद्या गुरु जयसिंह सूरि ही थे।

आचार्य जयसिंह सूरि

श्री जयसिंह सूरि परमोत्कृष्ट विद्वान, वादविवाद तथा विद्या में निपुण थे। इन्होंने एक दूसरे विद्वान छः भाषाओं पर विजय प्राप्त किये हुए **सारंग** नामक विद्वान को वाद-विवाद में पराजित कर विजय प्राप्त किया था। इन्होंने महाराजकुमार के लिए एक काव्य मय व्याकरण ग्रन्थ भी लिखा।[1]

जयसिंह सूरि एक प्रसिद्ध नैयायिक थे। इन्होंने न्यायसारदीपिका नामक कोई टीका भी लिखा था। इन्हीं के कवित्व कला के निर्देशन में कुमारपाल

---

1. षड् भाषा कविचक्रशक्रमाखिलप्रमाणिका ग्रेसरं
   सारंग सहसा विरंगभतनोद् यो वादविधाविद्यौ।
   श्री न्याय सार टीकां नव्यं व्याकरणमथ च यः काव्यम्।
   कृत्वा कुमारनृपतेः ख्यातस्त्रैविद्यवेदिचक्रीति।।

हम्मीरमहाकाव्य 14/23, 24

चरित नामक ऐतिहासिक महाकाव्य लिखा गया। कुमारपालचरित की मूल रचना को प्रथम शुद्ध प्रतिलिपि नयचन्द्र की कृति है, इसका स्पष्ट उल्लेख जयचन्द्र सूरि ने अपने ग्रन्थ में किया है—

अवधान सावधानः प्रमाणनिष्णः कवित्वनिष्णातः।

अलिखन् मुनिनयचन्द्रो गुरुभक्त्या स्याघादर्शनम्।।[1]

जयसिंहसूरि का नयचन्द्र ने संक्षिप्त उल्लेख किया है। तब यह सूरी नाम से प्रसिद्ध नहीं थे। श्री जयसिंह सूरि द्वारा लिखित गद्य-पद्य मिश्रित दूसरा ग्रन्थ 'धर्मोपदेशमालाविवरण'[2] भी महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ का निर्माण नागौर मण्डल में हुआ।[3]

हम्मीर महाकाव्य के निर्माण का कारण

इस महाकाव्य में वर्णित है कि नयचन्द्र सूरि को हम्मीर महाकाव्य के निर्माण की प्रेरणा ग्वालियर के तात्कालिक नरेश वीरम से मिली, वीरमदेव के स्व॰ा में हम्मीरदेव की दिवंगत आत्मा ने यह कहा कि इस समय प्राचीन कवियों की तरह कोई भी मनोरम काव्य निर्माण में समर्थ नही है।[4]

कविकुलेन्दु नयचन्द्र कैसे इस महाकाव्य के गुणों को देखकर इस काव्य के निर्माण में प्रवृत्त हुए, इस विषय में महाकाव्य के आरम्भ में स्वयं ही प्रतिपादित किया है—

---

1. कुमारपालचरित
2. प्रकाशक—सिन्धी जैनग्रन्थमाला, मुम्बई
3. नागउर—जिणायतणे समाणिय विवरण एव।
   धर्मोपदेशमाला प्रशस्ति, 29 पृ0 सं0 230
4. हम्मीर महाकाव्य—
   तेने तैनैव राज्ञा स्वचस्तितनने स्व॰ानुन्नेन कामम्।
   चक्राणां काव्यमेतन्नृपतितितिमुदे चारुवीरांकरम्यम्।।

मान्धातृसीतापति कंकमुख्याः क्षितौक्षितीन्द्राः कति नाम नासन्।
तेषु स्तवार्हः परमेष सत्वगुणेन हम्मीरमहीभृदेकः।।[1]

सत्वगुण से विभूषित हम्मीर देव ने दुष्ट यवन शासक को अपनी पुत्री को न देकर, शरणागत यवन महिमाशाह की प्राणों से रक्षा किया तथा अपनी मातृभूमि की बलिवेदी पर अपनी आहुति देकर अमर हो गये। इन्होंने स्वाभिमान पूर्वक देश की रक्षा के लिए राजसुखों को छोड़कर प्राणों का परित्याग किया। इन्हीं विशिष्टताओं से आकर्षित होकर राजाओं के मन को पवित्र करने के लिए कवि नयचन्द्र ने इस महाकाव्य की रचना किया।[2] कवि मूलकथा के आरम्भ में कहते हैं कि 'इस राजा का महान चरित्र कहाँ? कहॉ मेरी अल्प बुद्धि? फिर भी मैं लोभ वश में एक ही भुजासे महान समुद्र को तैरना चाहता हूँ। अथवा गुरु कृपा से मैं उनके जीवन चरित्र को वर्णन करने में समर्थ होता हूँ तो यह मेरा सौभाग्य है।'[3]

कवि के महाकाव्य का नायक हम्मीरदेव धीरोदात्त गुणवान, अच्छे चरित्र वाला है। इस महाकाव्य में कवि ने हम्मीरदेव के सभी गुणों का वर्णन अत्यन्त कमनीय ढंग से किया है। इस वर्णन में कवि ने सुलभ मिथ्यास्तुति नहीं की है और न ही अमानवीय भावनाओं की अस्वाभाविक कल्पना ही किया है।

नयचन्द्र की द्वितीय रचना निश्चय ही रम्भामञ्जरी नामक नाटिका है। यह इनकी दूसरी रचना प्रतीत होती है जिसमें महाकवि सामान्य विषयों की अपेक्षा ऐतिहासिक विषयों में अधिक अनुरक्त दिखायी पड़ते हैं। इसमें कान्यकुब्ज के शासक जयचन्द्र के द्वारा ही नाटिका के नायकत्व का

---

1. हम्मीर महाकाव्य—1/8
2. हम्मीर महाकाव्य—1/9-10
3. हम्मीर महाकाव्य—1/11-12

निर्धारण हुआ। हम्मीर देव निश्चय ही जयचन्द्र की अपेक्षा अधिक प्रशंसा के पात्र थे। अतः हम्मीरदेव के नाम के ऊपर कवि ने विशाल महाकाव्य लिखा। प्रतीत होता है कि हम्मीर गुणों को स्व॰ा में नहीं भूल सके। अतः इस कारण स्व॰ा में उन्होंने विलक्षण अनुभव प्राप्त किया। महाकवि ने इस महाकाव्य की रचना के दो कारण बताये। कवि के मन में इस प्रकार की अभिलाषा थी कि सम्पूर्ण संसार में जिस प्रकार प्राचीन महाकवि प्रसिद्ध थे उस प्रकार की प्रसिद्धि इन महाकवि की भी हो यह महाकाव्य के निर्माण का प्रथम कारण था।

द्वितीय कारण था—राजन्ययुयूषा। इन दो लक्ष्यों को प्राप्त करने में नयचन्द्र ने असाधारण रूप से सफलता प्राप्त किया यह सभी विद्वानों का विचार है। महाकवि ने तात्कालिक समाज का और उसके आदर्शों का जितना यथार्थ चित्रण किया है, वह अन्यत्र सुलभ नहीं है। जिस प्रकार नयचन्द्र के कवित्व के लिए हम्मीरदेव जैसा नायक उपयुक्त था। उसी प्रकार हम्मीर देव के लिए कवीन्द्र नयचन्द्र बिल्कुल उचित कवि थे जो अपनी रचना के द्वारा हम्मीर को अमर कर गये। वह तो यह भी नहीं स्वीकार करते हैं कि साधारण लोगों की तरह वीर हम्मीर देव भी दिवंगत हुए। स्वयं इन्होंने कहा है—

[1]लोको मूढ़तया प्रजल्पतुतमां यच्चाहमानः प्रभुः,

श्री हम्मीर नरेश्वरः स्वरमगाद् विश्वैकसाधारणः।

तत्वज्ञत्वमुपेत्य किंचन वयं ब्रूमस्तमां स क्षितौ,

जीवन्नेव विलोक्यते प्रतिपदं तैस्तैर्निजैर्विक्रमैः।।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—14/15

नयचन्द्र का स्थितिकाल

हम्मीर महाकाव्य की रचना गोपाचल (ग्वालियर) के तोमर राजा श्री वीरमदेव के शासन काल में हुआ। यह हम्मीर महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है। वीरमदेव निश्चय ही 1421 ई० तक शासन किये क्योंकि 1422 ई० में उनके पौत्र डूंगर नरेश हुए थे। अनेक कारणों से ज्ञात होता है कि वीरमदेव दीर्घकाल तक शासलन किये। 1422 ई० में ये पूरी तरह वृद्ध हो गये थे, यदि इनका शासनकाल 1322 ई० से 1422 ई० तकस्वीकार किया गया है, तब इस महाकाव्य का रचनाकाल 1390 ई० स्वीकार किया जा सकता है। तब तक नयचन्द्र ने हम्मीर देव शौर्य आदि को सम्यक् रूप से सुन लिया था और तब तक माना जा सकता है कि हम्मीर देव की कवित्व शक्ति भी पूर्णतः विकसित हो चुकी थी। अतः वीरमदेव के सभासदों का हम्मीरदेव के चरित्र वर्णन के लिए नयचन्द्र को कहना इनके लिए निमित्त प्रतीत होती है। वस्तुतः हम्मीर देव के गुणों से प्रेरित होकर वे इस महाकाव्य की रचना किये। रम्भा मंजरी नाटिका के भाषा, वर्ण्य विषय, श्रृंगार की प्रबलता को देखकर प्रतीत होता है यह महाकवि की आरम्भ की रचना है। कुछ लोग इस प्रकार भी कहता है रम्भा मंजरी जैन कवि की रचना है, नयचन्द्र की रचना नहीं है।[1]

किन्तु रचना की अपूर्णता से इसके विषय में कुछ भी नही कह सकते हैं। इस प्रकार नयचन्द्र की स्थिति बाह्य साक्ष्यों के द्वारा और आभ्यान्तर साक्ष्यों के द्वारा चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया जा सकता है।[2]

1. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ0 60
2. डॉ0 पी0 पीटर्सन, रामचन्द्र, दीनानाथ शास्त्री के द्वारा सम्पादित निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से प्रकाशित—1889 में

जन्म स्थान

राजस्थान के जैन कवियों ने दो प्रकार से मुख्यतयः काव्य का निर्माण किया है। उनमें प्रथम वर्ग में हम्मीर महाकाव्य, कुमारपालचरित वस्तुपालचरित आदि की गणना की जाती है। जिसमें कवियों ने भारतीय इतिहास के महान चरित के शासकों, राजाओं के ऐतिहासिक घटनाओं को सुन्दर संस्कृत भाषा में निबद्ध किया है। द्वितीय सर्ग में कवियों ने संयम रूपी धन वाले तपस्वियों के जीवन चरित को लोक कल्याण के लिए वर्णित किया है।

यद्यपि यह सत्य है कि वीरमदेव के राजसभा के सदस्यों के व्यंग्योक्ति से कवि हम्मीर महाकाव्य के निर्माण में प्रवृत्त हुए परन्तु जिस आत्मीय भाव से कवि ने राजस्थान के मध्य कालीन इतिहास का निरूपण किया है, उससे प्रतीत होता है कि नयचन्द्र राजस्थान प्रदेश के थे। यह सत्य नहीं भी हो तो भी इस प्रदेश के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतीत होता है। इस कारण से उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हम्मीरदेव के पवित्र चरित्र के वर्णन में हुई।[1] अतः यदि ऐसा कभी सम्भव न भी हो कि नयचन्द्र की जन्मभूमि राजस्थान है किन्तु यह जरूर सत्य है कि उनकी कर्मभूमि राजस्थान ही है।

नयचन्द्र का व्यक्तित्व

काव्य निश्चय ही कवि के जीवन कीसफलता व व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति का स्रोत है क्योंकि कवि अपनी रचना में अव्यक्त रूप से सर्वत्र विद्यमान रहता है। इस कारण से रचना का आश्रय लेकर महाकवि के व्यक्तित्व तथा पाण्डित्य का प्रदर्शन करने की मेरी इच्छा है।

हम्मीर महाकाव्य के अध्ययन से महाकवि नयचन्द्र के व्यक्तित्व के

1. हम्मीरमहाकाव्य।

विषय मे ज्ञात होता है। ये महाकवि निस्पृह धर्मोपदेष्टा, बहु सम्मान प्राप्त, साहित्योपासक संस्कृति प्रेमी, और तपस्या संयम आदि से पवित्र तेजमय स्वरूप वाले थे।

धन के प्रति इनका तनिक भी अनुराग नही था और न ही बलपूर्वक सम्मान प्राप्ति के इच्छुक थे। नयचन्द्र न ही राज्याश्रित पण्डित थे, और न ही चौहान वंश के किसी राजा द्वारा सम्मानित और परिपालित थे। इस प्रकार इनके वंश केसाथ इनका कोई ऐहिक सम्बन्ध भी नहीं था जिसके कारण चाहमान वंश के पूर्व पुरुषों का गुणगान करना उनका आवश्यक कर्तव्य हो। नयचन्द्र निश्चय ही महाकाव्य के नायक हम्मीर देव से सौ वर्ष पश्चात् उनके यश का वर्णन करने में स्वेच्छा से प्रवृत्त हुए।

नयचन्द्र काव्य प्रतिभा के धनी होने पर भी स्वभाव से अत्यन्त सरल तथा मधुर थे। इनकी नम्रता का प्रदर्शन इस प्रकार मिलता है कि कवि कुलगुरु कालिदास की अधर्मणता को भी सादर स्वीकार करते हैं और कहते हैं—

क्वैतस्य राज्ञः सुमहच्चरित्रं क्वेषा
पुनर्मेधिषणा नूरुपा।
ततोवपि मोहाद् भुजरौकयैव,
मुग्धस्तितीर्षानि महासमुद्रम्।।[1]

कोई भी कवि तब निश्चय ही सफलता प्राप्त करता है, जब वह बहुश्रुत विद्वान होता है। कवि की प्रतिभा सूर्य रश्मि तुल्य होती है। अतएव सर्वत्र फैलकर अन्धकार या अज्ञानता को नष्ट करती है। कवि प्रतिभा से उत्पन्न सदुपदेश लोगों के मार्ग को प्रकाशित करते हैं। लोकशास्त्र, काव्य आदि को

1 हम्मीर महाकाव्य

देखने से और काव्य रचना का विचार करते हैं जो इस प्रकार जानते हैं उनकी शिक्षा के बार-बार अभ्यास से कवि लोकप्रिय कवि तथा महाकवि होते हैं। अतः वाग्देवतावतार आचार्य मम्मट ने काव्य की उत्पत्ति के तीन हेतुओं को बताया है—

शक्ति निर्पुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञाशेक्षणाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥[1]

इति।

नयचन्द्र सूरि हम्मीर देव का यशोवर्णन सम्भवतः सौ वर्षों के पश्चात् करने में प्रवृत्त हुए ऐसा प्रतीत होता है। इसका मुख्य कारण है हम्मीरदेव अत्यन्त स्वाभिमानी, सत्वशील, भ्रातृभक्त, शौर्य प्रदर्शन में प्राणों का परित्याग करने वाले, महान पवित्रात्मा थे। नयचन्द्र हम्मीर देव के लोकोत्तर कीर्ति गाथा को सुनकर मुग्ध हुए अतएव उन्होंने सरस वाणी में इस महाकाव्य को लिखा।

वाग्देवी के आशीर्वाद से महाकवि विलक्षण महाकाव्य की रचना किया। अपनी कवित्व शक्ति के सर्वोत्तम फल के रूप में हम्मीर देव जैसा आदर्श नायक प्राप्त कर इन महाकवि की हम्मीर महाकाव्य के निर्माण में रुचि उत्पन्न हुई। कवि नयचन्द्र इस कार्य में पूर्णतः सफल हुए।

पाण्डित्य

हम्मीर महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि महाकवि नयचन्द्र धर्मशास्त्र वेदों और दर्शनशास्त्र के विद्वान थे। इन्होंने वैदिक मन्त्रों के सम्बन्ध में एक उदाहरण प्रस्तुत किया है—

---

1. काव्यप्रकाश—1

विपां न नोद्गीर्णं विविक्तवर्णप्रचार चारुध्वनि वेदमन्त्राः।
सतां हृदन्तस्तरसा प्रविश्य तमः कषन्तीव समूलकाषम्॥''[1]

चरित्रचित्रण में भी महाकवि ने सफलता प्राप्त किया है। इस महाकाव्य में वीर हम्मीरदेव की समानता विशिष्ट राजाओं के साथ किया है—

मान्धातृसीतापति कंकमुख्याः क्षितौ क्षितीन्द्र कतिनाम नासन्।
तेषुः स्तवार्हः परमेष सत्वगुणेन हम्मीरमहीभृदेकः॥''[2]

राज्य शासन विषयक ज्ञान में भी यह कवि निपुण थे। राज्य के प्रशासन को ठीक प्रकार से चलाने के लिए शौर्य, बुद्धि और विश्वास इन तीन विशिष्टताओं का होना आवश्यक है, कवि ने इस प्रकार इसी को कहा है—

शौर्य बुद्धिरविश्वासौ राज्यश्रीः कारणत्रयम्।
वृहस्पतेर्नाति विषयेऽपि कविना वर्णितं यत्॥[3]
त्यजेदेकं कुलस्यार्थे नीतिरित्याह वाक्पतिः।
त्रातुमावर्धितक्ष्मां मां ददतस्तव का क्षतिः॥[4]

नयचन्द्र पहले मुनि थे उसके पश्चात् सूरि हुए यह जयसिंहसूरि के कुमारपाल चरित के अवलोकन से ज्ञात होता है। ये उत्तम कोटि के महाकवि थे। यह महाकाव्य के अवलोकन से भी स्पष्ट प्रतीत होता है।

काव्यसिद्धान्त के विद्वान

कविवर **नयचन्द्र** कवि ही नहीं थे अपितु काव्य सिद्धान्त के भी मर्मज्ञ

1. हम्मीर महाकाव्य—8/10
2. हम्मीर महाकाव्य—1/8
3. हम्मीर महाकाव्य—4/74
4. हम्मीर महाकाव्य—13/113

थे। हम्मीर महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में महाकवि के द्वारा अपने सिद्धान्त का परिचय दिया गया है। वह यह नहीं स्वीकारते कि सरस काव्य केवल अनुभव से उत्पन्न होता है।

वस्तुतः कवि के लिए सरस कवित्व उसी प्रकार स्वाभाविक होता है, जिस प्रकार चञ्चल नेत्रों वाली रमणी के लिए तारुण्य एवं लालित्य।

ऐतिहासिक महाकवियों में स्थान

हम्मीर महाकाव्य की समीक्षा से प्रतीत होता है कि नयचन्द्र का ऐतिहासिक महाकवियों में विशिष्ट स्थान है। यद्यपि प्रस्तुत महाकाव्य के प्रथम दो सर्गों में वर्णित घटनाओं में अनेक ऐतिहासिक त्रुटियाँ दिखायी पड़ती हैं परन्तु उसका कारण यह हो सकता है कि कवि **हम्मीरदेव** के अनेक शताब्दी बाद हुए। और आज के जैसे साधन उपलब्ध नहीं थे कि उन घटनाओं का परीक्षण करने में समर्थ होते।

श्री चाहमानान्वयमौलिमौलिर्बभूव हम्मीरनराधिपस्तत्।
ऐतिह्यतो वच्मि पुरा तदीयामुत्पत्तिमुत्पादितं हर्ष हेलाम्।।[1]

किन्तु **रणस्तम्भपुर दुर्ग**[2] के विषय में तो कवि ने संवत्सर मास, पक्ष, तिथि, दिन, नक्षत्र आदि का उल्लेख किया है। यह कवि ने घटनाओं से परस्पर कार्य कारण भाव की कल्पना करके प्रदर्शित किया है और विद्वानों के मन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

रणस्तम्भपुर दुर्ग का विनाश कवि की रचना में विशिष्ट मानवीय घटना के रूप में विद्यमान है जिसके कारण वह मानवीय घटना को प्रदर्शन

---

1. हम्मीर महाकाव्य—1/3
2. हम्मीर महाकाव्य

करती हुई यहाँ विद्यमान है।

कर्मसिद्धान्तवादी

नवचन्द्र सूरि ने कर्म सिद्धान्त को स्वीकार किया है। इस कारण लौकिक घटना के लिए अलौकिक कारणों की कल्पना उन्होंने नही की। इसका उदाहरण **रणस्तम्भपुर दुर्ग** का भंग होना है जिसके अनेक विशिष्ट कारण हैं और समष्टि के रूप में **जैत्रसिंह** के अन्तिम उपदेश के रूप में विद्यमान है।

कवियों के सम्मान कर्ता

स्वयं काव्य गुणों के प्रयोग में सावधान होते हुए नयचन्द्र ने अन्य कवियों कोसम्मान प्रदान करने में भी अग्रणी थे। इस कारण से अपने महाकाव्य में कहीं-कहीं प्रयुक्त अपशब्दों के लिए कवि विद्वानों से विनयपूर्वक क्षमा याचना करते हैं—

क्षन्तव्य एवं कविभिः कृपया प्रमादात्,
काव्येऽत्र कश्चिदपि यः पतितोऽपशब्दः।
प्रीतिर्यथास्तु सुहृदामथवा सुशब्दैः,
किं सा तथाऽस्त्वसुहृदामपि माऽपशब्दैः।।[1]

बहुश्रुत

कवि नयचन्द्र निश्चय ही बहुश्रुत विद्वान थे। उनके विषय में उनकी कृतियों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है।

सामरिक ज्ञान

1 हम्मीरमहाकाव्य—14/42

इसी महाकाव्य में युद्ध विषयक तथ्यों का संकेत प्राप्त होता है। कवि ने सेना के वर्णन में युद्ध के सम्बन्ध में ही न केवल तथ्यो का विवेचन किया है अपितु युद्ध भूमि का भी यथार्थ विस्मयकारी वर्णन किया है। उनके वर्णन को पढ़कर प्रतीत होता है कि कवि ने युद्ध भूमि का साक्षात् अनुभव प्राप्त किया था।

व्याकरण विषयक ज्ञान

व्याकरण विषयक प्रयोगों में कवि की प्रतिभा उत्कृष्ट रूप से दिखायी पड़ती है। प्राचीन विद्वानों की यह उक्ति प्रसिद्ध है—"**निरंकुशा हि कवयः**" इति। सर्वत्र व्याकरण के नियमों का पालन कवियों ने नहीं किया है अपितु कही-कहीं इच्छानुसार प्रयोग किया है। परन्तु यह उक्ति नयचन्द्र के विषय में मिथ्या प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ—

शस्त्राशास्त्रि शराशरि कुन्ताकुन्ति गदागदि दण्डादण्डि।
दन्तादन्ति भुजाभुजि वीराः केऽपि परेविदध् रणलीलाः॥[1]

पौराणिक ज्ञान

ये महाकवि पौराणिक ज्ञान में किसी से कम नहीं थे। इस कारण से स्थान-स्थान पर ऐतिहासिक वर्णन प्रधान इस महाकाव्य पर पुराणो का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है। चौहान वंश की उत्पत्ति के विषय में वर्णन करते समय यह विस्तृत रूप से दिखायी पड़ता है।

जैन धर्मावलम्बी

नयचन्द्र जैन धर्म के पालक आचार्य थे। इस महाकाव्य के आरम्भ में

---

1. हम्मीर महाकाव्य का प्रथम सर्ग

प्रथम सर्ग के द्वितीय पद्य में **श्री ऋषभदेव** को, तृतीय पद्य मे **श्री पार्श्वनाथ** को, चतुर्थ पद्य में **श्री वीर** को, पंचम पद्य में **श्री शान्ति नाथ** को और छठें पद्य में **श्री नेमिनाथ** को सादर प्रणाम करके स्मरण किया है। परन्तु इन सबमें **नयचन्द्र** कहीं भी रूढ़िवादी नहीं दिखायी पड़ते, क्योंकि इन्होंने जैन धर्म के प्रमुख तीर्थंकरों **श्री ऋषभदेव** आदि के साथ **ब्रह्मा, विष्णु, महादेव** और **सरस्वती** का भी आदरपूर्वक श्लिष्ट वर्णन किया है। प्रथम पद्य में सामान्यतया भगवान् परब्रह्म की भी स्तुति किया गया है।[1]

नयचन्द्र सूरि का लक्ष्य किसी पौराणिक, काल्पनिक पद्धति का आश्रय लेकर अपने महाकाव्य के नायक की कल्पना करना, अमानवीय और अतिशयोक्ति पूर्ण गुणों का वर्णन करके अपने ग्रन्थ की विशालता का प्रतिपादन मात्र नहीं है अपितु **हम्मीर देव** के जीवन से साक्षात् सम्बन्ध रखने वाले सत्व, धैर्य, उदारता, वात्सल्य, स्नेह आदि उदात्त गुणो के यथार्थ वर्णन के द्वारा **भारत वर्ष** के उस अद्वितीय वीर पुरुष की कीर्ति गाथा के द्वारा बार-बार आदर सहित स्मरण करता है। अपनी प्रतिभा के द्वारा राष्ट्र के बहुमूल्य कोष में एक उत्कृष्टतम् काव्य रत्न देकर हम्मीर देव के साथ ही साथ स्वयं कवीन्द्र नयचन्द्र अमर हो गये।

इस महाकाव्य में श्री हर्ष महाकवि की प्रशंसा की गयी है। अतएव अपनी रचना में उनके वर्णन का अनुसरण किया है। इस प्रकार उन्होने स्वयं ही हर्ष के विषय में कहा है—

श्री हर्षामरयोः कवि प्रवरयोर्वाक्कल्पवल्लीं निजां
मुघान्तीमभिवर्षतौ नवनवैः पियूषधारारसैः।

1. हम्मीर महाकाव्य—1/1

मद् मानयानि लखेलनैरपहृता या विदुषः काश्चिद्
प्यासामेव निषेकशाद्वलतमः सोऽयं मदुक्तिश्रमः।।[1]

नयचन्द्र निश्चय ही उत्तम कोटि के महाकवि थे। किसी भी रचना के गुण वैशिष्ट्य के उपायों के विषय में भी हमेशा सावधान दिखायी पड़ते हैं। यह मेरा विश्वास है कि इस वीर महाकाव्य का मुख्य गुण चारु है।

''तत्पट्टाम्भोज चंचत्वरवरकिरणः सर्वशास्त्रैक बिन्दुः[2]
सूरीन्दुः श्री नयनेन्दुर्जयति कविकुलोदन्वदुल्लासनेन्दुः
तेनेतेनैव राज्ञा स्वचरित् तनने स्वप्ननुन्ने कामं
चक्राणं काव्यमेतन्नृपतिततिमुदे चारु वीरां करम्ययम्।।''

नयचन्द्र **काव्य प्रकाश** आदि लक्षण ग्रन्थों के सम्यक् विद्वान् थे। उन्होंने अपने महाकाव्य का निर्माण सहृदय लोगों को प्रसन्न करने के लिए किया। यदि कोई सहृदय इस काव्य से आनन्द नही प्राप्त कर सकता तो इसमें महाकवि का कोई दोष नहीं है। जैसा उन्होंने स्पष्ट कहा है—

काव्यं काव्यप्रकाशादिषु रसबहुलं कीर्तयन्त्यु त्तर्मयत्
तन्नो भावैर्विभावप्रभृतिभिरनभिव्यक्त मुक्तैः कदाचित्।[3]
तेनेति व्यक्तमुक्तं सरस जन मनः प्रीतये काव्यमेतत्
कश्चिच्चेन्नी रसोऽस्मिन् सृजति वत मुदं नो तदा कोऽस्य दोषः।।

इस प्रकार आचार्य नयचन्द्र बहुश्रुत विद्वान और महाकवि थे। उन्होने अपनी विलक्षण प्रतिभा और अपूर्व पाण्डित्य के द्वारा हम्मीर महाकाव्य को निर्मित कर संस्कृत साहित्य का महान उपकार किया इसमें कोई संदेह नहीं है।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—14/28
2. हम्मीर महाकाव्य—14/26
3. हम्मीर महाकाव्य—14/34

कृतियाँ

कवीन्द्र नयचन्द्र के द्वारा विरचित दो ग्रन्थ उपलब्ध है—**रम्भामंजरी** और **हम्मीर महाकाव्य**।

रम्भामंजरी

रम्भामंजरी प्राकृत भाषा में लिखित एक अपूर्ण सट्टक है। इस सट्टक के केवल तीन यवनिका ही उपलब्ध है। माना जाता है भ्रान्तिवंश हाथ से लिखे व प्रकाशित इस काव्य के अन्त में कवि ने 'नाटिका' यह उल्लेख किया है—

समाप्ता रम्भामंजरी नाटिका।

लेखक ने नटसूत्रधार के माध्यम से इस सट्टक को कहा है। इसकी कथा वस्तु संक्षिप्त है। **पंगु** उपाधिकारी **वाराणसी** के शासक राजा **जैतचन्द्र जयचन्द्र** के सदृश सात राजमहिषियों के सती होने जाने पर भी अपने चक्र वर्तित्व को प्रमाणित करने के लिए **लाट नरेश** देवराज की पुत्री **रम्भा** के साथ विवाह किया। इस सट्टक को भगवान्[1] **विश्वनाथ** की यात्रा में एकत्रित लोगों के मनोरंजन के लिए राजा की इच्छा से कवि ने लिखा।

यद्यपि कवि की इस कृति का **कर्पूरमंजरी** में उत्कृष्ट रूप से प्रतिपादन हुआ है किन्तु यहाँ वस्तुतः कर्पूरमंजरी का अनुकरण मात्रदिखायी पड़ता है। वसन्त वर्णन में दासी विदूषक के मध्य कलह, विरह ज्वाला में जलते हुए राजा के मनोरंजन के लिए द्वारपाल द्वारा किया गया प्रकृति वर्णन ये सब

---

1. जिनरलकोश पृ0 329 रामचन्द्र शास्त्री व बी0 केवलदास ने निर्णयसागर मुद्रणालय से 1889 ई0 सन् मे प्रकाशित किया।

कर्पूर मंजरी की कथा स्मरण कराते हैं। यहाँ कुछ भावों का थोड़े परिवर्तन के साथ वर्णन किया गया है। जैसे—विदूषक का स्वप्न दर्शन, अशोक, मौलसिरी व आक का राजा की काम वासना की वृद्धि के लिए वर्णन किया गया है।

यद्यपि कर्पूरमंजरी की कथावस्तु छोटी है परन्तु उसकी तुलना रम्भामंजरी के साथ नहीं कर सकते। इस सट्टक के निर्माण का उद्देश्य इसके अवसान पर भी ज्ञात नहीं होता है। वस्तुतः यह खण्डित सट्टक है। रम्भामंजरी कर्पूरमंजरी के समान प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाती है।

नयचन्द्र संस्कृत भावाभिव्यक्ति में समर्थ कवि थे। इसके कुछ श्लोक वस्तुतः उनके कवित्व के परिचायक है।

दृश्य काव्य की दृष्टि से रम्भामंजरी का कोई महत्व नहीं है। विचार किया जाता है दर्शकों के समक्ष रंगमंच पर एक राजा का, उसके पश्चात दो लोग, पुनः अन्यों का, फिर राजा का राज महिषी के साथ काम विह्वलता का प्रदर्शन क्या रुचिकर हो सकता है। यह श्रृंगार पूर्ण व भावों से पूर्ण होने पर भी गम्भीर तथा उदात्त नहीं है। चित्रण में भी स्वाभाविक प्रभाव की अपेक्षा कृत्रिमता की ही प्रबलता अनुभूति होती है।

कवि ने नट सूत्रधार व द्वार प्रतिपालक के द्वारा राजा की प्रशंसा पूर्ण वचनों में संस्कृत, मराठी भाषाओं व छन्दों का प्रयोग किया है। नयचन्द्र ने इस प्रकार के पात्रों के द्वारा भी प्राकृत का प्रयोग करवाया है जो प्राचीन नियमानुसार संस्कृत ही बोलते थे। इन कवि की शैली नवीन प्रकार की है। इस प्रकार इसमें प्राकृत में योग्य पात्रों के द्वारा संस्कृत के पद्यों का उच्चारण भी प्राप्त होता है। निश्चय ही सट्टक में संस्कृत भाषा का प्रयोग शास्त्र सम्मत नहीं है किन्तु थोड़ा बहुत लापरवाही प्रकट होती है। रम्भामंजरी में साहित्यिक

मराठी भाषा का भी प्रयोग दिखायी पड़ता है। अन्य दृष्टि से भी इस ग्रन्थ का अत्यन्त महत्व है। उदाहरणार्थ—

जरिपेखिला मस्तकावरी केशकलापु।
तरी परिस्खलिला मयूरांचे पिच्छप्रतापु।।
जरि नयनविषयु केला वेणीदण्डु।
तरि साक्षाज्जाला भ्रमण (र) श्रेणी दंडु।।
जरि दृग्गोचरी आला विसाल भालु।
तरि अर्द्धचन्द्रमंडलु भइलास अर्णायु जालु।।
भ्रूजुंगलु जाणुद्वैधीकृतकंदर्प चापु।
नयननि जिर्जतु जाला षंजनु निःप्रतापु।।
मुख मण्डल जाणु शशांक देवताये मंडलु।
सर्वागसुन्दरता मूर्तिमंतुकामु।।[1]
कल्पद्रुम जैसे सर्वलोकआशाविश्रामु। जवनिकांतर?

---

1 जैसलमेर भण्डार नामक पुस्तकालय मे हस्तलिखित रम्भामजरी और जयपुर के पौथीखानानामक हस्तलिखित ग्रन्थालय में भी द्रष्टव्य है।

हम्मीर महाकाव्य का सामान्य परिचय

चौदह सर्गों से सुशोभित **हम्मीर महाकाव्य** निश्चय कवि **नयचन्द्र** की सर्वोत्कृष्ट रचना है। काव्यतत्व मर्मज्ञों की दृष्टि से ऐतिहासिक महाकाव्यों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। नयचन्द्र ने हम्मीर देव का मुगल शासक अलाउद्दीन के साथ युद्ध का तथा चौहान वंश के कुछ शासकों से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का अनुकरण कर हम्मीर महाकाव्य की रचना किया।

इस महाकाव्य में सभी गुण विद्यमान है। महाकाव्यों के अनुरूप ही गुण एवं अलंकारों का भी प्रयोग किया है। महाकाव्य में विविध वृत्तों में निबद्ध 1575 श्लोक विद्यमान है।[1]

यवन शासक अलाउद्दीन के साथ हम्मीर देव की शत्रुता में वृद्धि के प्रमुख कारण थे—**रणस्तम्भपुर (रणथम्भौर)** दुर्ग पर यवनों का आक्रमण, **नुसरत खान** का युद्ध में मरना, **अलाउद्दीन** का स्वयं हठपूर्वक युद्ध में उतरना, **रतिपाल** का **हम्मीर देव** के प्रति विश्वासघात, राजपुत्रों का पराजय, पुत्री चयन आदि थे।

नयचन्द्र ने इन सभी घटनाओं का जिस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन किया है उस प्रकार प्रमाणिक और प्रत्यक्ष आधार के बिना कोई भी कवि लिखने में समर्थ नहीं हुआ है।

स्वतन्त्र इतिहासलेखन में तत्पर यवन लेखकों ने भी इन सभी घटनाओं का समर्थन किया है। प्रतीत होता है कि कवि ने उस समय उपलब्ध समस्त

---

1. डॉ0 दशरथ शर्मा कृत 'हम्मीर महाकाव्य—एक पर्यालोचन इसमे हम्मीर महाकाव्य की श्लोकसंख्या 1476 कहा है परन्तु वह शुद्ध नही है। इसलिए हम्मीर महाकाव्य की भूमिका, पृ0 स0 29 द्रष्टव्य है।

सामग्रियों का उपयोग करके इस महाकाव्य को लिखा। महाकाव्य के प्रारम्भ मे चतुर्थ सर्ग में **चौहान वंशीय** राजाओं के वंश वृक्ष का कालक्रमानुसार विवरण ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तृतीय सर्ग में **पृथ्वीराज** का वर्णन विशेषतया उनके देहावसान का कारण इतिहास के क्षेत्र मे अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नयचन्द्र ने वर्णन किया है कि पृथ्वीराज ने शहाबुद्दीन को सात बार पराजित किया और युद्ध के बदले अनुकम्पा के कारण उसे छोड़ दिया किन्तु **शहाबुद्दीन** से एक बार युद्ध में असावधानी के कारण हार गये और शहाबुद्दीन ने उन्हें पकड़कर कारागार में डाल दिया। उन्होंने वहाँ आमरण अनशन किया। इस घटना का उल्लेख इस प्रकार किया है—

अथ स धरणिकान्त सद्गुणाली निशान्तः,
प्रतिहतखलजातः प्रौढ़राढ़ावदातः।
विधि विलसित योगादाप्तप्रबन्धः शकेन्द्राद्
द्विरपि रतिमहासीद् भोजने जीवने च॥

इस महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग के अन्त में **वीर** शब्द का प्रयोग मिलता है। इस कारण से संस्कृत महाकाव्य की परम्परा के अनुसार यह **वीरांकमहाकाव्य** है। इसमें चौहान वंशीय पूर्व पुरुषों **वासुदेव, नरदेव, सिंह राज, विग्रह राज दुर्लभ राज; विशाल देव, अनल देव** इत्यादि प्रमुख राजाओं का ललित वर्णन हुआ है। इस महाकाव्य के नायक वीर हम्मीर देव है। अतः उनका विस्तारपूर्वक सर्वोत्कृष्ट चित्रण महाकवि ने किया है।

कविचन्द्र ने नयचन्द्र के **हम्मीर महाकाव्य** के रचनाकाल के विषय में कोई भी संकेत नहीं किया है अतः इस महाकाव्य की रचना कब हुई यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। फिर भी अनुमान से थोड़ा विचार किया जा सकता है। जैसा स्वयं कवि ने कहा है।

नयचन्द्र ने कहा है कि इस महाकाव्य की प्रेरणा **गोपाचल नरेश** तोमर राजवंश के राजा **श्रीमन् वीरमदेव** की राजसभा में कही गयी इस उक्ति से प्राप्त हुई कि, "प्राचीन कवियों की तरह इस समय कोई कवि महाकाव्य के निर्माण में समर्थ नहीं है।" राजा वीरमदेव ने निश्चय ही 1422 ई० वर्ष में राज्य किया। यह उस समय के शिलालेखों से ज्ञात होता है। उस समय वह अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। इस कारण से उनका राज्यकाल 1382 से आरम्भ कर 1422 ई० वर्ष तक स्वीकार किया जा सकता है। उनके राज्य काल के बीच में चौदहवीं शती के आरम्भ में नयचन्द्र ने इस महाकाव्य को रचा यह अनुमान से कहा जा सकता है। वीर हम्मीर देव की मृत्यु 1301 ई० वर्ष स्वीकार किया गया है। इस कारण से इस महाकाव्य का रचना काल चौदहवीं शताब्दी स्वीकार किया जा सकता है। इसके अनुसार हम्मीरदेव का स्वर्गारोहण काल सौ वर्ष पूर्व हुआ था।

दूसरी रीति के अनुसार राष्ट्र वीर हम्मीर देव की मृत्यु के 100 वर्ष पश्चात् उनकी पुण्य स्मृति में कवि ने इस महाकाव्य को लिखा।

निश्चय ही हम्मीर महाकाव्य उत्तम कोटि का राष्ट्रीय महाकाव्य है। इस प्रकार के उदात्त भावों से परिपूर्ण, रस, अलंकार आदि से परिपूर्ण संस्कृत महाकाव्य सर्वत्र नहीं प्राप्त हो सकता है। न ही यह पौराणिक कथाओं का अनुकरण करने वाला काव्य है और न ही साधारण श्रृंगार रस का पोषण करने वाला। अपितु ऐतिहासिक राष्ट्रीय भावना का उद्दीपक, वीर रस प्रधान यह काव्य है। इस महाकाव्य में आपने राष्ट्र वीर के यश का वर्णन किया है जिसके द्वारा अपने राष्ट्र के धर्म के, कुल के, आदर्श और संस्कृति की रक्षा के लिए संसार के इतिहास और नृशंसता की दृष्टि से महत्वपूर्ण इस महाकाव्य में यवन शासक अलाउद्दीन के अश्रवणीय आमन्त्रण को वीर

हम्मीर देव ने गर्वपूर्वक अपने पराक्रम से तिरस्कार किया है।

हमारे देश के गौरववर्द्धक **राजस्थान प्रदेश** का यह सुपुत्र राष्ट्र के, गौरव के और धर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व अपनी जन्मभूमि की बलिवेदी पर श्रद्धा से अर्पित किया।

यह देशभक्त स्वाभिमान के द्वारा वीरतापूर्वक जीवन व्यतीत करता हुआ जयध्वनि के साथ स्वर्गलोक गया। माना जाता है कि भगवान की प्रेरणा से ही कवि शिरोमणि नयचन्द्र सूरि वीर हम्मीर देव के शत् वार्षिक श्राद्ध तर्पण के अवसर पर श्रद्धा भाव से इस काव्य कुसुमांजलि को उन्हें समर्पित किया।

हम्मीर महाकाव्य में हमारे राष्ट्र के ऐतिहासिक वीरों की राष्ट्र रक्षा विषयक कीर्तिकथा को गौरवमयी वाणी द्वारा वर्णन किया गया है। इस कारण इस महाकाव्य को राष्ट्रीय महाकाव्य कह सकते हैं।

चौहानों का मूल निवास स्थान का, शाकम्भरी के सपादलक्ष देश के, **अजयमेरु नगर** आदि के स्थापना विषयक महत्वपूर्ण तथ्यों का इस महाकाव्य में उल्लेख हुआ है। अजयमेरु नगर के अन्तिम सम्राट **पृथ्वीराज चौहान** का प्रायः सौ पद्यों में विस्तार से वर्णन किया है। पृथ्वीराज थोड़ी सी राजनीतिक असावधानी और अनुचित आत्म विश्वास के कारण पराजित हुए और म्लेच्छों ने भारत की प्रमुख भूमि पर आधिपत्य प्राप्त कर **दिल्ली** पर भी अपना साम्राज्य स्थापित किया। यह गूढ़ अर्थ पृथ्वीराज के वर्णन से प्रकट होता है। दूसरों के साथ पृथ्वीराज की प्रजा वत्सलता और राष्ट्राभिमान के लिए वीरता का मनोरम चित्रण समास के द्वारा किया गया है और इसमें प्रशस्तपदावली का भी सम्यक् चित्रण है।

पृथ्वीराज के मृत्यु के उपरान्त उनके पुत्र **गोविन्दराज** ने **रणस्तम्भपुर**

पर नवीन राज्य स्थापित किया। उनके सप्तम् वंश परम्परा में ये महावीर हम्मीरदेव पैदा हुए। नयचन्द्र ने **गोविन्दराज** से आरम्भ कर हम्मीर देव के पिता **जैत्रसिंह** तक उत्पन्न राजाओं का संक्षिप्त परिचय देते हुए चतुर्थ सर्ग के अन्तिम भाग में हम्मीर की उत्पत्ति का उल्लेख किया है। अतः चौथे सर्ग में काव्य की परम्परा का आश्रयलेकर बसन्त आदि ऋृतुओं, जल क्रीड़ा और श्रृंगार के अनुकूल प्रसंगों का सुललित वर्णन दृष्टिगोचर होता है।

रणस्तम्भपुर दुर्ग सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था। **दिल्ली** के समीप एक अत्यन्त दुर्गम दुर्ग था। इस कारण उस दुर्ग के ऊपर यवन शासकों की कुटिल दृष्टि रहती थी।

इस कारण से ही अनेक बार यवन शासक ने रणस्तम्भ पुर दुर्ग पर कपट के द्वारा आक्रमम किया। किन्तु चौहानवंशीय राजाओं का उत्साह कम नहीं हुआ। महाकाव्य के दसवें सर्ग से लेकर तेरहवें सर्ग तक अलाउद्दीन के साथ युद्ध का वर्णन है। हम्मीर के शासन काल में दिल्ली पर अलाउद्दीन का शासन था। कुटिल बुद्धि वाला, विस्तृत सैन्य बल से समन्वित यह शासक बल से या छल से जिस किसी भी प्रकार से रणस्तम्भपुर दुर्ग को अपने वंश में करने का प्रयास किया। किन्तु हम्मीर देव के अद्‌भुत बल के समक्ष प्रायः यह **किंकर्तव्यविमूढ़** हो जाता था। उसके साथ संघर्ष में हम्मीर के द्वारा प्रदर्शित वीरता, शरणागतवत्सलता और कुल मर्यादा की रक्षा का विस्तृत वर्णन किस सहृदय के मन का हरण नहीं करता। चौदहवें सर्ग में रणस्तम्भपुर के विनाश का और हम्मीरदेव के प्राणोत्सर्ग का हृदय विदारक वर्णन मिलता है। महाकवि नयचन्द्र के द्वारा वर्णित इस वृत्ति में भारतीय संस्कृत साहित्य का कोई अपूर्व वीर कथा माना जा सकता है।

इस महाकाव्य के नायक हम्मीरदेव धीरोदात्त, सत्वशील, वीर पुरुष है।

इसका प्रतिनायक अलाउद्दीन धर्मध्वंसक, नीच स्वभाव वाला वृहत्साम्राज्य का अधिपति है। उसकी प्रभुता और सैन्य शक्ति की विशालता प्रसिद्ध है। उसके जीवन का उद्देश्य ही था जिस किसी भी प्रकार से हो सके साम्राज्य का संवर्द्धन करना। क्रूर बुद्धि वाला यह निरन्तर साम्राज्य लोगों और छोटे राज्यों के विनाश में तत्पर दिखायी पड़ता है। उसकी मानवता के प्रति न तो सद्भावना ही थी और न ही अपने पूर्वजों के प्रति श्रद्धा भावना। यह अपने वचनों का न तो पालन करता था और न ही उसके मूल्य को जानता था।

दूसरी तरफ हम्मीरदेव धर्मात्मा पुण्यमूर्ति, शरणागतवत्सल, जनताप्रिय, स्वाभिमानी क्षत्रिय है। उनका जीवन आदर्शगुणों का समन्वय है। ये राष्ट्रौर लोगों के प्रति अपने कर्तव्य को ठीक से जानते थे अपने सेवकों के प्रति भी उनका व्यवहार उचित था। वे निरर्थक नहीं बोलते थे जो बोलते थे उसका पालन प्राणों से करते थे।

महाकाव्य के तेरहवें सर्ग में जो वर्णन किया है उससे प्रतीत होता है कि कवि का लक्ष्य केवल काल्पनिक और पौराणिक रीति का आश्रय लेकर नायक का अमानवीय चित्रण उपस्थित करना मात्र नहीं था।

वस्तुतः कवि ने हम्मीर के सत्व, औदार्य धैर्य और वात्सल्य का यथार्थ चित्रण करके भारत वर्ष के एक अद्वितीय वीर मनस्वी का यशोगान करके अपनी लेखनी को पवित्र किया है। उसके परिणाम स्वरूप संस्कृत साहित्य को **हम्मीर महाकाव्य** के सदृश एक अमूल्य महाकाव्य रत्न की प्राप्ति हुई।

इस महाकाव्य का चौदहवाँ सर्ग छोटा है। इस सर्ग में कवि ने प्रारम्भ में हम्मीर देव के लोकोत्तर गुणों की प्रशंसा के लिए कुछ श्लोकों की रचना किया है।[1] हम्मीर देव के इस प्रकार अचानक मृत्यु से देश के मनस्वियों और

1. हम्मीर महाकाव्य—14/1-15

कवियों ने जिस प्रकार के भावों को प्रकट किया उसी प्रकार के भाव का ज्ञान महाकवि ने करवाया है। अन्तिम पद्य में नयचन्द ने अपने प्रगुरु का परिचय दिया है।[1] यद्यपि इस महाकाव्य के निर्माण की प्रेरणा महाकवि को तोमर वंशीय राजा **वीरमदेव** द्वारा राजसभा में पण्डितों को कहे गये व्यंग्य वचनों से मिला किन्तु महाकाव्य का वर्ण्य विषय हम्मीर के चारों तरफ होने के सन्दर्भ में स्वयं हम्मीर देव ने स्वप्न में आकर नयचन्द्र को प्रेरित किया इसका संकेत नयचन्द्र ने अपने महाकाव्य में किया है।[2] उसी वीर नायक के स्वप्नगत निर्देश के अनुसार राजा की खुशी के लिए इस वीर महाकाव्य का निर्माण हुआ। अतः यह महाकाव्य निःसंदेह ही हमारे साहित्य की अपूर्व निधि है। इस महाकाव्य के नायक का चरित्र जिस प्रकार प्रातः स्मरणीय है इस विषय में स्वर्गीय **राष्ट्र कवि श्री मैथलीशरण गुप्त** के शब्दों में— ''**कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है,** कि कोई भी कवि हो सकता है परन्तु कवि की शक्ति निपुणता, वर्णन रीति के प्रभाव से हम्मीरदेव का चरित्र अलौकिक दिखायी पड़ता है। हम्मीर का शौर्य, औदार्य, त्याग आदि गुण विशेष रूप से इकट्ठे होकर मानो उद्घोष करते हैं कि '**अभयं स्वस्ति अरं कृतिः**' इस वैदिक आदर्श से परिपूर्ण यह अद्वितीय वीर स्वयं निडर थे और शरण में आये हुए को सुरक्षा प्रदान करने में भी निश्चय ही समर्थ थे। रूप, शील आदि से सुशोभित हम्मीरदेव का चरित्र यदि हमारी मातृभूमि के गौरव को बढ़ाता है तो उन वीर के चरित्र को याद करके हम धन्य होते हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—14/22-23
2. अपि च तेने तेनैव राज्ञा स्वचरित तने स्वप्नतुन्नेन कामं चक्राण चक्राणं काव्यमेतन्नृपति ततिमुदे चारु वीरांकरम्यम्।।

   हम्मीर महाकाव्य—14/26

इस प्रकार के वीरों के आदर्श चरित्र को लोगों के सम्मुख लाकर लोकोपकार करने वाले अंगुली पर गिने जा सकने योग्य कुछ रससिद्ध कवियों ने प्रयत्न किया है और सफलता भी प्राप्त किया है। इस कार्य में परमपूज्य **महाकवि नयचन्द्र** ने महान सफलता प्राप्त किया है यह सुनिश्चित है। अतः उन्होंने ही प्रारम्भ में कहा है—

''सदा चिदानन्दमहोदयैक हेतुं परं ज्योतिरूपास्महे सत्।

यस्मिन् शिवश्रीः सरसीव हंसी विशुद्धिकृद्धारिणिरंरमीति।।''

हम्मीर महाकाव्य से पूर्व महाकवियों द्वारा लिखित अनेक महाकाव्यों को मैंने इस शोध प्रबन्ध में प्रतिपादित किया है। **हम्मीर महाकाव्य** के पंचम सर्ग में बसन्त का, षष्ठ सर्ग में, जल क्रीड़ा का और सप्तम् में रति क्रीड़ा का वर्णन दिखायी पड़ता है। वह सब प्राचीन काव्य परम्परा के निर्वहन मात्र के लिए कवि ने वर्णन किया है।

इस महाकाव्य का अधिकांश ऐतिहासिक भाग सर्वथा स्फुट और सुसंगठित है। इसके पात्र मानवीय गुण-दोषों से समन्वित है। यद्यपि हम्मीरदेव में अनेक महान गुण विद्यमान है परन्तु कवि ने उनके गुण प्रदर्शन के साथ-साथ दोषों का भी प्रदर्शन किया है।

महाकाव्यत्व की दृष्टि से यह एक सफल रचना है। नयचन्द्र के शिष्य के कथनानुसार इस महाकाव्य में **अमर कवि** के सदृश लालित्य और **हर्ष कवि** के समान चमत्कार विद्यमान है। मिथ्या शब्दों का आडम्बर नहीं दिखायी पड़ता है, अर्थालंकार की बहुलता है। इसका काव्य सौष्ठव स्वयं ही सम्यक् रूप से प्रतिपादित होता है। नयचन्द्र ने प्रकृतमहाकाव्य में अनेक शब्दों का उसी के अनुरूप अर्थों में प्रयोग किया है जिसे वर्तमान कालीन

इतिहासविद् ठीक नहीं मानते हैं। यवनों के लिए सुन्होंने शकतुरुष्क यवन शब्दों का प्रयोग किया है।

मुगलों को उन्होंने **घटैकदेशीय** शब्द से अथवा **षर्प्पर** शब्दो से सम्बोधित किया है। यवनों का नाम अशुद्ध रूप से मिलता है। जैसे— **शहाबदीन, अल्लावदीन जल्लालदीन, उल्लूखान, महिमासाहि, निसुरतखान** इत्यादि। इसके प्रथम द्वितीय सर्ग की कथा आंशिक रूप से **पृथ्वीराज विजय काव्य** की कथा के साथ साम्यता है। उसी प्रकार पृथ्वीराज विजय में भी चौहानों के सूर्यमण्डल से अवतरण की कथा प्राप्त होती है जिस प्रकार **हम्मीर महाकाव्य** में। पृथ्वीराज विजय में वर्णित चौहान नरेश **वासुदेव** की तरह ही कविवर नयचन्द्र ने वीर शिरोमणि के दिग्विजय का वर्णन किया है।

हम्मीर महाकाव्य का रचनाकाल–

महाकवि नयचन्द्र के हम्मीर महाकाव्य की रचना कब हुई इस विषय में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। **श्री मोहन लाल दलीचन्द देसाई महोदय** ने अपने ग्रन्थ **''जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास''** में इस ग्रन्थ का रचना काल 1440 विक्रम संवत् स्वीकार किया है।

श्री अगरचन्दनाहटा महानुभाव की इसी के समीप 1486 विक्रम संवत में लिखित प्रतिलिपि आज भी सुरक्षित है। इस महाकाव्य की रचना 1486 विक्रम संवत् से पूर्व ही हुई होगी क्योंकि कवि ने अपने को जयसिंह सूरि का शिष्य और पौत्र स्वीकार किया है।

जयसिंह सूरि ने 1391 विक्रम संवत् में **कृष्ण गच्छ** की स्थापना किया। इसलिए इस महाकाव्य की रचना 1391 विक्रम संवत् से पूर्व नहीं हुआ होगा। इसलिए ही देसाई महोदय ने हम्मीर महाकाव्य का रचना काल

1448 विक्रम संवत् स्वीकार किया है। **श्रीमत् रुद्रकाशिक** ने **छिताईवार्ता** नामक ग्रन्थ की भूमिका में हम्मीर महाकाव्य का रचनाकाल 1542 विक्रम संवत् स्वीकार किया है। परन्तु इनके 1542 विक्रम स्वीकार करने का आधार क्या है यह ज्ञात नहीं होता है। माना जाता है मुनि **जिनविजय** द्वारा सम्पादित ग्रन्थ हम्मीर महाकाव्य के अन्त में लिखित दूसरी पंक्ति से उनके मन में भ्रम उत्पन्न हुआ होगा।

सं० 1542 ई० **वर्ष** में श्रावण मास श्री कृष्ण गच्छ के जयसिंह सूरि के शिष्य नयसिंहने अपने पढ़ने केलिए **श्री पेरोजपुर** में **हम्मीर महाकाव्य** लिखा। यहाँ पर ग्रन्थांक 1567 लिखा है समय—1542 विक्रमाब्द। यह ग्रन्थ का रचनाकाल नहीं अपितु प्रतिलिपि काल है। अतः इसे ग्रन्थ का रचना काल नहीं स्वीकार किया जा सकता। जैन साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान **श्री मन अगरचन्द नाहटा** महोदय ने इसके रचनाकाल के विषय में लिखा है कि—"**हम्मीरमहाकाव्य** की एक हस्तलिखित प्रति (आदर्शः) मैंने **कोटा नगर** के **जैन भण्डार** में प्राप्त किया जो 1486 विक्रम संवत् में लिखा गया है। इसलिए इस ग्रन्थ की मूल रचना इससे पूर्व अवश्य लिखी गयी होगा। तोमर राजा **श्री वीरम देव** की प्रेरणा से इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ। वीरमदेव के पिता **श्री वीर सिंह** ने 25 वर्ष तक शासन किया। उसके पश्चात् वीरमदेव ने 1457 विक्रम संवत् में दुर्गपतिपद को अलंकृत किया।

श्री वीरमदेव से सम्बद्ध शिलालेख **गोपाचल (ग्वालियर)** के **सुहानिया** नामक स्थान के **अम्बिका देवी** के मन्दिर से प्राप्त हुआ है जो 1467 विक्रम संवत् में लिखा गया है। गोपाचल के दुर्ग पतियों में 1481 विक्रम में राजा **वीरमदेव** के पौत्र तथा **गणपति** के पुत्र **श्री डूंगरसिंह** का उल्लेख मिलता है। इसलिए यह कह सकते हैं कि इस काव्य के निर्माण की अन्तिम सीमा

1467 विक्रम संवत् के पश्चात् नहीं हुआ होगा। नयचन्द्र वीरमदेव के समीप ही हुए थे। राजा के युवावस्था में काव्य निर्माण के विषय उत्कण्ठा उत्पन्न हुआ था। ऐसी सम्भावना है। अतएव, इस ग्रन्थ का रचनाकाल 1457 विक्रम संवत् के समीप हुआ होगा।

श्री नाहटा महानुभाव के कथनानुसार इसकी रचना 1450 विक्रम संवत् के समीप हुआ होगा। इस प्रकार **मोहन लाल देसाई** महोदय ने समर्थन किया है। इतिहास तत्वमर्मज्ञ **डॉ0 दशरथ शर्मा** ने भी तर्कसंगत अनुमान के द्वारा **श्री मोहन लाल देसाई महोदय** स्वीकृत 1440 विक्रम संवत् के समीप इस महाकाव्य का रचनाकाल स्वीकार किया है। लिखा है कि **हम्मीर महाकाव्य** में समय का निर्देश नहीं है किन्तु नयचन्द्र अपने गुरु के गुरु जयसिंह सूरि के **कुमारपालचरित** ग्रन्थ का प्रथम आदर्श 1422 विक्रम संवत् में लिखा गया है।

हम्मीर महाकाव्य की रचना के समय **नयचन्द्र** अत्यन्त प्रसिद्ध हो चुके थे। अतः 1442 विक्रम के कुछ समय पश्चात् 1440 विक्रम संवत् इस ग्रन्थ का रचनाकाल स्वीकार किया गया है जो उचित प्रतीत होता है।

उसके पश्चात् **डॉ0 दशरथ शर्मा** ने लिखा है कि इस महाकाव्य की रचना **वीरम देव** के काल में हुआ था। शिलालेख से ज्ञात होता है कि इनके पौत्र **श्री डूंगर** राजा ने 1497 से लेकर 1510 विक्रम संवत् तक शासन किया। यदि डूंगर राजा का प्रथम राज्य वर्ष 1497 विक्रम स्वीकार किया गया है तब वीरमदेव का प्रथम राज्य वर्ष उससे 50 वर्ष पूर्व 1440 विक्रम वर्ष में समाप्त हुआ होगा। जयपुर ग्रन्थालय के एक ग्रन्थ को देखने से ज्ञात होता है कि वीरम देव 1497 विक्रम तक राज्य किये।

उनके पुत्र ने बहुत समय तक राज्य नहीं किया। इस प्रकार अनुमान

किया जाता है कि वीरम देव वृद्धावस्था में दिवंगत हुए। इस प्रकार 40 वर्षो तक इन्होंने शासन किया। सम्भवतः नयचन्द्र वीरमदेव के राज्य में राज्यारम्भ केसमय ही गये थे। युवा राजा ने काव्यप्रियता के कारण नूतन महाकाव्य के निर्माण की इच्छा प्रकट की। नयचन्द्र इस समय 50 वर्ष के थे। अतः 1440 विक्रम संवत् इस महाकाव्य का रचनाकाल सम्भवतः होगा। इस प्रकार **मोहनलाल देसाई नाहटा** और **डॉ0 दशरथ शर्मा** के लेखों का आश्रय लेकर हम्मीर काव्य का रचनाकाल 1450 विक्रम संवत् स्वीकार कर सकते हैं।

अनुमान किया जाता है कि हम्मीर की मृत्यु 1301 ईस्वीर में हुआ था। यदि हम्मीर महाकाव्य का रचनाकाल 1400 ई0 सन् स्वीकार करते हैं तो हम्मीर देव की मृत्यु के सौ वर्ष पूर्ण हो गये होते हैं। दूसरी दृष्टि से आधुनिक पद्धति के अनुसार उस राष्ट्रवादी के वीरगति के प्रथम सौ वर्ष पूर्ण होने को व्यक्त करने वाला यह महाकाव्य है।

कुछ लोग इस प्रकार प्रतिपादित करते हैं कि, इस ग्रन्थ का लिपिकाल 1486 विक्रम संवत् है। अतः काव्यरचना के प्रायः 50 वर्षों के अन्दर ही इसकी प्रतिलिपि सम्भवतः लिखी गयी होगी। दूसरे सिद्ध करते हैं कि श्री **कीर्तने** महानुभाव के द्वारा 1542 विक्रम संवत् में लिखित प्रतिलिपि प्राप्त हुई। वह **कोटानगर** की हस्तलिखित प्रतिलिपि की अपेक्षा 50 वर्ष प्राचीन प्रतीत होती है। किन्तु **कीर्तने** महोदय के प्रतिलिपि ग्रन्थ की पुष्पिका लेख के अध्ययन से शंका उत्पन्न होती है कि यह प्रतिलिपि 1542 विक्रम में न लिखी होकर अपितु 1452 विक्रम में लिखी गयी होगी। क्योंकि पुस्तक का प्रतिलेखक अपने को जयसिंह सूरि का शिष्य बताया है। **जयसिंह** 1422 विक्रम वर्ष में विद्यमान थे। अतः उनके शिष्य **नयहंस** का समय 1542

विक्रम सम्वत् नहीं हो सकता है। माना जाता है **कीर्तने महोदय** ने शीघ्रतावश चार के स्थान पर पाँच लिखने के विपर्यय से 1452 के स्थान पर 1542 यह लिख दिया।

यदि यह कल्पना उचित है तो **कीर्तने महोदय** द्वारा लिखित आदर्श प्राचीन सिद्ध होता है। यदि **नयहंस** द्वारा लिखित आदर्श 1452 विक्रम वर्ष में लिखा है तो काव्य की रचना काव्य की रचना उसी वर्ष अथवा पांच वर्षो के भीतर हुई होगी। दूसरे प्रकार से उससे पूर्व 25 वर्षों के भीतर से नयचन्द्र ने इस महाकाव्य की रचना किया यह उचित प्रतीत होता है। **कोटा नगर** के हस्तलिखित आदर्श के अन्तिम पुष्पिका में इस प्रकार लिखा है—

श्री चौहानवंशीय श्री हम्मीर महाकाव्य समाप्त होता है। महाकवि श्री नयचन्द्र सूरि की कृति है। श्री संवत् 1486 वर्ष में मार्ग शीर्ष शुक्ल पक्ष की एकादशी को गुरुवार के दिन लिखा गया। शुभ हो लेखकों और पाठकों का।

यादृशं पुस्तकं दृष्टं तादृशं लिखितं मया।

यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते। श्री शुभं भवतु।

इस प्रकार भाव भाषादि दृष्टि से **रम्भा मंजरी** तथा **हम्मीर महाकाव्य** कवि **नयचन्द्र** की ही दो रचनाएं हैं यह स्पष्ट रूप से कह सकते हैं।

तृतीय अध्याय

क. हम्मीर महाकाव्य की कथावस्तु

ख. कथानक का औचित्य

हम्मीर महाकाव्य की कथावस्तु

महाकवि **नयचन्द्र सूरि** के द्वारा रचित **हम्मीर महाकाव्य** के प्रथम सर्ग में **चौहान** से **सिंहराज** तक के **राजस्थान** के इतिहास में सभी लब्धप्रतिष्ठ राजाओं का सुललित और ऐतिहासिक दृष्टि से अतिशय महत्वपूर्ण वर्णन प्राप्तहोता है। प्राचीन काल में **ब्रह्मा** ने पवित्र **पुष्कर क्षेत्र** में यज्ञ के आरम्भ काल में दैत्यों से रक्षा के लिए अपूर्व तेजक उसके पश्चात् सूर्यमण्डल से तलवार उठाये हुए किसी पुरुष ने अवतार लिया। उसी पुरुष को यज्ञ की रक्षा सच्चाई से करने के कारण ब्रह्मा ने निर्विघ्न होकर यज्ञ किया। यह पुरुष ब्रह्मा से शीघ्र इच्छित होकर पृथ्वी पर आया। इस कारण से संसार मे यह चौहान इस नाम से प्रसिद्ध हुआ।[1] चौहान क्षत्रिय, ब्राह्मण की कृपा से सार्वभौमता को प्राप्त कर उसने बड़े से बड़े राजाओं को शीघ्र ही अपने पराक्रम से भयभीत किया।

उसी चौहान वंश में शक रूपी असुरों से जीतने के लिए वासुदेव की तरह दीक्षित वासुदेव नाम का राजा हुआ। इस प्रकार क्रम से[2] **नरदेव, चन्द्रराज, नयपाल, जयराज सामन्तसिंह, गूयक, नन्दन, वप्रराज, हरिराज** आदि राजाओं ने सिंहासन को अलंकृत किया। इन राजाओं में राजा **अजयपाल** ने **अजयमेरु दुर्ग** की स्थापना किया था।[3]

---

1. पपात युत्पुष्करमत्र पाणेः ख्यातं ततः पुष्करतीर्थमेतत।
   यच्चायमागादथ चाहमानः पुमानतोऽख्यायि स चाहमानः।।

   हम्मीर महाकाव्य—1/17

2 हम्मीर महाकाव्य का प्रथम सर्ग—32-104

3. "तद्वास्तु तत्तद्धनवस्तुसार प्राग्भारवी क्षास्तुतधातृसर्गम्।
   स्वर्गश्रियां जित्वरकान्तिकान्तमतिष्टिपदयोऽजंयमेरु दुर्गम्।।

   हम्मीर महाकाव्य—1/52

वप्रराज[1] ने **शाकम्भरी देवी** की प्रसन्नता तथा लोक कल्याण के लिए शाकम्भरी नामक सुन्दर सरोवर का निर्माण किया।[2] **हरिराज** ने **शकराज** को पराजित करके **मुग्धपुर** को अपनें आधीन किया।[3]

निम्नांकित पद्य के द्वारा यह सम्भावना व्यक्त की जाती है कि उन्होंने **वराह, कच्छवाह, नागवंशीय** राजाओं को भी विजित किया था।

[4]क्रोडकूर्मभुजगाधिपा भुवं यां कथंचिदपि मौलिभिर्दधुः।
लीलमैव भुजयैकया दधत् तामसावतत कं न विस्मयम्।।

सिंहराज साक्षात् सिंहकी तरहतीव्र गति वाला था। उसकी सेना के प्रयाण काल के नगाड़े की ध्वनि को सुनकर **कर्णाट, लाट, चोल, गूर्जर, अंग** आदि देशों के राजा भयसे युद्धभूमि से पलायन कर गुफाओं में छिप गये।[5]

यह युद्ध में शकपति को मारने केलिए अस्त्र के रूप में चतुर हाथियों

---

1. भयार्तव प्रायित बहुदण्डः सर्वास्त्रविधोपनिषत्करण्डः।
   लीलापराभूत सुपर्वराजः क्ष्माभृत्ततोऽराजत वप्रराजः।।

   ह0 म0 1/72
2. शाकम्भरी स्थानकृताधिवासां शाकम्भरी नाम सुरी प्रसाध।
   विश्वापतिर्विश्वहिताय शाकम्भर्यारूमां यः प्रकटीचकार।।

   ह0 महाकाव्य—1/81
3. ततो धराभारमुरीचकार जितरिचक्रो हरिराजभूपः
   शकाधिराजस्य रघेनिहत्य तन्मानवन्मुग्धपुरं ललौयः।।

   हम्मीर महाकाव्य—1/82
4. हम्मीर महाकाव्य—1/87
5. कर्णाटश्चपाटवप्रकटनो लाटः कपाट प्रद-
   श्चोलस्त्रासविलोलहत्त परिगलद्वीजर्जरो गूर्जरः।
   अंगःसंगररंगभंगुरमतिः समपद्यते स्म क्षणाद्
   दिक्कुक्षिम्भरि यत्प्रयाणपटहध्वाने समुत्सर्पति।।

   हम्मीर महाकाव्य—1/97

को अपनी सेना में शामिल किया। युद्ध वीर होने के साथ ही साथ सिहराज विलक्षण दानवीर था।

दानविधिना कल्पद्रुमा निर्जिता,
एकैकां, कलिकां वलिव्यतिकरा छत्वांगुलीं स्वामिव।
आसन्नांगुलिकाः स चाभिरभवत् पंचागुलिः पृपथे
लोकेऽपि व्यवहार एष न भवेत् प्राग्भिः किमंगीकृतम्।।[1]

इति

इसके द्वितीय सर्ग में **भीम, विग्रहराज (प्रथम) गुन्ददेव, वल्लभराज, राम, चामुण्डराज, दुर्लभराज, दुःशलदेव, विश्वल (प्रथम) पृथ्वीराज (प्रथम), आल्हणदेव, आनल्लदेव, जगदेव, विश्वलदेव (द्वितीय), जयपाल, गंगदेव, सोमेश्वर** और **पृथ्वीराज द्वितीय,** इन नाम के राजाओं का वर्णन दृष्टिगत होता है। **भीम सिंहराज** का भतीजा था इसका ज्ञान निम्नलिखित पद्य से मिलता है—

अथो अभावात्तनुजस्य भीमं भ्रात्रेयमात्मीयपदे निवेश्य।
कृतारिषड्वर्गजयः स सिंहराजो हरेर्धाम जगाम नाम।।[2]

विग्रहराज (प्रथम) ने गूर्जर नरेश **मूलराज** को युद्ध में मार डाला था।[3] **राजा चामुण्ड राज** ने शकराज **हेजमदीन** का वध किया।[4]

स्वाभिमानी दुर्लभराज ने युद्ध में सहाबदीन को विजित किया।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—1/101
2. हम्मीर महाकाव्य—2/1
3. हम्मीर महाकाव्य—2/9
4. कृतान्तकान्ता कुचकुम्भपत्रालतापिधाने विधृता वधानम्।
   यः संगरे हेजमदीनसंज्ञ शकाधिराजं तरसा व्यधत्त।।

   हम्मीर महाकाव्य—2/24

[1]सहाबदीनं समरे विजित्य जग्राह यो बाहुबलेन मानी।
असंख्यसंख्यार्जित शारदीन शशि प्रभाभेतृतदीयकीर्तिम्।।

राजा **दुःशलदेव** ने समर भूमि में **कर्णदेव** नामक राजा को पराजित करके उसकी राजलक्ष्मी को बलपूर्वक ग्रहण किया।[2] उसके पश्चात् विश्व **विलास कीर्ति श्री विश्वलदेव** (प्रथम) ने राज्य सिंहासन को विभूषित करतेहुए अपने शत्रुओं का कुल सहित उन्मूलन कर पृथ्वी पर एकछत्र राज्य स्थापित किया।[3] वह म्लेच्छराज **सहाबदीन** को मारकर **मालव देश** को म्लेच्छों से स्वतन्त्र करवाया।[4] प्रसिद्ध राजा **आनल्ल देव** ने निश्चय ही **अजयमेरु नगर में (अजमेर)** पुष्कर जैसा एक पवित्र जलाशय खुदवाया—

पर्यन्तशैलप्रतिबिम्बदम्भात् क्रीडारसक्रोडितादिग्दिपं यः।
अचीरवनत् पुष्करपुण्यपारं कासारसारं शुचिवारिवारम्।।[5]

अविनाशी नीतियों के स्रोत, श्रेष्ठ गुणों के समूह वाला कोई **सोमेश्वर** नाम का राजा हुआ। जिसकी **कर्पूर देवी** नाम की प्राणप्रिय राजमहिषी हुई।[6] उन्हीं कर्पूर देवी के संसार एवं लोगों को सुख देने वाले **पृथ्वीराज** (द्वितीय) नामक कुमार की प्राप्ति हुई।[7] शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या में अत्यन्त निपुण

---

1. हम्मीर महाकाव्य—2/28
2 हम्मीर महाकाव्य—2/31
3 मही महीं भूपयति स्म तस्माच्छ्रीविश्वलो विश्वविलासकीर्तिः।
समूलमुन्मूल्य कुलं रिपूणामेकाधिपत्यं शुविपश्चकार।।

हम्मीर महाकाव्य—2/33

4. हम्मीर महाकाव्य—2/31
5 हम्मीर महाकाव्य—2/51
6. त्रैलोक्यलोकावलिकर्णकर्णपूरीकृतानन्त गुणैकधाम।
इलाविलासी जयति स्म तस्मात् सोमेश्वरो नश्वरनीतिरीतिः।।

हम्मीर महाकाव्य—2/67

7. अतुच्छवात्सल्यभरं दधानो विलत्य तज्जन्ममहं महान्तम्।
जगज्जनाह्लाकरस्य पृथ्वीराजेतिनामाधित तस्य भूपः।।

हम्मीर महाकाव्य—2/75

राजकुमार **पृथ्वीराज** को देखकर सन्तुष्ट हुए राजा **सोमेश्वर** ने उनको सहर्ष साम्राज्य दे दिया और बाद में योग के द्वारा शरीर का उत्सर्ग किया।[1] और द्वितीय सर्ग के अन्त में **पृथ्वीराज** के गुणों का वर्णन हुआ है।[2]

तृतीय सर्ग में मुख्य रूप से राजा **पृथ्वीराज (द्वितीय)** का शकराज **सहाबदीन** के साथ युद्ध का विस्मयकारी वर्णन दृष्टिगत होता है।[3] सहाबदीन के कुटिल स्वभाव से पीड़ित पश्चिम प्रदेश के राजाओं ने **गोपाचल नरेश श्री चन्द्रराज** को आगे करके पृथ्वीराज के समीप गये। तब तक सहाबदीन अनेक राजाओं को पराजित करके मूल स्थान में अपनी राजधानी स्थापित कर चुका था। चन्द्रराज ने प्रमुख राजाओं के साथ निवेदन किया कि क्षत्रिय मण्डल धूमकेतु केसमान अकारण कष्ट प्रदान करने वाले सहाबदीन से हमेशा पीड़ित होता है। अतः उसके दुराचार से व्याकुल हमारी रक्षा के लिए तथा दुराचार को जड़से विनाश के लिए अद्वितीय पराक्रम वाले आप निश्चय ही कोई उपाय सोचे।[4] इतना सुनकर वीर दयालु स्वभाव वाले पृथ्वीराज का हृदय असह्य कष्ट अनुभव किया और चन्द्रराज आदि राजाओं के सम्मुख जलयुक्त बादल की तरह गम्भीर वाणी में प्रतिज्ञा किया कि यदि मैं मयूरबन्ध से खोलकर सहाबदीन आपके चरणों में न लाकर दिया तो मेरा जन्म चौहान वंश में नहीं हुआ ऐसा मानियेगा।

'मयूरबन्धेन निबन्ध्य नैनं पादारविन्दे यदि बः क्षिपामि।[5]
जातोऽन्वये तर्हि न चाहमाने इति प्रतिज्ञामकतरो नरेशः॥''

---

1. शस्त्रेषु शास्त्रेषु च लक्ष्यपारं विलोक्य भूमसथ तं कुमारम्।
   साम्राज्य भारं प्रवितीर्य तस्मै योगेन मार्त्त वपरुत्ससर्ज।।

   हम्मीर महाक़ाव्य—2/77

2. हम्मीर महाकाव्य के द्वितीय सर्ग का, 78 से 90 श्लोक।
3. हम्मीर महाकाव्य का तृतीय सर्ग
4. हम्मीर महाकाव्य—तृतीय सर्ग—1/13
5. हम्मीर महाकाव्य—3/15

युद्ध में तुर्कों की सेना पृथ्वीराज की सेना से पराजित हुई। अपनी सेना का मनोबल टूटा हुआ देखकर शकराज बहुत क्रोधित हुआ और पृथ्वीराज को घेर लिया। दोनों वीरों के मध्य मलयुद्ध आरम्भ हुआ।[1] दोनों जंगली हाथियों के तुल्य एक-दूसरे को परस्पर मारने के लिए उद्यत हो गये। अन्त में युद्ध में सहाबदीन को कुछ छल से पराजित कर बाँधकर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण किया।[2]

इस प्रकार पृथ्वीराज ने यवन राज को सात बार युद्ध में पराजित किया। सहाबदीन विजय प्राप्त करने के लिए कोई उपाय न देखकर सहायता के लिए खर्पर नरेश के पास गया। खर्प नरेश ने उसको **कम्बोज लंगाहथ, मल्ल** आदि की सेना को दिया।

इस सेना की सहायता से शकराज **दिल्ली** जाकर अपनी सेना का अत्यन्त विस्तार किया।[3] उसने पृथ्वीराज के **अश्वपाल** और **तौर्यिक** को अलग किया। शकराज ने **पुष्कल** आदि सभी को अपने अनुकूल किया। इस प्रकार प्रातः काल शकों ने पृथ्वीराज के शिविर को आक्रान्त किया। अश्वपाल ने पृथ्वीराज को नाटारम्भ नामक अश्व पर आरूढ़ किया। वाद्य ध्वनि को सुनकर घोड़ा नृत्य करना आरम्भ कर दिया। यह देखकर पृथ्वीराज तत्काल कुछ क्षण के लिए किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये परन्तु सब जगह शत्रुओं

---

1. हम्मीर महाकाव्य—तृतीय सर्ग—34 से 41 श्लोक।
2. एवं नृ देवो युधि युद्धभानः प्रसस्थ किंचिच्छतमा कलयन्नया।
   शकाधिराजं विनियम्य, सम्यगपपुरत स्वां विधिवत् प्रतिज्ञाम्।।

   हम्मीर महाकाव्य—3/43
3. सघस्ततोऽसौ प्रसरत्प्रसादाद् बलं समासाद्य सहाबदीनः।
   न केनचि ज्ज्ञातचरः समेत्य अग्राह दिल्लीभतिविग्रहे।।

   हम्मीर महाकाव्यट—3/50

के आक्रमण होने के कारण शीघ्र हाथ में कृपाण लेकर उस दुष्ट अश्व से भूमि पर उतर कर युद्ध आरम्भ कर दिये।[1] युद्ध में पृथ्वीराज ने शत्रु से भयंकर युद्ध किया। इसके अन्त में दौर्भाग्यवशात् कोई तुर्क पीछे से पृथ्वीराज के कण्ठ पर धनुष की प्रत्यंचा रखकर उस वीर को चालाकी से गिरा दिया।[2]

इस प्रकार अन्य यवन सैनिकों ने **सहाबदीन** के आदेशानुसार राजा को बाँध लिया। वैसे तो **पृथ्वीराज** ने सात बार सहाबदीन को पराजित करके उसे जीवित ही छोड़दिया। वह इस समय भाग्य के विपरीत होने के कारण उस तुर्क के द्वारा कैद कर कारागार में डाल दिये गये। अनेक असह्य यातनाओं और अपमान से **पृथ्वीराज**[3] का जीवन और भोजन से प्रेम समाप्त हो गया। उसी समय पृथ्वीराज के सेनापति उदयराज गौड़ वहाँ पर आये। राजा के प्रति सहाबदीन के दुर्व्यवहार को जानकर[4] अत्यन्त कुपित उदयराज की सहायता से पृथ्वीराज को राजराज पृथ्वीराज ने सहाबदीन को मारा और इसके बाद पृथ्वीराज दिवंगत हुए।

तब अपने महाराज की इस प्रकार की विनाश गति को जानकर अत्यन्त

---

1. हम्मीर महाकाव्य—तृतीय सर्ग—58 से 63 श्लोक
2. हम्मीर महाकाव्य—3/67-69 श्लोक।
3. अथ स धरणिकान्तः सद्गुणालीनिशान्तः।
   प्रतिहतखल जातः प्रौढ़राढ़ावदातः।
   विधि विलसितयोगादाप्रबन्धः शके द्राद्
   द्विरपि रतिमहासीद भोजने जीवने च।।

   हम्मीर महाकाव्य—3/65

4 हम्मीर महाकाव्य—3/67-69 श्लोक।

5 वीरेन्द्रदेष्वथ दत्तदृष्टिषु धरापीठे हितया स्राक सतां
  सान्दाश्रुसुतिसिक्त शोकलतिका कन्देषु वृन्देषु च।
  आनीयैष नृपं तमुग्रतररूढ़ दुर्गान्तरेऽचीचयत्
  कार्याकार्य विचारणान्धवधिरा हा हा धमाः सर्वतः।।

  हम्मीर महाकाव्य—3/71

दुखी वह उदयराज शकसेना के साथ युद्ध करके वीर गति को प्राप्त किया।[1] इस सर्ग के श्लोक 74 से श्लोक 82 तक राजा हरिराज[2] के गुणों का वर्णन महाकवि ने किया है।

चतुर्थ सर्ग का आरम्भ राजा **हरिराज** के राज्य वर्णन से होता है। राजा हरिराज को खुश करने के लिए **गुर्जर नरेश** ने उनके पास अनेक युवतियाँ और नर्तकियाँ भेजी। हरिराज के उन्हीं के साथ अधिक समय व्यतीत करने के कारण राज्य प्रबन्धन शिथिल हो गया था। समय से वेतन न मिलने के कारण उनके सेवक उनको छोड़कर अन्यत्र जाना प्रारम्भ कर दिये। जनता की उनसे विरक्ति हो गयी। इस वृत्त को जानकर शकराज **हरिराज** की सीमा में आ गया। हरिराज ने पृथ्वीराज के मरने पर प्रतिज्ञा किया था कि मैं कभी भी शकों का मुख नहीं देखूँगा।

इस कारण तब वह राजमहिषी के साथ अग्नि में प्रविष्ट हुआ।

सान्तः पुरपुरन्ध्रीकस्ततोऽसौ ज्वलनेऽविशत्।

भाविनी यादृशी कीर्तिर्मतिः स्थात्तादृशी नृणाम्।।[3]

असहाय हो जाने के कारण हरिराज के मन्त्री **रणस्तम्भपुर दुर्ग** मे पृथ्वीराज के पुत्र **गोविन्द** की शरण में गये। तब तक अजयमेरु नगर पर शकराज का अधिकार हो गया था। गोविन्द ने चाचा हरिराज के उस प्रकारकी मृत्यु को सुनकर अवर्णनीय कष्ट का अनुभव किया तथा उनकी

---

1 पृथ्वीपतेरिति विनाशगति निशम्यदूनः सगोऽकुलपकजबालसूर्यः।
स्थानं निजं तदुपगम्य बलं स्वयं च युध्वा दिवस्यतिपदं तरसा ससाद।।
हम्मीर महाकाव्य—3/73

2. हम्मीर महाकाव्य के तृतीय सर्ग का 74 से 82 श्लोक तक।

3. हम्मीर महाकाव्य—4/19

आत्मा की शान्ति केलिए कुछ कर्म किया।[1] वह उनके सभी मन्त्रियों को उचित जीविका भी प्रदान किया। **राजा गोविन्द** ने दो बार शत्रु की सेना को पराजित कर न्याय में वृद्धि किया। और इसके प्रभाव से प्रसन्नता एवं सुख का अनुभव करते हुए चिरकाल तक राज्य किया।[2]

यह अभी बालक है। यह तुम्हारे द्वारा उसी तरह अनुशासित तथा निर्देशित हो जिससे इसके राज्य का कोई अहित न हो।[3] बालक वीरनारायण अपने चाचा के निर्देशन में राज्य का संचालन करने लगा।

वीर नारायण कच्छवाहनरेश की पुत्री से विवाह के लिए **आम्रपुरी (आमेर)** प्रस्थान किया। वहाँ शकराज **जलालदीन** के द्वारा आक्रमण कर देने के कारण भागकर वापस रणस्तम्भपुर आ गया। दुराभिमानी शकनरेश भी उसके पीछे **रणस्तम्भपुर** आ गया।[4]

परन्तु उसके सभी प्रयास व्यर्थ चले गये। बलपूर्वक रणस्तम्भपुर का ग्रहण करने में असमर्थ उसने कपट के द्वारा वीर नारायण को जीतने का

---

1. पितृव्यस्य तथाभूतं श्रुत्वा धराधिपः।
   वाचामगोचरं कष्टं कलयामास मानसे।।
   स्मृतिस्मृतिपरित्यक्त शोकः कृत्वौर्ध्वदेहिकम्।
   धीसखांस्तान् यथायोग्यकार्येणायोजयन्नृपः।।

   हम्मीर महाकाव्य—4/29,30

2. हम्मीर महाकाव्य—4/31
3. तदस्ति स्वापचापल्ये बाल्येऽसौ वयसिस्थितः।
   अनुशास्यतथाकारं यथा स्यान्नाहितं क्वचित्।।

   हम्मीर महाकाव्य—4/75

4. सोऽयदा प्रमदानेत्र पावनं यौवनं श्रितः।
   परिणेतुं सुतां कच्छवाहस्याम्रपुरीमगात्।।
   तत्राभिषेणितो जल्लादीनशकभूभुजा।
   पलाय्यागाद् रणस्तम्भं पृष्ठतः सोऽप्युपागमत्।।

   हम्मीर महाकाव्य—4/82, 83

निर्णय किया। उसने वीर नारायण के पास अपनी मित्रता का सन्देश लेकर दूत भेजा कि हे वीरवर, मैं तुम्हारे शौर्य से बहुत प्रभावित है।

उसके पश्चात् बाल्लण राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हुए। राजा बाल्लण के **प्रहलाद** व **वाग्भट्ट** नामक दो पुत्र हुए।[1] राजा बाल्लण दोनों राजकुमारों को उचित शिक्षा प्रदान कर ज्येष्ठ पुत्र **प्रहलाद** को राज्य तथा द्वितीय **वागभट्ट** को प्रधानमन्त्रि पद प्रदान किया।[2] राजा प्रहलाद शूरवीर, गुणी तथा आखेट प्रेमी थे। एक बार प्रहलाद शिकार केलिए गये सोते हुए सिंह पर बाणों से आक्रमण कर दिये। उस सिंह की गर्जना को सुनकर एक अन्य सिंह क्रोधित होकर उनके ऊपर आक्रमण कर दिया तथा राजा के कन्धों को पकड़ लिया। **राजा प्रहलाद** ने छुरा से उस सिह को मार डाला, परन्तु इस सिंह के आक्रमण से राजा स्वयं भी घायल हो गये। राजा अनेक वैद्यों की चिकित्सा से भी स्वस्थ नहीं हुए। अतः अपने पुत्र **वीर नारायण** का अभिषेक कर दिया। उस समय वीर नारायण बालक था। अतः उन्होंने बाग्भट को बुलाकर कहा कि तुम मेरे भाई हो। अतः वैर त्याग कर एक बार मिलने के लिए आओ।[3] सरल ह्रदय वाला वीर नारायण अपने चाचा वाग्भट्ट के कथन का तिरस्कार करके शकराज से मिलने के लिए **योगिनीपुर** गया। अपमान से दुःखी होकर वाग्भट्ट **मालव देश** चला गया। वीर नारायण चिन्तित था कि तुर्कराज वक्षस्थल पुर के राजा के साथ विग्रह के अवसर पर

---

1. गुणश्रेष्ठस्तयो ज्येष्ठःख्यातः प्रहलादनाहनयः
   द्वैतीयीको द्वितीयश्रीर्वाग्भटः प्रतिपदभटः।।

   हम्मीर महाकाव्य—4/38

2. ततोऽनुशास्य विधिना भूपः पुत्रावुभावपि।
   न्यधात् प्रहलादनं राज्ये प्रधानत्वे च वाग्भटम्।।

   हम्मीर महाकाव्य—4/41

3. हम्मीर महाकाव्य—4/85-90

सहायता करेगा। परन्तु वहाँ इसके अत्यन्त विपरीत हुआ। अन्दर से दुष्ट मुख से मींठा (मधुर) शकराज भोजन में विष देकर उसे मार डाला।[1] **रणस्तम्भपुर दुर्ग** शकों के हाथ में चला गया। शकराज के संकेत को प्राप्त कर **मालव नरेश** ने वाग्भट्ट को भी मारने का प्रयास किया किन्तु प्रतिमाधनी वाग्भट्ट अपने कौशल से उस मालव नरेश की ही हत्या कर दी तथा स्वयं मालव प्रदेश का शासक बन गया।[2] जब खर्परों को डराया हुआ था, तभी वाग्भट्ट भी अपनी सेना के साथ आक्रमण करने के लिए **रणस्तम्भपुर दुर्ग** को प्रस्थान किया। भोजन पानी के अभाव से पीड़ित शकों ने युद्ध क्षेत्र से पलायन किया।[3] राजा वाग्भट्ट ने 12 वर्षों तक रणस्तम्भपुर दुर्ग पर शासन किया।[4]

उसके पश्चात् उनका पुत्र **जैत्र सिंह** राजा हुआ।[5] वह भी पिता की ही तरह बलवान्, बुद्धिमान और लोक हितकारी हुआ। उनके गुणों का श्रेय प्राप्त करने वाली उनकी सबसे प्रिय **हीरादेवी** मुख्य राजमहिषी थी।[6] राजा **जैत्र सिंह** के उस सौभाग्यवती रानी की कोख से लोकलोचन पुत्र **हम्मीर देव** हुए।[7] ये ही निश्चित रूप से इस महाकाव्य का नायक है। राजा जैत्रसिंह के अन्य दो पुत्र थे। उनमें **सुरत्राण** हम्मीर से ज्येष्ठ तथा **वीरम** छोटा था।

---

1 अन्येद्युर्विषयोगेन शकोभूपमीयरत्।
क्वाप्यकृतं प्रकुर्वन्तः पापा मुहयन्ति हन्त किम्।।

हम्मीर महाकाव्य—4/104

2. हम्मीर महाकाव्य—4/106-107
3. हम्मीर महाकाव्य—4/109-123
4. निवेश्य देशसीमासु चतुर्दिक्षु बलं निजम्
सुखं द्वादशवर्षाणि स्वयं राज्यं स तेनिवान्।।

हम्मीर महाकाव्य—4/129

5. तन्नदनो जगन्नेत्रानन्दनश्चन्दनद्रुवत।
जैत्रप्रतापः श्री जैत्रासिंहोऽभूद् भूमिवल्लभः।।

हम्मीर महाकाव्य—4/131

6. हम्मीर महाकाव्य—4/138
7. हम्मीर महाकाव्य—4/140-149

हम्मीर देव कुछ ही दिनों में विलक्षण प्रतिभा युक्तहोने के कारण अनेक शस्त्र तथा शास्त्र के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।[1] रूपयौवन सम्पन्न उस हम्मीर देव को देखकर कामदेव भी लज्जितहोते थे। अतः यथा समय पिता राजा **जैत्र सिंह** ने इनकी खुशी के लिए सात सुन्दर कन्याओं से विवाह करवाया।[2] पांचवें सर्ग में 76 श्लोकों में ऋतुराज वसन्त का मनोहारी वर्णन महाकवि ने किया है।[3] छठें सर्ग में 65 पद्यों में जलक्रीड़ा का वर्णन किया।[4] है। सप्तम सर्ग में 128 श्लोकों में सुरत व्यापार आदि का श्रृंगार मय वर्णन मिलता है।[5] आठवें सर्ग की कथा का आरम्भ प्रभात वर्णन से होता है।[6] प्रातःकालिक कृत्यों को समाप्त करके हम्मीर देव जब राज सभा में आते हैं तो राजा जैत्र सिंह राज्य प्रदान करने का प्रस्ताव करते हैं। तब हम्मीरदेव निवेदन करते हैं कि ज्येष्ठ पुत्रों के होते हुए राजन् मुझे राज्य किस प्रकार दे सकते हैं।

तब जैत्र सिंह ने रहस्य का उद्घाटन किया कि रात्रि के अन्त में स्वप्न में भगवान **विष्णु** ने आकर कहा कि हम्मीर को राज्य प्रदान कर मेरी भक्ति करो।[7]

---

1 दिनै· कतिपयैरे वाकृच्छं गुर्वनुभावतः।
शस्त्र शास्त्र रहस्यानि स स्ववश्यानि तेनिवान्।।

हम्मीर महाकाव्य—4/150

2. सौन्दर्यधन्या अथ सप्त कन्याः पिता प्रमोदात् परिणायितोऽसौ।
चिक्रीड ताभिः सहगशश्वदस्त व्रीडं यथा दुश्च्यवनः शचीभिः।।

हम्मीर महाकाव्य—4/158

3. हम्मीर महाकाव्य का पंचम सर्ग।
4. हम्मीर महाकाव्य का छठांसर्ग।
5. हम्मीर महाकाव्य का सातवां सर्ग।
6 हम्मीर महाकाव्य—8/1-35।
7 स्वप्ने निशान्ते शयितं निशान्ते मामाह विष्णुः करवै कि मार्य।
हम्मीरदेवायवितीर्य राज्यं मदंश्रिसेवानिरतो भवेति।।

हम्मीर महाकाव्य—8/54

अतः वैसा ही कर रहा हूँ। हम्मीरदेव ने पूज्य पिता के अनुरोध को सादर स्वीकार किया। 1333 विक्रम संवत् पौष मास के शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा को रविवार के दिन (16 दिसम्बर, 1282 ई0) मेष लग्न में शुभ मुहूर्त में हम्मीर देव का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। **राजा जैत्र सिंह** ने हम्मीर देव को उपदेश देकर आत्म साधना हेतु **श्री आश्रम पत्तन** को प्रस्थान किया जहाँ **जम्बू मार्ग** में शीघ्र मुक्ति प्रदान करने वाले भगवान **शिव** विराजमान हैं और जहाँ निर्मल और शीतल नदियाँ बहती हैं।[1] और जहाँ **चर्मवती नदी** बहतीहै। परन्तु भाग्य के विपरीत होने के कारण वे **श्री आश्रम** तक नहीं जा सके।

अपने पिता राजा जैत्र सिंहकी मृत्यु का समाचार सुनकर वीरवर होते हुए भी राजा हम्मीर देव साधारण जन की तरह अत्यन्त शोक ग्रसित हुए। शोक में डूबे इस राजा हम्मीरदेव को किसी प्रकार आश्वासन दिया गया।[2]

नवम सर्ग में राजा हम्मीरदेव के दिग्विजय का विस्तार से वर्णन हमारे सामने आता है। युद्ध कला में निपुण उनकी महान सेना **भीमरसपुर** के राजा **अर्जुन** को पराजित किया।[3] तब वहाँ से **धारा नगरी** आया। वहाँ परमार वंशीय राजा **भोज** को पराजित किया। उसके पश्चात् **उज्जयिनी** जाकर **भगवान महाकाल** की पूजा किया। वहाँ से लौटकर ये **चित्रकूट (चित्तौड़)** को परेशान किया। इस प्रकार अर्बुद्रादि को प्राप्त कर वहाँ अपनी सेना का पड़ाव डाला। वह स्वच्छ शान्त वसही ग्राम में जाकर **ऋषभदेव** को प्रणाम किया। **श्रीवस्तुपाल** के मन्दिर को देख कर हम्मीर देव अत्यन्त विस्मित हुए। इन्होंने **अर्बुदा देवी** की अर्चना करके वशिष्ठाश्रम में कुछ समय विश्राम करने के पश्चात् पवित्र **मन्दाकिनी** नदी में स्नान किया।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—8/36-106
2. हम्मीर महाकाव्य—8/117-131
3. हम्मीर महाकाव्य—9/15-16

इसके पश्चात् **अचलेश्वर** की पूजा किया। तब **अर्बुदा मंदिर** को प्रचुर धन प्रदान किया।[1]

तब **अजयमेरु नगर** फिर **पुष्कर** को प्राप्त किया। वहाँ जाकर भगवान वराहदेव की पूजा किया।[2] तब **शाकम्भरी, महाराष्ट्र, खण्डिल्ल, चम्पादि** नगरों को लूटा।[3] वह **ककराल** स्थान के समीप जाकर त्रिभुवनाद्रि स्वामी के द्वारा सादर सत्कृत किया गया। इस प्रकार चारो दिशाओं को जीत कर राजेश्वर हम्मीर रणस्तम्भपुर को लौटा। वहाँ पर अत्यन्त उल्लास से राजा का स्वागत किया गया।[4] **रणस्तम्भपुर** को सुन्दरी की तरह ध्वजा, तोरण, कुम्भ[5] दीप आदि अलंकारों से सुशोभित सुसज्जित कियागया। राजा के सम्पूर्ण साम्राज्य में नूतन उत्साह दिखायी पड़ा। सभी लोगों को प्रसन्न देखकर प्रसन्न मन से हम्मीर देव विश्वरूप नामक पुरोहित से **कोटि यज्ञ** के माहात्म्य को सुना।

कोटि यज्ञ के माहात्म्य को सुनकर राजा हम्मीर ने कोटियज्ञ करने का निश्चय किया।[6] युद्धवीर होने के साथ-साथ यह दानवीर शास्त्र सम्मत विधि से यज्ञ को समाप्तकर सुवर्ण और प्रभूत धन दक्षिणा के रूप में प्रदान कर

---

1. हम्मीर महाकाव्य—9/19-39
2. हम्मीर महाकाव्य—9/40-43
3 ध्वस्तराष्ट्रं महाराष्ट्रं खण्डिल्लं खण्डित प्रमम्।
चम्पां च विस्फुरत्कम्पां भूपस्तदनु तेनिवान्।।

हम्मीर महाकाव्य—9/46

4 हम्मीर महाकाव्य—9/47-52
5. उत्तम्भिताः प्रतिद्वारं पौरैरुत्सवबांध्या।
कलशा रेजिरे सद्मस्त्रीणामुरसिजा इव।।

हम्मीर महाकाव्य—9/53

6. कोटियज्ञ फलं राज्ञा पृष्ठोऽन्येद्युः पुरोहितः।
विश्वरूपाख्यया ख्यातो काचख्याविति तं पटुः।।

हम्मीर महाकाव्य—9/76

एक मास तक **मुनिव्रत** स्वीकार किया।[1]

उस समय दिल्ली में अलावदीन नामक शक राजा शासन कर रहा था। उसने अपने सहोदर **उल्लूखान** से कहा कि—**रणस्तम्भपुर** का राजा **जैत्रसिंह** पूर्व में मेरा कर दाता था किन्तु उसका पुत्र हम्मीर कर दान तो दूर की बात है मेरे साथ बैठकर वार्तालाप भी नहीं करता। संयोग से वह इस समय व्रत कर रहा है अतः उसे आसानी से जीता जा सकता है।[2]

तुम रणस्तम्भपुर जाकर उसके समीपवर्ती क्षेत्रों को विनष्ट करो। अपने स्वामी के आदेश के कारण **उल्लूखान वर्णनाशा** नदी के तट पर गया परन्तु उसकी उपत्यका के अन्दर प्रवेश नहीं कर सका। वह वहीं अट्ठारह दिनों तक लोगों को लूटने के लिए निवास किया। हम्मीर तब तक मौनव्रत धारण करने के कारण चुप था। अतः मन्त्री **धर्मसिंह** की सम्मति से सेनापति **भीमसिंह** शकों की सेना के ऊपर आक्रमण किया।[3] तुर्क सेना पलायन करक गयी। शक सैनिकों को भगाकर **भीमसिंह** वापस लौट आया परन्तु उल्लूखान भी छिपकर उसके पीछे-पीछे गया। बहुत से राजपुत्र विजय के उल्लास में भीम सिंहको छोड़कर आगे **रणस्तम्भपुर** चले गये।[4] भीमसिंह के सिपाहियों ने दर्रे में प्रवेश करते समय मुसलमानों से छीने गये वाद्य यन्त्रो (नगारों) को बजा डाला।[5] उस ध्वनि को अपने विजय का संकेत समझ कर

1. हम्मीर महाकाव्य—9/92-99
2. रणस्तम्भपुराधीशो जैत्रसिंहोऽभवत् पुरा।
   प्रददौ स सदादण्डं मम चण्डौ जसो भयात्।।
   हम्मीर नामा तत्सूनुरघुनाश्वर्गगर्वावान्।
   दण्डं दूरत एवास्तु न वाक्यमपि यच्छति।।

   हम्मीर महाकाव्य—9/102, 103
3. हम्मीर महाकाव्य—9/104-111
4. हम्मीर महाकाव्य—9/143-144
5. अद्रिधट्टान् विशन् भीम सिंहोऽपि परया मुदा।
   आच्छिद्य स्वीकृतान्युच्चैः शकवाघान्यवीदत्।।

   हम्मीर महाकाव्य—9/145

तितर-बितर हुई मुसलमानी सेना एकत्रित हुई। **भीम सिंह** वीरता से युद्ध करता हुआ मारा गया। और शक सेनापति **दिल्ली** चला गया।[1]

व्रत के पूरा होने पर हम्मीर देव ने धर्मसिह को बुलवाया। इसने पीछे से आते हुए सेनापति **उल्लूखान** को नहीं देखा तो यह उसका अन्धत्व था। और भीम सिंह को अकेला छोड़कर **रणस्तम्भपुर** चला आया यह उसकी नपुंसकता (भीरुता) थी। इस प्रकार धर्मसिह पर इन दो दोषों का आरोपण कर **हम्मीरदेव** ने वस्तुतः उसे अन्धा तथा नपुंसक बना दिया।[2] धर्मसिंह का पद उसने खांडाधर भोज को दे दिया। उनके साथ हम्मीर का सम्बन्ध उसी प्रकार था जिस प्रकार पार्थिव पाण्डव का विदुर के साथ था।[3]

भोजदेव अर्थसंग्रह में निपुण नहीं था। अतः नर्तकी **धारादेवी** के कहने से हम्मीर ने धर्मसिंह को पुनः अपने पुराने पद पर नियुक्त कर दिया। अनेक प्रकार के अनुचित करों को लेकर धर्मसिंह ने राजकोष परिपूर्ण किया।[4]

अतः वह राजा को अत्यन्त प्रिय हो गया। उसने भोजदेव से भी धन का विवरण माँगा। उसके अधीन भोजदेव ने अपना सब कुछ उसे दे दिया।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—9/146-150

2 हम्मीर महाकाव्य—9/151-153

3 पाण्डोर्विदुर वत्तस्य राज्ञोऽभूदनुजो जयी।
भोजदेवामिधः खड्गग्राहीत्यपरनाममाक्।।
धर्मसिह पदं तस्मै तुष्टोऽथ प्रददे नृपः।
तं च निर्वासन् देशादमुनैव न्यषिध्यत।।

हम्मीर महाकाव्य—9/154-155

4. लोभदृष्टि नृपं कृत्वा द्रविणा दानवर्त्मना।
सः प्रजाः पीडयाभास चण्डदण्डप्रपातनैः।।
गृह्णन्नश्वधनेभ्योऽश्वान् धनवद्भ्यो धनानि च।
क्रूरकर्मा स लोकानां क्षयकाल इवाभवत्।।

हम्मीर महाकाव्य—9-167-168

भोजदेव उनसे अत्यन्त पीड़ित हो गया। वह राजा को अपने विपरीत जानकर काशी यात्रा के बताने भोज और उसका भाई पीथसिह **रणस्तम्भपुर** से चले गये।[1] भोज के चले जाने पर हम्मीर देव ने दण्डनायक का पद **रतिपाल** को दे दिया।[2]

अतः भाई **प्रिथम सिंह (पीथ सिंह)** से पूछकर वह यवन राज से मिलने के लिए **योगिनीपुर** गया। वहाँ से दिल्ली जाकर शक नायक अल्लावदीन से मिले। उनसे प्रसन्न होकर अल्लावदीन ने उन्हें जागीरदार बना दिया जहाँ मुगलों का अधिकार था।[3]

इसके कुछ समय पश्चात् अल्लावदीन ने भोजदेव से हम्मीर को जीतने का उपाय पूछा।[4] भोजदेव हम्मीर के शौर्य की प्रशंसा करते हुए बोला जिससे **मध्य प्रदेश, काँची, अंग, वंग काश्मीर, गुर्जर** आदि देशों के राजा भयभीत रहते हैं, वीर **महिमासाहि (महमूदशाह)** जैसे अनेकों वीर जिनकी सेवा करते हैं, वह हम्मीरदेव आसानी से कैसे जीता जा सकता है। किन्तु उसके विनाश का कारण अन्धा **धर्मसिंह** लगातार सूर्य की तरह उदय हो रहा है।[5] निश्चय ही यह नवीन फसल की उत्पत्ति का समय है। यदि आपकी उसे जीतने की इच्छा है तो शीघ्र ही सेना भेजिए।[6]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—9/174-187
2. तस्मिन् गते क्षितिपतिः प्रसरत्प्रमोद
   हृद दण्डनायकपदे रति पालवीरम्।
   मुक्त्या भिषिच्य जगदेकहितत्रिवर्ग
   संसर्गतोऽतिसरसान् दिवसाननैषीत्।।

   हम्मीर महाकाव्य—9/188
3. हम्मीर महाकाव्य—10/1-11
4. हम्मीर महाकाव्य—10/12
5. हम्मीर महाकाव्य—10/15-28
6. तदमुंजिगीषसि यदीश सर्वथात्वरया तदा प्रवितर प्रयाणकम्।
   यदमुष्य नीवृदधुना नवोल्लसत्सुमनः पुरोहहरितीकृतवानिः।।

   हम्मीर महाकाव्य—10/29

इस प्रकार **अल्लावदीन** के आदेश से **उल्लूखान** ने फसल कटने से पूर्व बड़ी सेना लेकर **हिन्दूवाट** गया। गुप्तचरों से यह वृत्तान्त जानकर हम्मीरदेव ने उल्लूखान को रोकने के लिए **वीरमहिमासाहि** तथा प्रमुख वीरों को भेजा। उल्लूखान को हम्मीर के सेनानियों ने आठ ओर से घेर लिया। उनमें पूर्व से **वीरम, पश्चिम से महिमासाहि, दक्षिण से जाजदेव, उत्तरसे गर्भरुक, आग्नेय से रतिपाल, वायव्य से तिचर** ने, **ईशान से रणमल्ल** ने और **नैऋत्य से वैचर** ने घेर लिया। मुसलमान सेना बुरी तरह पराजित हुई।[1] उल्लूखान किसी प्रकार से अपने प्राणों को बचाकर भाग गया। उसके शिविर चौहान सेना ने लूटा। रतिपाल ने बन्दी मुसलमान स्त्रियों से गाँव-गाँव में छाछ बिकवाई।[2] राजा हम्मीर ने रतिपाल के शौर्य की प्रशंसा करते हुए कहा—**"एषमम मत्तवारणः।"** रतिपाल के साथ-साथ राजा ने अन्य सैनिकों को भी पुरस्कृत तथा प्रचुर धन दिया।[3]

हमारे जीवित रहते हुए कृतघ्न भोजदेव जागीर में आराम से रह रहा है। बार-बार यह सोचकर **महिमासाहि** आदि ने हम्मीर की अनुमति लेकर भोज की जागीर पर आक्रमण किया। उसकी जागीर को जीतकर, लूटकर तथा भोजदेव के भाई को सपरिवार पकड़कर **रणस्तम्भपुर** ले आये। एक तरफ उल्लूखान जब दिल्ली पहुँचकर अपनी दुर्दशा का वर्णन कर रहा था तो दूसरी तरफ से उसी समय भोजराज भी रोते हुए वहां आया। उसके रोने से

---

1. हम्मीर महाकाव्य—10/31-40
2. तत्रैणनेत्रा यवनाधिपानां बध्वा त्यमर्षाद् रतिपालवीरः।
   कचिक्रयत् ख्यातिकृते क्षितीन्दोस्तक्रं प्रतिग्राममेभिरेषः।।

   हम्मीर महाकाव्य—10/61
3. हम्मीर महाकाव्य—10/62-63

अल्लावदीन का क्रोध आग में घी कीतरह बढ़ गया।[1] अल्लावदीन बोला, भोजदेव शोक मत करो। आज हम्मीर ने सोते सिह को उठा दिया है। वह कहीं भी रहे मैं उसे पकड़ कर उसका विनाश करूँगा। एकादश सर्ग में **रणस्तम्भपुर** दुर्ग में यवन सैनिकों की विफलता तथा मृत्यु का वर्णन मिलता है।

भारत के **अंग, बंग, कलिंग** आदि प्रायः सभी भाग के सैनिक एकत्रित हुए।[2] अलाउद्दीन का भाई उल्लूखान और निखुरतखान को सेनापति बनाया। उन दोनों ने पर्वत की उपत्यका के निकट जाकर **मोल्हण** नामक दूत को हम्मीर के पास सान्धि के लिए भेजा। छल से दर्रे में प्रवेश कर उल्लू खान ने मुण्डी, प्रतौली, श्रीमण्डपदुर्ग एवं जैत्रसर आदि के चारों ओर अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया।[3] रणस्तम्भपुर पहुँच कर **मोल्हण** ने राजा हम्मीर से कहा जिस अल्लावदीन ने देवगिरि जैसे दुर्गों को क्रीड़ा करते हुए जीतकर अपने वश में किया उन्हीं के अनुज उल्लूखान व निसुरत खान की आज्ञा सूचित करता है कि—हे हम्मीर, यदि तुम राज्य करना चाहते हो तो लाख स्वर्ण मुद्राओं, चार हाथी, तीन सौ घोड़े और अपनी पुत्री को देकर हमारे आदेश का पालन करो।[4]

---

1. असारः कमलाकरे मृगगणे सिंहः कुठारस्तरौ
   भास्वान् सन्तमसे पविः क्षितिधरे दावानलः कानने।
   यत् कर्म प्रतनोति संगरभरं प्राप्तस्तदेवाधुना
   कुर्वेऽहं भटसकुलेऽपि निखिले श्री चाहमाने कुले।।

   हम्मीर महाकाव्य—10/87

2. हम्मीर महाकाव्य—11/1-6
3. हम्मीर महाकाव्य—11/1-6
4. हम्मीर राज्यं यदि भोक्तुमीहा तत् स्वर्णलसक्षं चतुरो गजेन्द्रान्।
   अश्वो रणानां तिशतीं सुतां च दत्वा किरीटीकुरु नो निदेशम्।।
   इदं विमुक्तं यदिवा परन्तु तथा स्मदाज्ञा प्रविलोपिनो ये।
   स्राग मुद्गलां स्तांश्चुरोऽपि दत्वा क्रोडी कृतांक्रीडम् राज्यलक्ष्मीम्।

   हम्मीर महाकाव्य—11/60-61

विशेष रूप से उन चार मुगलों को जिन्होंने हमारी आज्ञा भंग की थी उन्हें हमें देकर राज्य करो नहीं तो नहीं। इतना सुनकर हम्मीरदेव अत्यन्त क्रोधित हुए और उसे धमकाते हुए कहा यदि तुम दूत रूप में न आये होते तो मैं तुम्हारी जीभ निश्चित रूप से निकलवा डालता।[1]

जो तुम्हारे स्वामी से बन पड़े वह करें हम्मीर ने युद्ध की तैयारी पूरी की। यवनों ने क्षत्रियों के ऊपर अनेक प्रकार के शस्त्रों को फेंका। कुछ ने दुर्ग की दीवार को खोदकर किसी ने सीढ़ी से चढ़कर दुर्ग जीतने का प्रयास किया। परन्तु शूरवीरों ने मुसलमान सेनापतियों के दुर्ग जीतने के सभी प्रयास विफल किये।[2] उस भयंकर युद्ध में दोनों तरफ से बहुत से वीर वीरगति को प्राप्त हुए। एक दिन युद्ध में चलाया गया एक गोला शत्रु की तरफ से चलाये गोले से भिड़कर उछला और उससे **निसुरत खान** मारा गया।[3] **उल्लू खान** उसके मृत शरीर को लेकर दिल्ली गया। युद्ध के सम्पूर्ण वृत्तान्त को सुनकर दुःखी मन से अनुज निसुरत खान का अन्तिम संस्कार कर **अल्लावदीन** स्वयं **रणस्तम्भपुर** को प्रस्थान किया।[4]

1. वशिष्टयुक्त्यायदि नाभविष्यदाजग्मिवानत्र भवान् कथंचित्।
   तदा त्वया गादि यमेदमर्वाग् जिह्वां ध्रुवं तां निरकासयिष्यम्।।
   दन्तौ द्विपस्येव मणिं भुजंगस्येवैणशत्रोरिव केसरालिम्।
   श्री चाहमानस्य धनं बलेन न जीवितः कश्चन् लातुमीष्टे।।

   हम्मीर महाकाव्य—11/64-65

2. हम्मीर महाकाव्य—11/75-99
3. प्रवर्तमाने समरेऽन्यदा थापस्फाल गोलः शकगोलकेन।
   प्रभ्रश्यता तन्छकलेन मूर्ध्निहतो व्यनेशन्निसुरत्तखानः।।

   हम्मीर महाकाव्य—11/100

4. एतद्वीक्ष्याप्तशोकः श्रुरिपुजनिताशेषतत्तन्निकारः
   कृत्वा तस्यान्त कृत्यं निखिलमपि यथा युक्ति कोपप्रकम्पः।
   वेगादागादमुत्र स्वयमथ यवनै कावनोऽल्लावदीनो
   वीरमन्याः सहन्ते रिपुजन जनितं क्वापि कि वा निकारम्।।

   हम्मीर महाकाव्य—11/103

हम्मीर महाकाव्य के बारहवें सर्ग में हम्मीर अल्लावदीन आदि के मध्य हुए भीषण युद्ध का वर्णन ओजमय भाषा में हुआ है। **अल्लावदीन रणस्तम्भपुर** आकर हमीर से बोला—वीरवर, मैं तुमसे सन्तुष्ट है अतः जो भी अभीष्ट है उसे माँगो। स्वाभिमानी **हम्मीरदेव** बोले—यदि ऐसा है तो दो दिन तक युद्ध करो। भूल से भी मेरे लिए सत्य से बढ़कर दूसरा कोई धन वाञ्छित नहीं है। इस बात को सुनकर **अल्लावदीन** बोला—प्रातः वैसा ही हो'' इतना कहकर अपने आवास में चला गया।[1] दूसरे दिन स्वभाव से ही वीर, क्षत्रियों ने युद्ध के समाचार को सुनकर शत्रुओं को अपने राज्य से निकाल भगाने के लिए दृढ़ संकल्प किया।

बहनों ने अपने भाइयों का, माताओं ने अपने पुत्रों का, युवतियों ने अपने पतियों का मातृभूमि की रक्षा के लिए, मंगल तिलक करके सहर्ष रणभूमि में भेजा।[2] तब **अल्लावदीन** भी सेना को बुलाकर अनुज आदि के साथ युद्धभूमि में पहुँचा। प्रथम दिन उन दोनों सेनाओं के मध्य घोर युद्ध हुआ। इसी प्रकार दूसरा दिन भी भयंकर युद्ध में बीता। इस युद्ध में 85,000 मुगल सैनिक मारे गये।[3] तेरहवें सर्ग में हम्मीर के स्वर्गगमन की विशिष्ट कथा का वर्णन है।

एक दिन हम्मीर के दुर्ग में उस स्थान पर मजलिस जमी थी। जो यवनों के शिविर से सुस्पष्ट दिखायी दे रहा था। उसी समय सुन्दरी **धारादेवी** ने

---

1. हम्मीर महाकाव्य—12/1-6
2. कुम्भान् निधायसिरसि प्रपूरितान् एलालवंगरसशीतलैर्जलैः।
   प्रीत्यानुयातुमसुवल्लभान् निजान् सज्जीवभूव निखिलो भटीजनः।।

   हम्मीर महाकाव्य—12/27
3. एतस्मिन् समरे वीरा भवनानां महोजसः।
   पंचाशीतिसहस्राणि यमावासमयासिषुः।।

   हम्मीर महाकाव्य—12/88

वहाँ आकर नृत्य करना शुरू किया। मयूरासनबन्ध से नृत्य करते हुए उसने ताल-त्रुटि के समय सुल्तान को पश्चाद भाग दिखाया। इससे खिन्न होकर अल्लावदीन ने कहा—क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो इसे बाणसे मार गिरा सकता है। सुल्तान के भाई ने बताया—'आपने **उड्डानसिंह** को कैद में डाल रखा है। वही यह काम कर सकता है।' बादशाह ने उड्डान सिह पर कृपा दिखायी उसकी बेड़ियाँ काट दी। **उड्डान सिंह** से बादशाह ने **धारा** को मार गिराने का आदेश दिया। उड्डान सिंह के बाण से घायल होकर **धारा** दुर्ग की उपत्यका में गिर गयी।[1] क्रोधित **महिमासाहि** धारा की ही तरह **अल्लावदीन** को मारना चाहा।[2] किन्तु हम्मीर के कहने से उसने बादशाह को छोड़कर उड्डान सिंह को ही मार गिराया। उसके विनाश से चकित होकर अल्लावदीन ने अपना डेरा तालाब के दूसरी ओर कर दिया।[3]

अल्लावदीन ने एक बार रणस्तम्भपुर के ऊपर आक्रमण किया। इसने सुरंग का निर्माण करवाया। सुल्तान ने खाई को पूलियों, उपलों और लकड़ियों के टुकड़ों से भरवा दिया। कई महीनों में ये दोनों कार्य करने के पश्चात् यवनों ने हम्मीर के ऊपर आक्रमण किया। चतुर हम्मीर देव ने खाई में एकत्रित लकड़ियों को अग्नि के गोलों से जलवा दिया और सुरंग में गरम लाख युक्त तेल प्रवाहित करवा दिया। उससे बहुत सारे यवन सैनिक जल और मर गये।[4] इस प्रकार अल्लावदीन ने दुर्ग जीतने के जो-जो उपाय किये

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/1-32
2. तन्मर्म महिमासाहिर्बिभ्रद् हृदिपरे दिवि
   शकेशं वेध्यतां नीत्वाहम्मीरमिदमब्रवीत्।
   यघादिशत भूनाथो मामिदानी तदारिपुम्
   शरसात् तरसा कुर्वे (धारामिव) धनंजयः।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/34-37
3. हम्मीर महाकाव्य—13/38
4. हम्मीर महाकाव्य—13/39-45

हम्मीर देव ने उन सभी को विफल किया।

इस प्रकार वर्षा आ गयी।[1] यथा तथा सन्धान की इच्छा से दूतों द्वारा रतिपाल को बुलवाया। बादशाह ने रतिपाल को खूब प्रसन्न किया।[2]

शकराज ने रणस्तम्भपुर को विजित करने के पश्चात् रतिपाल को देने का आश्वासन देकर अपने पक्ष में कर लिया।[3] दिल्ली से रणस्तम्भपुर लौट कर रतिपाल ने राजा को भड़काते हुए हम्मीर से बोला—शकेश्वर आपकी पुत्री माँगता है। वह कहता है कि हम्मीरदेव, बहुत से यवन सैनिको के युद्ध में मारे जाने पर भी मेरा कुछ भी नहीं हुआ। यथा दो तीन पैर टूट जाने पर भी खर्जूर लंगड़ा नहीं होता है। यदि व्यय की अधिकता से कोश रिक्त हो गया हो तो आप लोग मेरे पास आये क्योंकि बादल के द्वारा कुछ जल ग्रहण से सागर सूख नहीं जाता है।[4]

अतः मुझको अपनी पुत्री प्रदान कर सुखी होओ। इस पर मैं उसे भर्त्सना देकर चला आया हूँ। **रणमल्ल** भी आपसे नाराज है। इसलिए पांच सात आदमी ले जाकर आप उसे राजी कर ले। जब **वीरम** के पास होकर रतिपाल निकला तो शराब की गन्ध से उसने अनुमान कर लिया कि रतिपाल

---

1. इलामधः कर्दमिलां धाराश्चोपरिपातिनीः।
   विलोक्य यवनाः सेवा व्रते वैराग्यमासदन्।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/66

2. हम्मीर महाकाव्य—13/71-76
3. तद् यतस्व यथा तूर्ण यथा स्यां सत्यसंगरः।
   एतद्राज्यं तवैवास्तु जयेच्छुः केवलं त्वहम्।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/77

   अन्तस्तः पुरं नीत्वा शकेशस्तमभोजयत्।
   अपीव्यत् तद्भगिन्या च प्रतीत्यै मदिरामपि।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/81

4. हम्मीर महाकाव्य—13/82-86

शत्रु से मिल गया है। किन्तु राजा ने केवल संदेह के आधार पर रतिपाल के विरुद्ध कार्य करना उचित नहीं समझा।[1] शकराज राजा से पुत्री माँगता है— 'यह वृत्तान्त जब अन्तःपुर में पहुँचा तो **देवल देवी** पिता के पास पहुँची और अनेक नीति युक्त बातों से उसे अपने प्रदान के लिए समझाया। **देवलदेवी** ने पिता **हम्मीर** से कहा—

हा हा तात मदर्थं किं राज्यं विप्लावस्यदः।[2]
किं कीलिकार्थं प्रासादं प्रपातयति कश्चन्।।
मत्प्रदानेन साम्राज्यं चिरं यत् क्रियते स्थिरम्।[3]
तत्काचखण्डदानेन रक्षा चिन्तामर्णेन किम्।।

इस प्रकार साम्राज्य और पिता के हित के विषय में बार-बार मन में विचार करने के बाद पुनः राजा से बोली—

तन्निधेहि धियं तत्वे विधेहि समयोचितम्।[4]
पिधेहि मा च मद् वाक्यं शकेन्द्राय प्रदेहि भानू।।

इति।

मनस्वी हम्मीर राजकुमारी की बातों को सुनकर प्रसन्न होने के स्थान पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने राजकुमारी को डाँटते हुए कहा कि पुत्री तुम्हें जिसने शिक्षित करके मेरे पास भेजा है मैं उसकी जिह्वा[5] छिन्न-भिन्न कर डालता परन्तुस्त्री वध से डरता हूँ। तुम्हारे दान से प्रजा तथा साम्राज्य की

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/88-104
2 हम्मीर महाकाव्य—13/107
3 हम्मीर महाकाव्य—13/109
4. हम्मीर महाकाव्य—13/114
5 शिक्षवित्वेति पापिन्या त्वमिह प्रेषिता यया।
छिदि्भ रसनां तस्या विभेमि स्त्रीवधात्र चेत्।।

हम्मीर महाकाव्य—13/117

प्राप्ति की अपेक्षा मेरे लिए मरना ही श्रेयस्कर है।[1] चौहान वंश मे इस प्रकार का कार्य किसी ने नहीं किया है। इस प्रकार का अनर्थ करने के पश्चात् अपने पूर्वजों से क्या बताऊँगा?[2] इस प्रकार हम्मीर ने पुत्री की बातो का समाधान करके उसके आवास में भेज दिया और शकेन्द्र के प्रस्ताव का तिरस्कार किया।

दूसरी तरफ धूर्तमति **रतिपाल रणमल्ल** के पास जाकर बोला कि, तुम कैसे आराम से बैठे हो? हम्मीर कुछ लोगों के साथ तुम्हें पकड़ने आ रहा है। अतः तुम यहाँ से भाग जाओ।[3] **रणमल्ल** अपने आवास में चला गया। सायंकाल के समय राजा को पाँच-सात लोगों के साथ आता देखकर रममल्ल ने रतिपाल की बातों को सत्य मान लिया। रणमल्ल डर कर दुर्ग से उतरकर शत्रु से जा मिला।[4] इस प्रकार रतिपाल के साथ-साथ रणमल्ल भी शत्रु पक्ष का हो गया।

राजा हम्मीर रतिपाल तथा रणमल्ल की दुश्चेष्टा से खिन्न होकर जब कोठारी जाहड से अन्न के बारे में पूछा कि—हमारे कोश में कितना अन्न है?

जाहड़ ने विचार किया कि यदि अन्न के विषय में गलत सूचना हम्मीर देव को देता हूँ तो हम्मीर देव शत्रु के साथ सन्धि करेंगे। इस प्रकार मन में

---

1 हम्मीर महाकाव्य—13/118-123

2. आचाहमानप्याधैर्यन्नाकृत्यं कृतं पुरा।
तत् कुर्वन्नधुना हं तान् कथं वक्ता स्वपूर्णजात्।।
हम्मीर महाकाव्य—13/127

3. हम्मीर महाकाव्य—13/130-133

4. हम्मीर महाकाव्य—13/134-135

सोचकर उत्तर दिया कि सम्पूर्ण अन्न समाप्त हो चुका है।[1] इस प्रकार हम्मीर देव के सभी आत्मीय जन सन्देहास्पद हो गये। उसने सोचा जिन **रतिपाल** तथा **रणमल्ल** को मैं भाई की तरह दान, मान आदि से सत्कृत करता था उन्होंने यदि स्वामिद्रोह कर दिया तो स्वभाव से नीच अन्य लोगों के विषय में क्या कहा जा सकता है।[2] इस प्रकार चिन्ता करते हुए **हम्मीर देव** ने किसी तरह से रात्रि व्यतीत किया। प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त की क्रिया को समाप्त किया।

प्रातः काल हम्मीर देव ने **महिमा साहि** से कहा—हम सभी मातृभूमि की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करते हैं क्योंकि मातृ भूमि की रक्षा करना क्षत्रियों का धर्म है। किन्तु तुम विदेशी हो। इसलिए तुम्हारा यहाँ रहना उचित नहीं है। तुम जहाँ जाना चाहो मैं तुम्हें वहां पहुँचा दूँ।[3] **स्वामी हम्मीर देव** के इस प्रकार वचन को सुनकर **महिमासाहि** का ह्रदय विध गया और अत्यन्त कष्ट का अनुभव किया। उसने कहा कि यदि आपकी यही इच्छा है तो ऐसा ही होगा। उसके बाद घर जाकर महिमासाहि ने परिवार केसभी सदस्यों की तलवार से स्वयं हत्या कर डाला।

---

1. तयोस्तच्चेष्टितं दृष्ट्वा काले धिक् कलयन्नयम्।
   कोशेऽन्नं कियदस्तीति नृपः पप्रच्छ जाहडम।।
   वदामि यदि नास्तीति तदा सन्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
   भाव्यर्थभावाद् ध्वात्वेति जगौ न कियदित्यऽसौ।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/136-137

2. अमानैरपि सन्मानैर्दानैस्तैस्तैरनेकधा।
   पूछितौ सत्कृतौ शश्वद् यौ भ्रातराविव।।
   यदि तावप्यहो स्वामिद्रोहमेवं प्रचक्रतुः।
   तदा स्वभावनीचानां परेषां गणनाप्रस्तुका।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/140-141

3. हम्मीर महाकाव्य—13/148-151

उसके पश्चात् अत्यन्त खिन्न मन से वह घर से आकर स्वामी हम्मीर से निवेदन किया कि स्वामी आपके आशीर्वाद से इतने समय तक यहाँ हमने निवास किया। हमको यह भी नहीं ज्ञात रहा कि सूर्य कब उदित होता है कब अस्त।

आपके संरक्षण में हम शत्रुकृत पराभव को भी भूल गये। इस समय हमारा दुर्भाग्य है कि आप हमें इस स्थान से अन्यत्र भेजना चाहते हैं। अतः बाद में नहीं मालूम कि आपका दर्शन कब होगा। इस कारण आपकी भाभी जाने से पूर्व एक बार आपके दर्शन चाहती है। अन्यथा उसके हृदय में इस विषय में हमेशा पश्चाताप बना रहेगा। अतः आप मेरे घर चलकर उस पश्चाताप संतप्त अभागी को अपना दर्शन देकर सुखी करें।[1] महिमासिह के घर पहुँचकर जब हम्मीर देव अन्दर प्रविष्ट हुआ तब उस घर के सभी लोगों को कुरुक्षेत्र की तरह रक्त पूर्ण देखकर मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर गया।[2]

वीरम आदि बन्धु जनों अश्रु सिञ्चन से सचेत हुआ हम्मीर देव प्रिय सेवक महिमासाहि को गले लगाकर विलाप करने लगा।[3] परन्तु इस समय

---

1. कान्तैतावन्ति वर्षाणि तस्थिवांसो यदोकसि।
   अप्यात्तानुभव नैवास्मार्ब्म शत्रुपराभवम्।।
   यस्य प्रसादैः सम्प्राप्तसौख्यलक्षैर्निरन्तरम्।
   अबोधिनापि तिग्यांशुरुदितोऽस्तमितोऽथवा।।
   तमिदानामदृष्ट्वैव यद्येवं नाथ, गम्यते।
   पश्चात्तापहतं तर्हिमनः केनोपशाम्यति।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/155-157

2 आसाद्य तद्गृहं भूपो यावदन्तर्विशत्यसौ।
   कुरुक्षेत्रमिवद्राक्षीत् तावत् सर्व तदंगणम्।।
   अस्त कपूरे शिरांसीह शिशूनां योषितामपि।
   तस्त्यवेक्ष्य मूर्च्छलः क्ष्मापालः क्ष्मातले पतत्।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/160-161

3. हम्मीर महाकाव्य—13/162-166

इन सबसे क्या लाभ। मेरे लिए कोई इतना आत्मीय नहीं होगा इस धिक्कारता हुआ कहने लगा—

मत्तो नैवाधमः कोऽपित्वत्तो नैवोत्तमः परः।[1]
अध्यायं मन्धीस्तादृगीदृक प्रेम्ण्यापि त्वयि।।

उसने महिमासिह की ह्रदय से प्रशंसा किया। हम्मीर किसी तरह से महिमासाहि के घर से लौटकर देखा कि कोष्ठागार अन्न से परिपूर्ण है।

उसने कोष्ठागार के प्रधान **जाहड़** से इस विषय में पूछा तो **जाहड** का झूठ बोलने के कारण राजा को ज्ञात हुआ।[2] स्वामिभक्त होते हुए भी जाहड की बुद्धि झूठ बोलने में प्रवृत्त हुई। बार-बार यह विचार करने पर हम्मीर को यह ज्ञात हुआ कि विनाश का अवसर आ गया है। अन्यथा इस प्रकार की विनाशकालीन बुद्धि न हुई होती कि स्वयं विपरीत परिस्थितियाँ बन जाय।[3] **गोस्वामी तुलसीदास** ने भी रामचरितमानस में कहा है—

तुलसी जस भवितव्यता तैसी मिलई सहाय।[4]
आपन आवे ताहि पै ताहि तहाँ लैजाय।।

इति

मानव के मन में अनेकों इच्चाएं उत्पन्न होती है परन्तु भाग्य से वे पूर्ण नहीं होती है, मन में ही विलीन हो जाती है।[5]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/165
2. हम्मीर महाकाव्य—13/169-170
3. विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः। भर्तृहरि—2/10 किरातार्जुनीयम—2/34
4 रामचरितमानस
5. अन्यथैव विचार्यन्ते पुरुषेण मनोरथाः।
   वैवादाहितसद्भावा कार्याणामन्यथा गतिः।।

हम्मीर महाकाव्य—13/168

स्वाभिमानी **हम्मीरदेव** ने कुल विनाश का समय अत्यन्त समीप देखकर बाहर जाने के लिए इच्छुक नागरिकों के लिए मुक्ति द्वार खोल दिया और प्राणप्रिय रानियों को जौहर करने की आज्ञादी। और स्वयं दानादि धार्मिक कार्यों को करकेसम्पूर्ण दुःखों को त्याग कर भगवान जनार्दन को स्मरण करता हुआ कुछ समय **पद्मसर** के किनारे अत्यन्त शान्त भाव से बैठ गया।[1] अपने प्राणप्रिय **हम्मीरदेव** के आदेश को प्राप्त कर रंग देवी आदि प्रमुख रानियों ने सुन्दर वस्त्रों एवं दिव्य आभूषण को धारण किया। जो-जो वस्त्र व आभूषण अत्यन्त सुन्दर लगते थे उन सभी श्रृंगार साधनों को धारण कर सभी रानियाँ अत्यन्त सुशोभित हुई।[2]

विविध वस्त्रों एवं आभूषणों से सुशोभित प्राणप्रिय रानियों को देखकर सन्तुष्ट होने पर राजा ने अपनी केश पट्टिका काटकर उन्हें दी।[3] फिर पुत्री राजकुमारी **देवल देवी** को गले लगाकर विलाप करते हुए राजा बोले—यदि आगामी जन्म में पुत्री हो तो तुम्हारे जैसी हो जिसने अपने पिता के गौरव को बढ़ाया।[4]

---

1. ततः प्रदाय पौरायां मुक्तिद्वारं रव युक्तिवित्।
   प्रवेष्टुं ज्वलने शिष्टमतिरादिष्टवान् प्रियाः।।
   स्वयं च कृतदानादिधर्मोऽर्चित जनार्दनः।
   क्षणं पद्मसरतीरे निषसाद विषादमुक्।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/171-172

2. हम्मीर महाकाव्य—13/171-180
3. ततस्तुष्टो नृपश्छित्वा कबरी स्वा वरीयतीम्।
   मूर्त श्रृगारसर्वस्वमिव तासां व्यशिश्रणत्।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/181

4. ऊचे च चेद् भवेत् पुत्री भूयात्तर्हि भवादृशी।
   परा कोटि मया नाथि गौर्येव जनको निजः।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/183

इस प्रकार राजकुमारी देवल देवी भी उन रानियों के साथ चिता में प्रविष्ट हुई।[1] हम्मीर देव ने उन वीर क्षत्राणियों को अन्त्याञ्जलि दिया। शत्रु के हाथ में कुछ भी न पड़े—

इस आशय से जब **जाजा** को आदेश दिया तो जाजा नौ हाथियों के सिर काटकर राजा के पास पहुँचा। वह हम्मीर से बोला—राजन् जिस प्रकार रावण ने शिव की अर्चना की थी, वैसे ही मैं तुम्हारी अर्चना करता हूँ। ये नौ सिर है और दसवां सिर मेरा होगा।[2]

इसके बाद हम्मीर ने अपने भाई **वीरम** को राज्य देने की इच्छा की लोकापवाद के भय से उसने राज्य स्वीकार नहीं किया। तब राजा ने जाजदेव को राज्य दिया। खजाने के समस्त धन को **पद्मसर** में डालकर कोषाध्यक्ष को हम्मीर की आज्ञासे वीरम ने प्राणदण्ड दिया।[3]

[4]शुक्ल पक्ष की षष्ठी को रविवार की रात में नव **वीरों-वीरमौलि, वीरमसिंह, गंगाधर, राजद, चारों यवन भाइयों** और **क्षेत्रसिंह परमार** के साथ हम्मीर देव युद्ध भूमि में उतरा। अल्लावदीन के सैनिकों के साथ युद्ध करते हुए सर्वप्रथम **वीरम** वीर गति को प्राप्त हुआ।[5] युद्धभूमि में **महिमासाहि** को मूर्च्छित देखकर हम्मीर देव स्वयं युद्ध भूमि में उतरा। युद्ध में एक अकेले हम्मीर ने अपने हाथों से असंख्य यवन वीरो को मार डाला। उसके अग्नि युक्त बाणों से घिरे शक ऐसा महसूस किये कि जैसे अग्नि

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/186
2. हम्मीर महाकाव्य—13/188-189
3. हम्मीर महाकाव्य—13/190-195
4 अथ श्रावणमासस्य सितषष्ट्या खौ निशि।
  दिवि कीर्ति कलन्ती स्वां विलोकयितुमुत्सुकः।

  हम्मीर महाकाव्य—13/196
5. हम्मीर महाकाव्य—13/199-207

बाण न होकर यह सूर्य मण्डल में ही प्रविष्ट हो गये हो।[1]

युद्ध में हम्मीरदेव विलक्षण आयुध कौशल का प्रदर्शन करता हुआ धनुर्विद्या के ज्ञाता शत्रुओं के लिए धनञ्जय की तरहकुशल प्रतीत हुआ। जाजदेव को छोड़कर अपने पक्ष के सभी वीरों को वीरगति प्राप्त कर चुका देखकर स्वयं भी शत्रुओं के बाण प्रहारों से जर्जर शरीर वाला होकर विचार किया कि इस समय अन्त समय अत्यन्त निकट है। शकराज मुझे जीवित ही पकड़ना चाहता है। परन्तु यह मेरे जीते जी स्वप्न में भी नहीं हो सकता। इस प्रकार मन में विचार कर अपने ही हाथों से गला काटकर सागर से भी गम्भीर वीर हम्मीर ने दुर्भाग्य से प्राणों का त्याग दिया।[2]

हम्मीर महाकाव्य के चौदहवें सर्ग में मानवीर हम्मीर के गुणों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

महाकवि नयचन्द्र द्वारा वर्णित है कि विधाता ने हमीर का हरण करके निश्चय ही संसार से सब कुछ ही हर लिया।[3] विविध कलाओं के ज्ञाता, राजाओं के तिलक स्वरूप श्रीमत् हम्मीर देव के दिवंगत हो जाने पर देवी सरस्वती आश्रय विहीन हो गयी, धर्म ने शर्म पद का परित्याग कर दिया, नीति समाप्त हो गयी, लक्ष्मी ने वैधव्य धारण कर लिया।[4] कपट बुद्धि वाले राजाओं को कलंकित करने वाले उस **रतिपाल** तथा विश्वासघाती **रणमल्ल**

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/209-212
2 श्री हम्मीरोऽथ वीर व्रज मुकुटमणि म्लेंच्छबाण प्रहारैः
सर्वांगेषु पुरुषैः क्षितितलमभिमतो भावितो भीष्मकर्ता।
जीवन्तं ग्राहिषुर्मा क्वचिदपि यवना मामिति ध्यातबुद्धिः
कण्ठं छित्वास्मनैव स्वमटति च दिवं स्मात्तसूरातिथित्वः।।

हम्मीर महाकाव्य—13/126

3. हम्मीर महाकाव्य—14/8
4 हम्मीर महाकाव्य—14/2

को धिक्कार है जो अपने कपटपूर्ण आचरण से अपने वंश के यश को धूमिल किये हैं।[1] स्वामिभक्त वह **जाजदेव** धन्य है जिसने हम्मीर की मृत्यु के बाद भी दो दिन तक दुर्ग की रक्षा की।

स्वामी के बार-बार मना करने पर भी मातृभूमि की रक्षा केलिए वह वहीं रुक रहा और युद्ध किया।[2] वह **महिमासाहि** भी धन्य जिसने प्राणान्त तक शत्रु के सामने सिर नहीं झुकाया। उस वीर **महिमासाहि** की बराबरी कौन कर सकता है जो पकड़े जाने पर पैरको आगे दिखाता हुआ **अलाउद्दीन** की सभा में घुसा और जिसने यह पूछने पर कि यदि मैं तुम्हें जीवित छोड़ दूँ तो तुम मेरे लिए क्या करोगे, तो महिमासाहि ने यह उत्तर दिया वही करूंगा जो तुमने हम्मीर के लिए किया। पूछने पर जिसने रणक्षेत्र में पड़े हम्मीर केसिर को पैर से दिखाया। उस कृतघ्न रतिपाल की अल्लाउद्दीन ने खाल निकलवा ली वह ठीक ही किया।[3]

इसके पश्चात् काव्यकर्ता का परिचय प्रशस्ति भाग में दिया गया है। कृष्णगच्छ में कोई **जयसिंहसूरि** हुए, जिन्होंने षड्भाषा विद्, चक्रवर्ती कवि **सारंग** को शास्त्रार्थ में पराजित किया। जयसिंह सूरि ने निश्चय ही **न्यायसार ग्रन्थ** की टीका **नव्य व्याकरण** को और **कुमारपाल चरित** नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया। श्री जयसिंह के शिष्य **प्रसन्न चन्द्र** हुए। और उस प्रसन्नचन्द्र के शिष्य थे—**कवीन्द्र नयचन्द्र सूरि**। ये ही महानुभाव निश्चित रूप से **हम्मीर महाकाव्य** के रचयिता है।[4]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—14/15-6
2. एको नन्दतु जाज एव जगति स्वाभाविक प्रीतिभृत्।
   येनात्रापि दिवंगतेऽपि नृपतौ दुर्गं किलाहर्द्वयीम्।।

   हम्मीर महाकाव्य—14/16
3. हम्मीर महाकाव्य—14/20-21
4 हम्मीर महाकाव्य—14/22-26

कवि गुरु जयसिंह के पौत्र होते हुए भी नयचन्द्र काव्यकला मे उनके पुत्र थे।[1] एक बार तोमर राजा की सभा के सदस्य द्वारा कही गयी यह उक्ति कि पूर्व कवियों की तरह आज कोई भी कवि काव्य निर्माण में सक्षम नहीं है इसको सुनने के पश्चात् कवि नयचन्द्र ने श्रृंगार वीर अद्‌भुत रसों से युक्त इस महाकाव्य की रचना की जो इस पद्य से ज्ञात होता है—

काव्यं पूर्वकेवर्न काव्यसदृशं कश्चिद् विधाताऽधुने,
त्युक्ते तोमर वीरमक्षितिपतेः सामाजिकैः संसदि।
तदभ्रूचापलकोलिदोलितमनाः श्रृंगारवीराद्‌भुतं,
चक्रे काव्यंमिदं हमीरनृपतेर्नव्यं नयेन्दुः कविः।।[2]

संक्षिप्त में इस महाकाव्य की कथावस्तु इस प्रकार है।

1. हम्मीर महाकाव्य—14/27
2. हम्मीर महाकाव्य—14/43

कथानक का औचित्य

किसी भी महाकाव्य में रस गुण अलंकार आदि सभी का सन्निवेश होने पर भी यदि कथानक के औचित्य का निर्वहण नहीं हुआ है तो उसकी वर्ण्य वस्तु सहृदयों के हृदय को आकर्षित नहीं करते हैं। **परम आचार्य क्षेमेन्द्र** ने इस विषय में सुस्पष्ट कहा है—

उचितार्थ विशेषेण प्रबन्धार्थः प्रकाश्यते।
गुणप्रभावमत्थेन विभवेनेव सज्जनः॥[1]

काव्य निश्चय ही सहृदयों के हृदय को आनन्दित करने वाला शब्द और अर्थ से युक्त होता है। अतः काव्य में प्रत्येक स्थान पर औचित्य का निर्वाह परम आवश्यक है। वस्तुतः औचित्य के बिना सरस वर्णन होते हुए भी नीरस हो जाता है, गुणयुक्त पदावली निर्गुण प्रतीत होने लगती है। इस कारण ही यहाँ औचित्य के विषय में विचार किया जा रहा है—

औचित्य के बिना अलंकार एवं गुण बहुत थोड़ी रुचि उत्पन्न करते हैं। काव्य के कथानक ये भी औचित्य का निर्वाह सम्यक् रूप से होता है। हम्मीर महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक[2] है। ऐतिहासिक कथानक मे औचित्य का निर्वाह कवियों एवं महाकवियों ने अत्यन्त सावधानी पूर्वक किया है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने भी काव्य में ऐतिहासिक कथानक का अत्यधिक महत्व स्वीकार किया है। **हम्मीर महाकाव्य** की रचना के समय इस महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक नहीं था किन्तु काव्य शास्त्रके आचार्यों ने उस वीर पुरुष के चरित्र को भी काव्य में परम उपादेयी स्वीकार किया है जो

1. औचित्य विचार चर्चा—3/13
2. हम्मीर महाकाव्य

भविष्य में निश्चय ही ऐतिहासिक महापुरुष हो सकता है।[1] **हम्मीर महाकाव्य** मुख्य रूप से **वीरवर हम्मीर देव** के उज्ज्वल चरित्रका आश्रय लेकर महाकवि **नयचन्द्र** ने रचा है।

इसमें मानव जीवन का सरस एवं ओजमय चित्रण हुआ है। यहाँ घटनाओं का वर्णन परस्पर उचित क्रम में गुम्फित है। महाकाव्य में रसानुभूति जनक घटनाओं का यथार्थ चित्रण हुआ है जो सामान्यतः सभी के मन को हर लेती है। यहाँ कवि ने रसोपयोगी कथांश का ही ग्रहण किया है, रस विरोधी विषयों से सम्बद्ध अंश का परित्याग किया है। मूल कथानक में नवीनता तथा उत्कृष्टता उत्पन्न करने के लिए महाकवि ने कहीं-कहीं पर नवीन कल्पना भी किया है। यह परम्परा प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है। अभीष्ट रस की निष्पत्ति ये कवि ने कल्पित कथांश का भी सृजन किया है।[2] **वाल्मीकि रामायण से तुलसीदास कृत रामायण के** कथानक में भिन्नता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। **अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक** में कवि कुल गुरु कालिदास ने दुष्य्त के चरित्रकी रक्षा के लिए मुनि **दुर्वासा** के श्राप की कल्पना की है।

उत्तररामचरित में नाटक के दुःखान्तत्व को समाप्त करने के लिए नाटक के अन्त में सीताराम का मिलन नाटक कार भवभूति ने कल्पित किया है।

हम्मीर महाकाव्य के प्रथम से चतुर्थ सर्ग तक हम्मीर के पूर्वज राजाओं वर्णन प्राप्त होता है। इन सर्गों में पुरानी कथाओं की बहुलता है। वस्तुतः ये

---

1 इतिहास कथोद्भूतमतिरद्वा सदाश्रयम्।
काव्यादर्श—1/15

2 ध्वन्यालोक—3/66-67

सर्ग इतिहासमय प्रतीत होते हैं क्योंकि इनमें कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों का प्रतिपादन किया है। पंचम सर्ग से लेकर अष्टम सर्ग तक वस्तुतः बसन्त ऋतु, जल क्रीड़ा, वन क्रीड़ा, सन्ध्या, चन्द्रोदय, सुरत क्रीड़ा आदि का वर्णन **नयचन्द्र** ने स्पष्ट रूप से किया है। रस और कवित्व कला की दृष्टि से ये सर्ग मनोरम है। वस्तुतः इन स्थलों में महाकवि ने प्राचीन महाकाव्य के प्राचीन काव्य परम्परा का निर्वाह करने में मुख्य कथा का प्रवाह टूट सा गया। ऐसा पढ़ने पर लोग अनुभव करते हैं।

अष्टम सर्ग के पश्चात् कथा पुनः आगे की तरफ बढ़ती है और तेरहवें सर्ग में समाप्त होती है। चौदहवें सर्ग का मूलकथा के साथ साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। इसे प्रशस्ति सर्ग कहना वस्तुतः उचित प्रतीत होता है। इस महाकाव्य के परिशीलन से ज्ञात होता है कि **हम्मीरकथा** का आरम्भ अष्टम सर्ग से होता है। उसके पूर्व कथा के साथ बाद की कथा के प्रवाह में कही भी सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ है। महाकाव्य में पूर्ववर्ती सर्गों के साथ मूलकथा के साथ सम्बन्ध विद्यमान है। इस कारण से ही **हम्मीर महाकाव्य** का कथानक संगठित और सुव्यवस्थित दिखायी पड़ता है।

मूलकथा वस्तु सभी जगह एक-दूसरे सम्बन्धित है।[1] कहीं भी प्रवाह में शिथिलता का अनुभव नहीं होता। इसकी कथा में अनेक हृदय स्थल प्राप्त होते हैं। जैसे—

1. पृथ्वीराज की पराजय उनका कैद तथा मृत्यु।
2. हम्मीर के द्वारा महिमा साहि नामक यवन को अभयदान।
3. निसुरत खान का वध।

---

1 हम्मीर महाकाव्य।

4. हम्मीर के साथ उसके विश्वासपात्र रतिपाल आदि का कपट व्यवहार।

5. हम्मीर की राजमहिषी तथा राजकुमारी का अग्नि प्रवेश।

वीर हम्मीर का अन्त में खुद ही को मार डालना इस प्रकार बहुत से स्थल है जो सहृदयों के हृदय छू लेते हैं।

हम्मीर महाकाव्य के कथानक का विकास वस्तुतः अष्टम सर्ग से होता है। इसमें नायक हम्मीर का चरित्र स्पष्ट होता है तथा कथा का उत्तरोत्तर विकास होता है।

नाटक के प्रसंग में नाम[1] कार्य नाटक के गूढ़ अर्थ का प्रकाशक है। यह साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने कहा है उन्हींके अनुसार नाटक का लक्षण महाकाव्य का भी है।

उनके अनुसार इस महाकाव्य का अभिधान (नाम) प्रधान पात्र वीर **हम्मीरदेव** का ही आश्रय लेकर **हम्मीर महाकाव्य** किया गया। यह महाकाव्य **वीर रस** प्रधान है। अतः वीर प्रवर हम्मीर के नाम से ही इसके नाम की सार्थकता सिद्ध होती है। कवि अपने कवित्व कला के प्रदर्शन के साथ साथ औचित्य निर्वहन में भी पूर्ण रूप से सफल हुए है। कहीं-कही तो कथानक के औचित्य का निर्वाह करने में कवि ने ऐतिहासिक पक्षों की उपेक्षा की है। **कविवर नयचन्द्र** ने लौकिक घटनाओं के लिए अलौकिक कारणो को नहीं दिया है। जैसे **रणस्तम्भपुर दुर्ग** के विनाश के विषय में व्यष्टि रूप से अनेक कारण कह सकते हैं किन्तु समष्टि रूप से **जैत्रसिंह** का अन्तिम उपदेश कारण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

सर्वोत्कृष्ट और प्रासंगिक कथावस्तु निश्चित रूप से काव्य का शरीर

---

1 साहित्य दर्पण—6/142

होता है।[1] कवि कथावस्तु को सुसम्बद्ध तथा सुव्यवस्थित करने में निरन्तर सावधान रहता है। अतः इसको क्रमिक करने में हमेशा प्रयत्न करता है क्योंकि इसलिए वहाँ ये सौन्दर्य उत्पन्न करते हैं। किसी काव्य की कथावस्तु दो प्रकार की होती है। **मुख्य** तथा **गौण**।[2] उसमें मुख्य कथावस्तु सर्वोत्कृष्ट तथा गौण कथावस्तु प्रासंगिक होती है। उसके चरित्र का अनुकरण कर लिखी गयी वृत्त आधिकारिक होती है।[3] आधिकारिक इतिवृत्ति के वर्णन प्रसंग में प्रसंग वश जो कथावस्तु विस्तार से वर्णित होती है वहीं **प्रासंगिक कथावस्तु** होती है।[4]

काव्यशास्त्र मर्मज्ञ महाकाव्य के कथानक में भी नाटक की सभी **सन्धियों**, सभी **कार्यावस्थाओं** और **अर्थ प्रकृतियों** का अनिवार्य रूप से प्रतिपादन करते हैं। काव्य का प्राणधायक तत्व रस है। अतः जिस प्रकार से रस की अभिव्यक्ति सम्यक् रूप से होती है उसी प्रकार सन्धि तथा उसके अंगों का प्रयोग केवल शास्त्रीय परम्परा के कारण ही नहीं अपितु उनका प्रमुख कर्तव्य है। अतः आचार्य आनन्दवर्धन ने इस प्रकार कहा है—

सन्धि सन्ध्यंगघटनं रसाभिव्यक्तयपेक्षया।
न तु केवलया शास्त्रस्थिति सम्पादनेच्छया।।[5]

---

1 इतिवृत्तं तु नाट्यस्य शरीरं परिकल्पितम्।

नाट्यशास्त्र—19/1

2 वस्तु च द्विधा
तत्राधिकारिकं मुख्यमंग प्रासंगिक विधुः।

दशरूपक—1/10-11

3. अधिकारः फलस्वाम्ममधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।।

दशरूपक—1/12

4 प्रासंगिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसंगतः।
दशरूपक—1/13

5. ध्वन्यालोक—3/38

हम्मीर महाकाव्य में **बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी कार्य,** पंच अर्थ प्रवृत्तियों का प्रयोग हुआ है। निश्चय ही अर्थ-प्रवृत्तियाँ प्रयोजन सिद्धि का कारण होती है। इस कारण महाकाव्य में उनका प्रयोग परम आवश्यक होता है।

बीज—अर्थ प्रकृतियों का प्रथम भेद बीज है। बीज का लक्षण **आचार्य विश्वनाथ** ने इस प्रकार किया है—

अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यद्विसर्पति।[1]
फलस्य प्रथमो हेतु र्बीजं तदभिधीयते॥

बीज थोड़े ही शब्दों में कहे गये फल को विकास की ओर ले जाने वाले साधन का नाम है। वस्तुतः बीज उस फल का निमित्त है जिसका आरम्भ में सूक्ष्म रूप से संकेत किया जाता है और बाद में चलकर अनेकशः विस्तार को प्राप्त करता है। **हम्मीर महाकाव्य** में आरम्भ से सप्तम सर्ग तक हम्मीर के पूर्वजों का ओज भय वर्णन हुआ है। मूल कथा का विकास हम्मीर देव के राज्यसिंहासन आरोहण के पश्चात् होता है।[2] उस समय **दिल्ली** का शासक शकराज **अल्लावदीन** था। उसने एक बार विचार किया कि पहले जैत्र सिह मुझे दण्ड भाग देता था किन्तु आज उसका पुत्र **हम्मीरदेव** दण्डभाग तो दूर वार्तालाप करने को भी नही तैयार है। अतः **अल्लावदीन** ने हम्मीर के विनाश के लिए अपने भाई **उल्लूखान** को सेना के साथ

---

1. साहित्य दर्पण—6/65
2 हम्मीर महाकाव्य—1-8 सर्ग तक
3 हम्मीर नामा तत्सूनुरधुना खवर्गगर्वान्।
दण्ड दूरत एवास्तु न वाक्यमपि यच्छति।।
स महौजस्तया शक्यो जेतुं नाभूदियच्चिरम्।
व्रते स्थितयेदानी लीलयैव विजीयते।।
हम्मीर महाकाव्य—9/103-104

भेजा।[3]

उस समय हम्मीर मौन व्रत धारण किया था। हम्मीर अत्यन्त क्रोधित था किन्तु व्रत के कारण वह युद्ध भूमि में नहीं गया। दुष्ट अल्लावदीन की इस प्रकार की वंचना बीज रूप में स्थान ग्रहण किया है। उसी समय से हम्मीर का अल्लावदीन प्रबल शत्रु हो गया।

बिन्दु–

बिन्दु का लक्षण **साहित्य दर्पणकार** ने इस प्रकार दिया—

अवान्तरार्थ विच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम्।[1]

जब मुख्य कथा के प्रभाव के कारण अवान्तर कथा क्षीण होने लगती है। उस समय क्षीण कथा को पुनर्जीवित करने वाले फलका हेतु **बिन्दु** कहलाता है। जल में तेल बिन्दु के प्रसार की अवस्था को ही बिन्दु कहते हैं। व्रत अवस्था में अचानक **अल्लावदीन** के आक्रमण के समय मन्त्री **धर्मसिंह** को अन्धा[2] और नपुंसक मानकर हम्मीरसिंह कुछ निराश हो गया। उससमय कोष भी रिक्त हो गया था।

अतः हम्मीरदेव का मन बहुत चिन्तित उआ। परन्तु उसके पश्चात् **धर्मसिंह** के स्थान पर **भोजदेव** को नियुक्त करके वह पुनः विजय के प्रति आश्वस्त हो गया। इस प्रकार यहाँ अवरुद्ध कथा पुनः आगे की ओर प्रवाहित हुई। इसलिए यहाँ बिन्दु नामक अर्थ प्रकृति विद्यमान है।

पताका—

जो प्रासंगिक वृत्त प्रधान इतिवृत्त के साथ दूर तक चलती है वह पताका

---

1 साहित्य दर्पण—6/66 पृ0 352

2 हम्मीर महाकाव्य—9/149-155

कहलाती है। साहित्य दर्पण में कहा गया है—**व्यापि प्रासंगिकं वृत्तं पताकेत्यभिधीयते**[1] जैसे—**बाल्मीकि रामायण** मे **सुग्रीव** आदि का वर्णन। इस महाकाव्य में **पृथ्वीराज द्वितीय** का वर्णन द्वितीय सर्ग 75 श्लोक से आरम्भ कर सर्ग समाप्ति तथा पुनः तृतीय सर्ग के 72 श्लोकों तक प्राप्त होता है।[2]

इसका वर्णन पताका के रूप में **कवि नयचन्द्र** की कृति स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। ध्यातव्य है कि पताका रूप प्रासंगिक इतिवृत्त का भी एक नायक होता हैकिन्तु आधिकारिक नायक विषयक फल के अतिरिक्त उसका अन्य कोई फल उपनिबद्ध नहीं किया जाता।

प्रकरी–

प्रकरी रूप प्रासंगिक वृत्त का भी नायक होता है किन्तु मुख्य नायक के फल के अतिरिक्त प्रकरी नायक का कोई और फल नहीं हुआ करता अर्थात् प्रकरी नायक का कार्यकलाप उसके अपने प्रयोजन विशेष के लिए नहीं अपितु अधिकारिक नायक के ही उद्देश्य विशेष के लिए हुआ करता है। साहित्य दर्पणकार ने इसे इस प्रकार कहा है—

प्रासंगिकं प्रदेशस्थं चरितं प्रकरी मता।[3]

पताका प्रासंगिक वृत्त कथा के साथ बहुत दूर तक चलती है किन्तु प्रकरी के किसी एक भाग में उपस्थित रहती है।

उदाहरण—रामायण में रावण जटायु संवाद। इस महाकाव्य में **हम्मीर** के शरणागत **महिमासाहि** का अथवा **धारा** नर्तकी का वर्णन प्रकरी के द्वारा

---

1 साहित्य दर्पण—6/67 पृ0 352

2. हम्मीर महाकाव्य का सर्ग 2 एवं 3

3 साहित्य दर्पण—6/69

स्वीकार किया जा सकता है।[1]

कार्य–

कार्य शब्द वस्तुतः नायक के उद्योग का वाचक है। यह आरम्भ से लेकर फल प्राप्ति तक चलता है। कार्य की **पाँच अवस्थाएं होती है— आरम्भ यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम।**[2]

1. आरम्भ—इस अवस्था में नायक में किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा होती है। **साहित्यदर्पणकार** ने आरम्भ के विषय में इस प्रकार कहा है—

''भवेदारम्भ औत्सुक्यं यन्मुख्यफलसिद्धये।'' हम्मीर महाकाव्य में मुख्य कार्य का आरम्भ **हम्मीर देव** के दिग्विजय से होती है। और इस प्रकार **कोटियज्ञ** की समाप्ति पर जब हम्मीरदेव मौन व्रत धारण किये होता है और **अल्लावदीन** हम्मीर पर आक्रमण करता है यह जानकर तब हम्मीर के मन में नराधम अल्लावदीन को पराजित करने की उत्सुकता उत्पन्न होती है।

2. यत्न–नायक अथवा नायिका के द्वारा फल के प्राप्त न होने पर उसके लिए अत्यन्त वेगपूर्वक उद्योग करना ही **प्रयत्न** कहलाता है।[3]

अल्लावदीन के भाई उल्लूखान के द्वारा किये गये आक्रमण को व्यर्थ करने के लिए वीरम जाजदेव आदि प्रमुख वीर हम्मीर के द्वारा भेजे गये।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—12 सर्ग व 13/1-38
2. अवस्था पंच कार्यस्य प्रारबधस्य फलार्थिभिः।
   आरम्भयत्न प्रादयाशानियताप्ति फलागमाः।।

   साहित्य दर्पण—6/70
3. प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽति त्वरान्वितः।

   साहित्य दर्पण—6/71

हम्मीर ने हमेशा (लगातार) शत्रु राज शकराज अल्लावदीन को पराजित करने के लिए वेगपूर्वक अनेक यत्न किया।[1]

3. प्राप्त्याशा—जहाँ उपाय होने पर भी विघ्न की आशंका के कारण **फल प्राप्ति** के विषय में कोई ऐकान्तिक निश्चय नहीं हो पाता तथा फल प्राप्ति की सम्भावना, उपाय और विघ्न शङ्का के बीच दोलायमान स्थिति में रहती है वहाँ **प्राप्त्याशा** नामक **कार्यावस्था** होती है।[2] अल्लावदीन के भाई **निसुरतखान** के मरने के पश्चात् **हम्मीर** के मन में जो विजय की आशा उत्पन्न हुई रहती है वह उसके विश्वासपात्र **रतिपाल** के शत्रु पक्ष में चले जाने से उसके विश्वासघात के कारण क्षीण हो जाती है। परन्तु **जाजा**, **वीरमदेव महिमासाहि** आदि वीरों के उत्साह को देखकर पुनः विजय की आशा उत्पन्न हो जाती है। अतः वहाँ प्राप्त्याशा नामक कार्यावस्था है।[3]

4. नियताप्ति—यह कार्य की वह अवस्था है जिसमें अपायाभाव-अर्थात् विघ्न बाधा की निवृत्ति में फल प्राप्ति की सम्भावना का निश्चय कहा गया है।

अल्लावदीन ने आकर स्वयं हम्मीर केसाथ सन्धि करने की इच्छा प्रकट किया किन्तु स्वाभिमानी हम्मीर ने उससे कुछ भी माँगना उचित नहीं समझा। अतः गर्व से हम्मीर ने अल्लावदीन के साथ दो दिन तक युद्ध माँगा।[4]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—10-29-64
2. उपायापायशंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भवः।

   साहित्य दर्पण—6/72
3. हम्मीर महाकाव्य का एकादश का द्वादश सर्ग।
4. तुष्टस्तवोपरि हम्मीर भूपते, याचस्व वांछित यतुच्छविक्रम।
   क्षत्रोत्तमोऽथ निजगाद यघदस्तर्हि प्रयच्छ समरं दिनद्वयीम्।
   आयोधनादपरमत्र द्रोष्मतां नो वांछित किमपिवल्गु वलगति।।

   हम्मीर महाकाव्य—12/5-6

उसके मन में विश्वास था कि यद्यपि यह सत्य है अल्लावदीन के पास विशाल सेना है फिर भी वीरों के उत्साह और कूटनीति से युद्ध करने पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। हम्मीर का विश्वास था कि उत्साह एकता की भावना एवं शौर्य प्रदर्शन से वह विपुल साधन सम्पन्न होने पर भी शत्रु के पराजित कर सकता है। इसलिए उसने मातृभूमि की रक्षा के लिए आजीवन युद्ध किया।

फलागम

फलागम का लक्षण **साहित्य दर्पणकार** ने इस प्रकार दिया है—

साऽवस्था फलयोगः स्माद् यः समग्रफलोदयः।[1]

जहाँ नायक समस्त उद्देश्य को पूर्ण रूप से प्राप्त करता है, वहाँ **फलागम** नामक **कार्यावस्था** होती है।

हम्मीर महाकाव्य एक दुःखान्त ऐतिहासिक महाकाव्य है। अतएव नायक **हम्मीर** को सम्पूर्ण उद्देश्य का फल प्राप्त नहीं हुआ। विपुल सैन्य शक्ति सम्पन्न **अल्लावदीन** के समक्ष हम्मीर के प्रायः सभी उपाय विफल हो गये। अपने विश्वस्त लोगों के विश्वासघात से यह यवनेश से युद्ध में पराजित हुआ। इस प्रकार हम्मीर महाकाव्य वस्तुतः एक दुःखान्त महाकाव्य है। **कवीन्द्र नयचन्द्र** ने हम्मीरदेव के चरित्र चित्रण में उचित रसों, अलंकारों गुणों, छन्दों और विविध घटनाओं का यथावसर प्रयोग करके कथावस्तु कोसरस, प्रवाहयुक्त और रमणीय बनाया है। इस महाकाव्य की कथावस्तु के संयोजन में कवि की कलाचातुरी निश्चय ही अत्यन्त मनोहर है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

---

1. साहित्य दर्पण—6/73

चतुर्थ अध्याय

हम्मीर महाकाव्य का ऐतिहासिक महत्व

(क) महाकाव्य में वर्णित राजाओं का विवेचन

(ख) हम्मीर महाकाव्य में वर्णित राष्ट्रीय भावना

हम्मीर महाकाव्य का ऐतिहासिक महत्व

(क) महाकाव्य में वर्णित राजाओं का विवेचन

संस्कृत साहित्य में ऐतिहासिक महाकाव्य परम्परा के **महाकवि नयचन्द्रसूरि** विरचित **हम्मीर महाकाव्य** का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इस महाकाव्य में चौहान वंश का उद्भव व **राजस्थान** के इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध राजा **पृथ्वीराज तृतीय** के पूर्वज राजाओं की वंशावली इस प्रकार दृष्टिगत होती है–
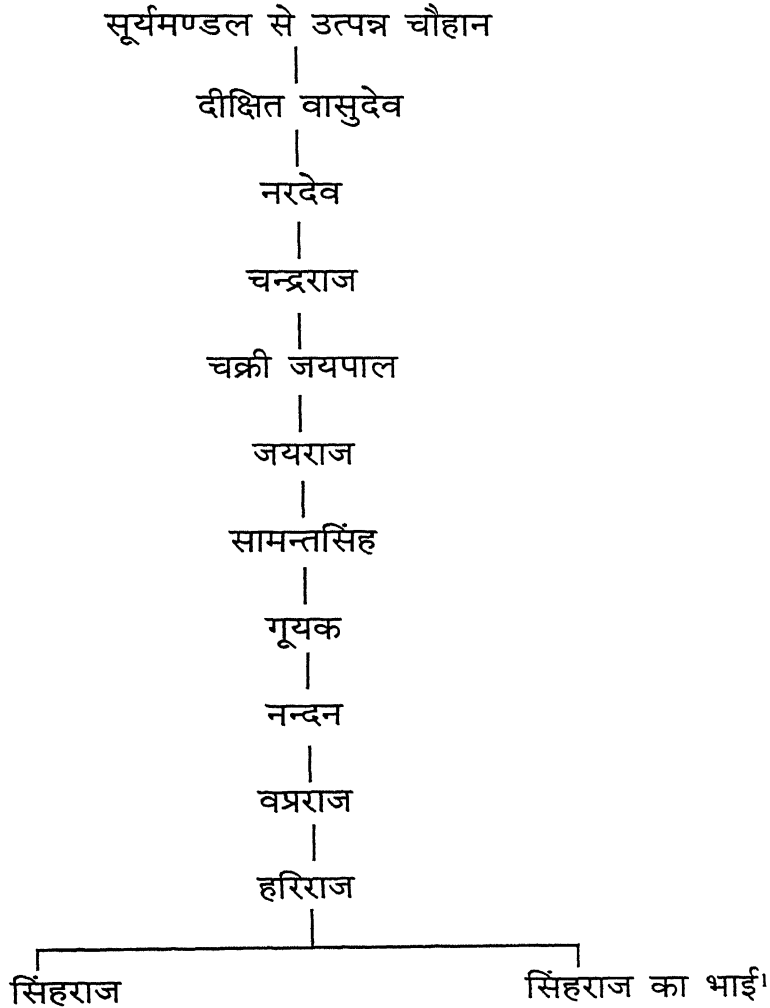
1. यहराज्य सिहासन पर आरूढ़ नही हुआ।

---

1 अप्युग्रवीर व्रतवीर वार संसंकमानक्रमपद्मयुग्मम्।
श्री मूलराजं समरे निहत्य यो गुर्जरं जर्जरतामनैषीत्।।

हम्मीर महाकाव्य—2/9

2 कृतान्तकान्ता कुचकुम्भ—हम्मीर महाकाव्य—2/24

3. सहाबदीनं समरे विजित्य जग्राह यो बाहुबलेन मानी।।

हम्मीर महाकाव्य—2/28

4. हम्मीर महाकाव्य—2/31

1226 विक्रम संवत के **विझौली शिलालेख** के साथ और **पृथ्वीराज विजय काव्य** की तुलना करने पर निम्नांकित अन्तर ज्ञात होता है—

1. चन्द्रराज राजा नरदेव का पुत्र था न कि पौत्र।

2. राजा जय राज चन्द्रराज का पौत्र नहीं था अपितु उसका पितामह था।

3. **हम्मीर महाकाव्य** में जयपाल चक्री चन्द्रराज के पुत्र के रूप में उल्लिखित हैकिन्तु **विझौली शिलालेख** और **पृथ्वीराज विजय काव्य** में चन्द्रराज के पुत्र के रूप में दुर्लभ राज का उल्लेख मिलता है न कि जयपाल का।

4. सामन्तसिंह नरदेव के पिता थे न कि गूयक प्रथम के।

5. गूयक प्रथम दुर्लभराज का पुत्र था न कि सामन्तसिंह का। गूयक प्रथम का पौत्र भी गूयक था।[2]

---

1. कर्पूरदेवीति बभूव तस्य प्रिया प्रियाराधनसावधाना।
   जित यदास्येन जले निलीयाद्याप्यप्सुजं किन्नतपस्तनोति।। 2/72
2. ततो भद्राज्यरमामनन्तानन्तापतिगूर्यक नामधेय।
   येना निशं धर्मतरुर्धरित्र्यामुत्सर्ग नीरैरमिषिच्यते स्म।। 1/63

6. नन्दन वस्तुतः गूयक द्वितीय का पुत्र चन्दन था। सम्भवतः हम्मीर महाकाव्य का शुद्ध पाठ चन्दन ही होता है।[1]

7. वप्पराज (वप्रराज) वप्पयराज का दूसरा रूप है परन्तु शाकम्भरी देवी का उद्भावक वासुदेव था न कि वप्पराज।

8. (वप्पराज) वप्रराज के पश्चात् हरिराज नामक कोई भी राजा शाकम्भरी के राजसिंहासन को सुशोभित नहीं किया। सम्भवतः विन्ध्यराज का ही दूसरा नाम हरिराज होगा।[2]

9. सिंह राज वप्रराज का पुत्र था न कि पौत्र। उसने हेतिम नामक किसी शक नरेश को मारा था यह शिलालेख के आधार पर नही कह सकते।

10. सिहराज का उत्तराधिकारी उसका पुत्र विग्रहराज था न कि उसका भतीजा भीम।[3]

11. विग्रहराज द्वितीय गूर्जर नरेश मूलराज को पराजित किया था न कि मारा था।[4]

12. गुन्ददेव गोविन्ददेव विग्रह राज द्वितीय का भाई दुर्लभ राज द्वितीय का पुत्र था।

---

1 नन्दन्दनश्चन्दनवज्जनानामान्दनो नन्दननामधेयः।
निहत्य शत्रून् समरे समग्रान् स्वसाच्चकारा वनिमा समुद्रय।। 1/67

2 हम्मीर महाकाव्य—1/82

3 उत्सर्पद गुद्रुर्पदर्पितभुजादण्डारिदन्तावल,
व्रातावग्रहनिग्राहग्रहमहानागेन्द्रसान्द्रप्रभः।
हत्वा यो युधि हेतिमं शकपतिं निर्व्याजवीरव्रतो
मन्तेर्भाश्चतुरोऽग्रहीद् बलकरान् मूर्तानुपायानिव।।
सर्ग—1/104

4. हम्मीर महाकाव्य—2/6-9

13. वल्लभ के स्थान पर वाक्पति द्वितीय होना चाहिए।[1]

14. चामुण्डराज वीर राम का भाई था न कि पुत्र।[2]

15. दुर्लभराज ने सहाबदीन नामक किसी शासक को नहीं पकड़ा अपितु यह स्वयं युद्ध में म्लेच्छों के द्वारा मारा गया था।[3]

16. दुःशल ने युद्ध में कर्ण को नहीं मारा और न ही पराजित किया अपितु विग्रहराज तृतीय ने गुर्जर नरेश कर्ण को पराजित किया।[4]

17. आनल्लदेव या अर्णोराज ने अर्णसागर का निर्माण करवाया था न कि पुष्कर सरोवर का।[5]

18. अजयराज वीसलदेव के पुत्र नहीं अपितु पितामह थे।[6]

हम्मीर कालिक प्रायः सभी प्रबन्ध कोशों की प्रतिकृतियों में चौहानो की जो वंशावली उपलब्ध होती है उसकी **हम्मीर महाकाव्य** की वंशावली के साथ बहुत अधिक समानता है। प्रतीत होता है कि **नयचन्द्र** से कुछ समय पूर्व चौहान वंश की शुद्ध वंशावली सुलभ नहीं थी। **शाकम्भरी** के चौहान राजाओं की वास्तविक वंशावली **विझौली शिलालेख**[7] और **पृथ्वीराज विजय** काव्य को अनुकरण करके निम्न प्रकार से प्रदर्शित कर सकते हैं—

---

1 भूवल्लभो वल्लभ राजनामां ततो भवद् भास्वदनर्ध धामा लीलावती लोचनलोभनीयलावण्यलीलाद्भुतरूपसम्पत्।। 2/16
2 हम्मीर महाकाव्य—2/22
3 हम्मीर महाकाव्य—2/25-28
4 हम्मीर महाकाव्य—2/29-31
5 पर्यन्तशैल प्रतिबिम्बदम्भात् क्रीडारसक्रोडितदिग्द्विपं यः (दिग्द्विपं) अचीखनत् पुष्करपुण्यपारं कासारसारं शुचिवारिवारम्।। 2/51
6. हम्मीर महाकाव्य—2/56
7. विझौली शिलालेख तथा पृथ्वीराज विजय काव्य।
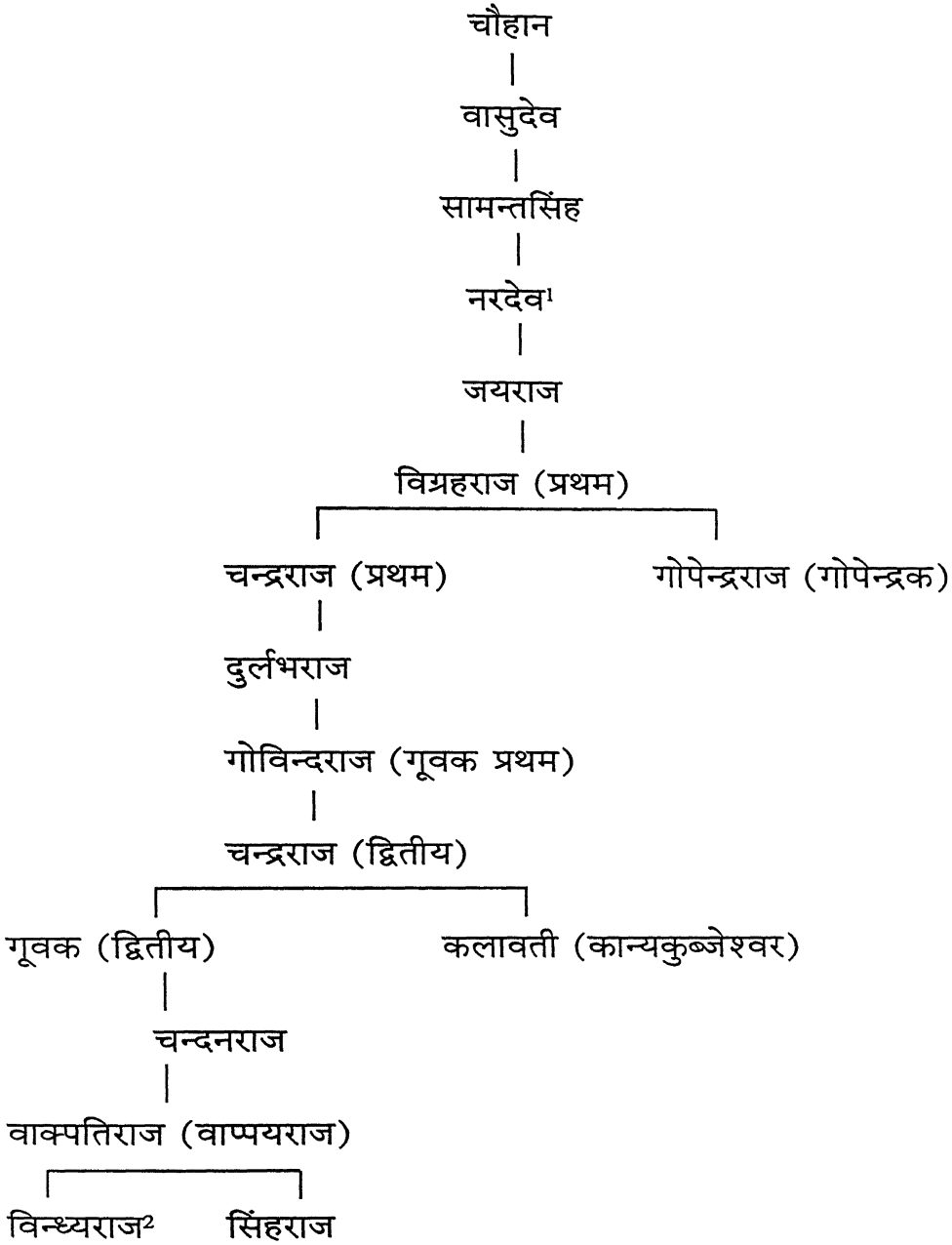
1. पृथ्वीराज विजय काव्य में यह नाम नही मिलता।
2. विन्ध्यराज का नाम केवल बिझौली शिलालेख मे प्राप्त होता है सिहराज के साथ उसका सम्बन्ध निश्चित नही है।
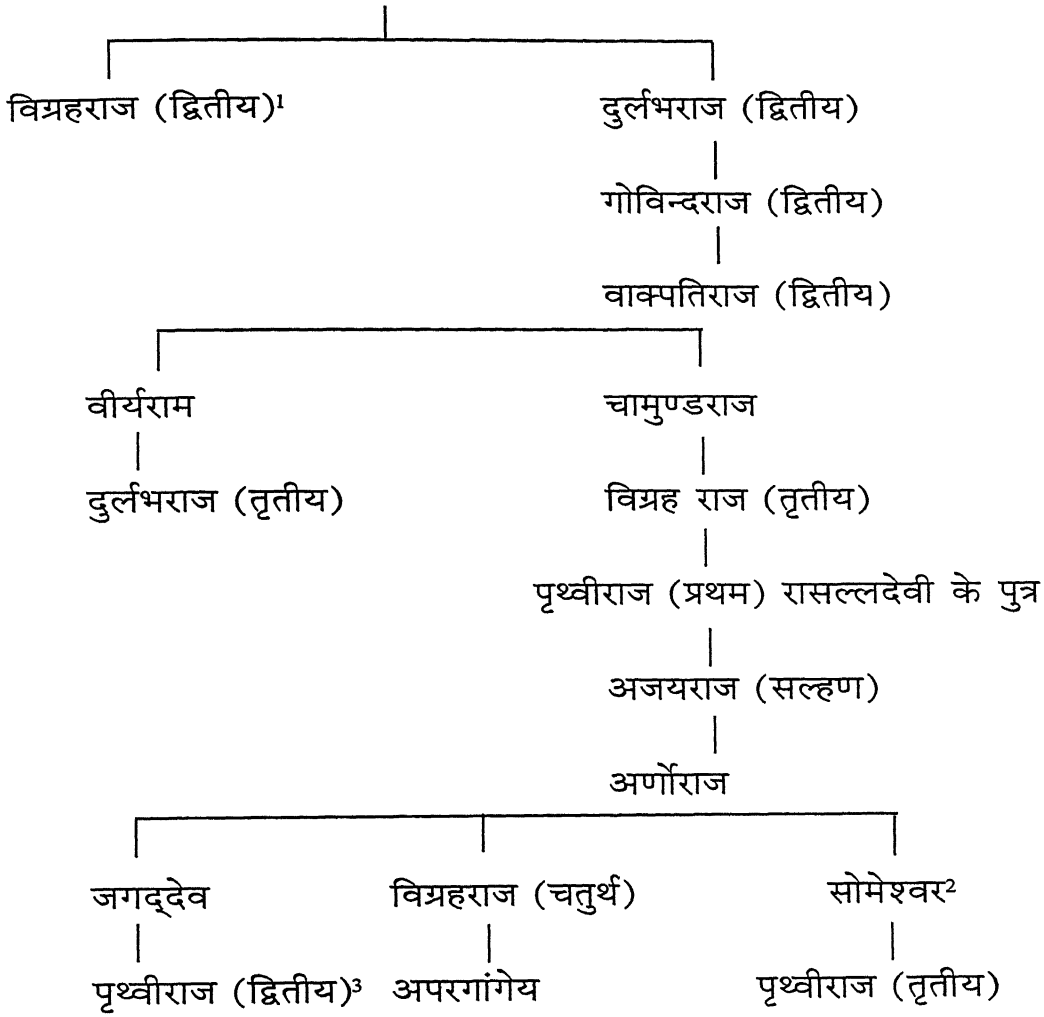
नयचन्द्र सूरि रचित हम्मीर महाकाव्य में पृथ्वीराज तृतीय का वर्णन **विझौली शिलालेख** की अपेक्षा कुछ विलक्षण प्रतीत होता है। इसके अनुसार सहाबदीन (सहाबुद्दीन गोरी) के आक्रमण से भयभीत पश्चिम प्रान्तीय राजा गोपालचन्द्र के पुत्र चन्द्रराज के नेतृत्व में पृथ्वीराज के समीप अपनी रक्षा के लिए गये।[4] पृथ्वीराज ने सहाबदीन का विनाश करने केलिए प्रतिज्ञा किया तथा सेना के साथ उसके ऊपर आक्रमण किया। पृथ्वीराज ने

1. उसके चन्द्रराज और गोविन्दराज नामक दो भाई थे। यह हर्षशिलालेख से ज्ञात होता है।
2. यह अपरगांगेय को पराजित करके राजा हुए थे।
3 पृथ्वीराज द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् ये राजपद के सुशोभित किये थे।
4. हम्मीर महाकाव्य—3/1-13

द्वन्द्व युद्ध के पश्चात् सहाबदीन को पकड़ा।[1] अनेक प्रकार से चौहान नरेश पृथ्वीराज ने सहाबदीन को सात बार युद्ध में पराजित किया और उसके पश्चात् मुक्त किया। अष्टम् बार यवनराज सहाबदीन ने विशाल सेना के साथ दिल्ली पर आक्रमण करके अपने आधीन किया।

उसके साथ अनेक बार युद्ध में विजयी पृथ्वीराज ने गर्व के कारण उसको (सहाबदीन) तृण तुल्य समझा। अतः थोड़े सैनिकों के साथ युद्ध के लिए शकराज के सम्मुख आये।[2]

सहाबदीन ने युद्ध के आरम्भ होने से पूर्व ही धन आदि देकर पृथ्वीराज के अश्वपाल तथा तौर्यिक को अपने अनुकूल कर लिया था।[3] हत्यारे सहाबदीन ने अचानक प्रातः काल से पूर्व ही पृथ्वीराज के शिविर पर विशाल सेना के साथ आक्रमण कर दिया।[4] शकराज का शुभ चिन्तक अश्वपाल युद्ध के लिए पृथ्वीराज की अश्वारोहण के लिए अश्व दिया। वह अश्व केवल नृत्य ही जानता था, युद्ध कला को बिल्कुल नही। अतः पूर्व संकेत के अनुसार पृथ्वीराज का तौर्यिक मृदंग, नगाड़ा आदि वाद्यों को जब बजाया तब यह घोड़ा मयूर की तरह नृत्य करना शुरू कर दिया।[5]

---

1 हम्मीर महाकाव्य—3/15-43

2. रणे मयाऽसो शतशो जितोऽपि कि चापलं बाल इषातनोति।
वहन्नहंकारमिति क्षितीशः प्रचेलिवा स्तुच्छप्रिच्छदो ऽपि।।

हम्मीर महाकाव्य—3/51-52

3 ततो निशीथे निभृ तरन्धकारे सम्प्रेषितः प्रत्ययितैः शकेश·।
अबीभिदत् पुष्कल निषृकदानैरस्तस्याश्वपाल सह तौर्यकैः स.।।

हम्मीर महाकाव्य—3/54

4 हम्मीर महाकाव्य—3/56

5 हम्मीर महाकाव्य—3/58-60

इसको देखकर चौहान नरेश कुछ क्षण तक किकर्तव्यविमूढ़ हो गये।[1] दुखित पृथ्वीराज तब तक अपने आपको चारों तरफ से यवनों से घिरा हुआ पाया। विवश होकर **पृथ्वीराज** उस घोड़े से भूमि पर उतर गये। उन्होंने युद्ध में विलक्षण शौर्य का प्रदर्शन किया परन्तु शक सैनिको ने उन्हें पीछे से पकड़कर कारागार में डाल दिया।[2]

इसके पश्चात् गौडवंशीय उदयराज ने अपने स्वामी पृथ्वीराज को शकराज द्वारा दिये जाने वाले प्रताड़नाओं को सुना। शकराज से प्रतिकार की इच्छा से शकराज से एक माह तक भयंकर युद्ध किया। कुछ दिनों के पश्चात् कृतघ्न सहाबदीन ने पृथ्वीराज को दुर्गके भीतर लाकर कठोर हृदय से फाड़ डाला। इस प्रकार चौहान कुल के तिलक स्वरूप पृथ्वीराज शाश्वत शिवपद को प्राप्त हुए।[3]

राजा पृथ्वीराज के इस प्रकार मृत्यु को सुनकर गौड़कुल भूषण उदयराज का हृदय अत्यन्त दुखित हुआ। उदयराज ने यथाशक्ति शकराज से युद्ध करते हुए वीर गति को प्राप्त हुआ।[4]

पृथ्वीराज विषयक यह वर्णन कितना ऐतिहासिक है यह आसानी से नहीं कहा जा सकता है। सम्भवतः चन्द्रराज कोई ऐतिहासिक पुरुष थे। यह भी सम्भावना की जाती है कि यह कुरुक्षेत्र के समीपस्थ किसी प्रदेश के राजा रहे होंगे। **पृथ्वीराज रासो** नामक ग्रन्थ में चन्द्र पुण्डीर नामक सामन्त का

---

1. भज स्थिरत्वं व्रज मा विषादम् इत्युक्तिभाजो यवनाजवेन।
   किकार्यतामूढममं तथास्थमवेष्टयन् द्राकू चटका व्हवाहिम् (ममुं)।।
   हम्मीर महाकाव्य—3/61
2. हम्मीर महाकाव्य—3/62-64
3. हम्मीर महाकाव्य—3/71-72
4. हम्मीर महाकाव्य—3/73

वर्णन प्राप्त होता है। सम्भवतः यह गोपालचन्द्र का पुत्र चन्द्रराज ही था। पौराणिक वृत्तान्तों में यवनों का दो बार युद्ध का वर्णन किया गया है न कि सातों बार के युद्धों का। रासो आदि ग्रन्थों में तो इक्कीस युद्धों का भी वर्णन प्राप्त होता है। इससे प्रतीत होता है कि मुख्यतया सहाबदीन (गोरी) के साथ पृथ्वीराज का दो बार आमने-सामने भयंकर युद्ध हुआ था। माना जाता है कि इसके अतिरिक्त अवसरों पर दोनों पक्ष के और दूसरे राजाओं ने तथा प्रमुख सेना नायकों ने भी युद्ध किया।

इस प्रकार का युद्ध सम्भवतः सीमा प्रान्तीय युद्धों मे साधारण युद्ध था जिसका हिन्दुओं ने अत्यधिक महत्व स्वीकार किया है। पृथ्वीराज के साथ सहाबदीन का अन्तिम युद्ध का वर्णन **कवि जयचन्द्र** ने निम्नलिखित प्रकार से किया है। जो कि पूर्णतयः सत्य प्रतीत होती है—

1. सहाबदीन ने प्रातःकाल से कुछ समय पूर्व ही पृथ्वीराज की शिविर पर आक्रमण किया।[1]
2. पृथ्वीराज युद्ध में मारा नहीं अपितु बन्दी बनाया गया।[2]
3. सम्भवतः सहाबदीन ने पृथ्वीराज के कुछ अधिकारियों को धन आदि देकर अपने अनुकूल कर लिया था।[3] परन्तु **नाटारम्भ** ही पृथ्वीराज की पराजय का प्रमुख कारण है यह कथन कवि की कल्पना शक्ति का मुख्य फल है। पृथ्वीराज की पराजय के अनेक और भी प्रमुख कारण थे।[4] पृथ्वीराज के भाई व उत्तराधिकारी हरिराज के विषय में हम्मीर

---

1 आकाशशेषे तुहिनांशुविम्बे प्रकाशकल्पे तुहिनद्युतौ च।
शकाः समन्तान्निभृतं समेत्य पृथ्वीपतीये शिविरे निपंतुः।।

हम्मीर महाकाव्य—3/56

2 हम्मीर महाकाव्य—3/64 तथा 3/72

3 हम्मीर महाकाव्य—3/58, 59

4 'प्राचीन चौहान राजवंश'—लेखक डॉ0 दशरथ शर्मा

महाकाव्य में विशेष रूप से ये तथ्य उल्लिखित हैं—

1. हरिराज[1] ने अपना अधिकांश समय गुर्जर नरेश द्वारा दी गयी गणिकाओं के साथ विहार करने में व्यतीत किया।

2. शकराज[2] के आक्रमण के समय अग्नि में प्रविष्ट हो गये। ऐतिहासिक दृष्टि इन दोनों का परीक्षण करने पर ज्ञात होता है कि ये तथ्य सत्य है। यद्यपि प्रथम तथ्य के विषय में कोई प्रमाण उपलब्ध नही होता तथापि यह असम्भव नहीं प्रतीत होता है। पृथ्वीराज स्वयं विलास प्रिय था। अतः उसका अनुज यदि अत्यन्त विलास प्रिय हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। **अजयमेरु दुर्गके** रक्षकों की अग्नि मे मृत्यु की कथा तात्कालिक **ताजुलमासिरनामक** ग्रन्थ में प्राप्त होती है

हम्मीर महाकाव्य में राजा हरिराज के वर्णन के पश्चात् **रणस्तम्भ पुर** राज्य की कथा आरम्भ होती है। इस महाकाव्य में हम्मीरदेव के पूर्वज गोविन्ददेव से आरम्भ करके हम्मीर के पिता जैत्रसिंह तक के सभी राजाओं का विवेचन प्राप्त होता है—

रणस्तम्भपुर में पृथ्वीराज के पुत्रगोविन्द ने राज्य किया।[3] गोविन्द के उत्तराधिकारी वाल्लण थे। वाल्लण के दो पुत्र हुए—प्रहलाद तथा वाग्भट्ट। वाल्लण ने प्रहलाद को राज्य तथा वाग्भट्ट को आमात्यपद दिया।[4] एक बार शिकार खेलते हुए प्रहलाद शेर को मारते समय स्वयं घायल हो गये। वह

---

1 हम्मीर महाकाव्य—4/5-12

2. सान्तः पुरपुरन्ध्रीक स्ततो सौ ज्वलेने विशत्।
भाविनी यादृशी कीर्तिमतिः स्यात्तादृशी नृणाम्।।

हम्मीर महाकाव्य—4/19

3 हम्मीर महाकाव्य—4/23-31

4 हम्मीर महाकाव्य—4/32-41

अपने को असाध्य समझ कर राज्यपद अपने पुत्र **वीरनारायण** को दिये, और **वाग्भट्ट** को उसका संरक्षक नियुक्त किया।[1] युवा राजा वीरनारायण **आम्रपुर** के कुत्सवाह के **पुत्री** के साथ विवाह के लिए (आमेर) आम्रपुर गये। किन्तु अचानक शकराज जलालदीन के पुनः वापस **रणस्तम्भपुर** आ गये। जब जलालदीन बल से रणस्तम्भपुर अपने अधीन नहीं कर सका तब कूटनीति करके उसने वीर नारायण के पास मैत्री प्रस्ताव भेजकर मिलने के लिए उसे दिल्ली बुलाया।[2] वाग्भट्ट के मना करने पर भी वीर नारायण शकराज से मिलने दिल्ली गया।[3] धूर्तमति शकराज जलालदीन पहले तो अत्यन्त उल्लासपूर्वक वीर नारायण का स्वागत किया फिर दूसरे दिन उसे विष देकर मार डाला।[4]

वाग्भट्ट वीर नारायण के द्वारा तिरस्कृत होकर **मालवदेश** चला गया। अतः इस कारण आसानी से रणस्तम्भपुर यवनों के हाथ मे चला गया। मालवनरेश शकराज के इशारे पर वाग्भट्ट को मारने का प्रयास किया। किन्तु वाग्भट्ट इस रहस्य को जानकर तुरन्त मालव नरेश को मारकर उसका राज्य अपने अधीन कर लिया। शकराज के ऊपर षर्परेश का आक्रमण सुनकर वाग्भट्ट भी अपने अनुकूल समय जानकर रणस्तम्भपुर पर आक्रमण कर दिया। भूख आदि से व्याकुल होकर यवन तीन माह के पश्चात् दुर्ग छोड़कर भाग गये। वाग्भट्ट रणस्तम्भपुर का राजा हुआ। उसने 12 वर्षों तक वहाँ राज्य किया।[5] वाग्भट्ट के पश्चात् उसका पुत्र **जैत्रसिंह** राजा बना।[6] वीरों में

---

1 हम्मीर महाकाव्य—4/43-78

2 हम्मीर महाकाव्य—4/84-90

3 हम्मीर महाकाव्य—4/93-101

4. हम्मीर महाकाव्य—4/102-104

5 हम्मीर महाकाव्य—4/107-130

6. तन्नन्दनो जगन्नेत्रानन्दनश्चन्दनद्रुवत्।
जैत्रप्रतापः श्रीजैत्रसिहोऽभूद् भूमिवल्लभः।।

हम्मीर महाकाव्य—4/131

अग्रणी **हम्मीर देव** उसी राजा की प्रिय रानी **हीरादेवी** का पुत्र था।[1] राजा **जैत्रसिंह** के इसके अतिरिक्त दो पुत्र थे। उनमें एक का नाम **सुरत्राण** तथा दूसरे का नाम **वीरम** था।[2]

राजकुमार हम्मीरदेव को सभी प्रकार से राज्य योग्य मानकर राजा जैत्रसिह ने उनको राज्य दिया। हम्मीर देव जैत्रसिंह के ज्येष्ठ पुत्र नहीं थे। इसलिए पिता के द्वारा दिये गये राज्य को सादर ग्रहण करने की उनकी इच्छा नही थी। किन्तु जब राजा ने स्वप्न के विषय मे बताया कि स्वप्न मे भगवान विष्णु ने ऐसा करने का आदेश दिया है तब जबरदस्ती हम्मीरदेव ने पिता के आदेश को अंगीकार किया।[3] 1340 विक्रम संवत्, माघ मास मे शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को रविवार के दिन शुभ मुहूर्त में पुण्य नक्षत्र में वृश्चिक लग्न में वीरवर **हम्मीरदेव** का राज्याभिषेक हुआ।

राजा जैत्रसिंह रोग के कारण मृत्यु समीप जानकर स्नेह की अधिकता के कारण राजा हम्मीर देव को राज्य शिक्षा दिया। **हम्मीर महाकाव्य** में प्रदत्त शिक्षाओं[4] का आज भी सभी शासकों, जननायकों के लिए बहुत उपयोगी है।

उसके पश्चात् राजा जैत्रसिंह स्वात्महित की इच्छा से **चर्मण्वती नदी**

---

1 हम्मीर महाकाव्य—4/138-148

2 हम्मीरादितरावपि क्षितिपत्ते जैत्रस्य पित्र्यानुजौ,
जज्ञातैऽगरूहौ गुहाविव जगज्जैत्रप्रतापोदयौ।
आद्योऽभादनयोर्नयोदयदलंद्वल्लीवसन्तः सुर,
त्राणोऽन्यः परवीरदारणरणारम्भ प्रभो वीरमः।।

हम्मीर महाकाव्य—4/159

3. ज्येष्ठे तनूजे सति राज्यलक्ष्मीमर्देया कदाचिन्न किलेतरस्मै।
जानन्नपीत्थं नयवर्त्मसंस्थां महयं कथं दित्सतितामधीशः।।

हम्मीर महाकाव्य—8/53-55

4 हम्मीर महाकाव्य—8/73-105

के तट पर स्थित श्री **आश्रम** नामक[1] पत्तन को चले गये।[2] किन्तु दुर्भाग्य से मार्ग में ही **पल्ली** नामक ग्राम में राजा की मृत्यु हो गयी।[3]

पूज्य पिता की अचानक इस प्रकार की मृत्यु को सुनकर हम्मीर देव दुःख से विह्वल हो गये। परन्तु **बीजादित्य** आदि विद्वानों के कठिन प्रयास से किसी प्रकार हम्मीर आश्वस्त हुए और धैर्य धारण किये।[4]

तात्कालिक ऐतिहासिक ग्रन्थों एवं शिलालेखों के तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि **हम्मीर महाकाव्य** में वर्णित घटनाएं अधिकांशतः सत्य है। राजा गोविन्द ने यवनों की अधीनता स्वीकार कर अनेक वर्षों तक राज्य किया। उसके पुत्र वाल्लण ने **शम्सुद्दीन अल्मतशाह** नामक यवन राजा की आधीनता स्वीकार किया था। शमसुद्दीन ने 1226 ई0 में रणस्तम्भपुर दुर्ग को विजित किया था। माना जाता है कि यह ही नयचन्द्र द्वारा वर्णित जल्लादीन था।

अधिकांशतः लोग यह सम्भावना करते हैं कि दुर्ग को स्वाधीन करने में शकराज ने छल नीति का प्रयोग किया होगा। वाग्भट्ट ने जिस मालव नरेश का वध किया था वह सम्भवतः देवपाल ही रहा होगा। 1291 विक्रम संवत् के पश्चात् उसका कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है, किन्तु वाग्भट्ट ने युद्ध में उसकेसम्पूर्ण राज्य को अपने अधीन कर लिया था यह कथन निश्चित रूप से अतिशयोक्तिपूर्ण है। मालवदेश में प्रायः परमारवंशीय राजाओं का

---

1 सुर्जनचरित मे इस तीर्थ का नाम पत्तन लिखा है न कि श्री आश्रम।

2 हम्मीर महाकाव्य—8/106-107

3 इत्थं सहैतान् विसृजन्नवाप्य पल्लीपुरी यावदसौ नरेशः
लूता विनिर्गत्य पपात तावत् स्वयं च भेजे लघुदेवभूपम्।।

हम्मीर महाकाव्य—8/115

4 हम्मीर महाकाव्य—8/117-124

राज्य था। उस राज्य के किसी अंश को पड़ोसी राजा ने बलपूर्वक अपने अधीन कर लिया होगा। वाग्भट्ट के पुत्र **जैत्रसिंह** ने मालव नरेश जयसिहके साथ युद्ध किया था। यह इतिहासविद् जानते हैं।

रणस्तम्भपुर की कथा प्रायः सत्य प्रतीत होती है। महाकवि नयचन्द्र ने पर्प्पर[1] शब्द का अनेक बार मुगलों के लिए प्रयोग किया है।

1290 विक्रम सम्वत् में मुगल तर्क भारत में निश्चित रूप से आ गये थे किन्तु रणस्तम्भपुर दुर्ग की विजय का वास्तविक श्रेय स्वयं वाग्भट्ट ने प्राप्त किया। यवन इतिहासज्ञ भी स्वीकार करते हैं कि रजिया के राज्यारम्भ मे शत्रुओं से चारों तरफ से घिर जाने पर विवश होकर यवनो ने **रणस्तम्भपुर** का परित्याग किया था। इस महाकाव्य में जैत्रसिंह के विषय में वर्णित वृत्तान्त का इतिहास से थोड़ी भी समानता नहीं है। जैत्र सिह के द्वारा हम्मीर को प्रदान की गयी राज शिक्षा का विस्तार से वर्णन में महाकवि की कल्पना का प्रभाव दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार हम्मीर महाकाव्य के अवशिष्ट छः सर्गो में स्वाभिमानी **हम्मीरदेव** के विषय में विस्तार से वर्णित है। यहाँ कितना अंश ऐतिहासिक है कितना इतिहास विरुद्ध यह प्रतिपादन से पूर्व इन छः सर्गों का पर्यालोचन करना आवश्यक प्रतीत होता है। इसलिए यहाँ उसका विश्लेषण किया जा रहा है।

हम्मीरदेव ने राज्यारोहण के कुछ समय पश्चात् चतुरंगि[2] सेना के साथ

---

1 शके जल्लादीनेस्थ षप्परैभिषेणिते।
वाग्भटोऽपयमिलत् सैन्यं रणस्तम्भोदिद्धीर्षया।।

हम्मीर महाकाव्य—4/109

2. कंचिद् गजाना केचिच्च पत्तीनां केपि वाजिनाम्।
स्थाना केचनावोचन् सैन्ये तस्य प्रभूतताम्।।

हम्मीर महाकाव्य—9/14

दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। उन्होंने **भीमरस** नगर पहुँचकर राजा अर्जुन[1] को पराजित करके अपने आधीन किया। वे **मण्डलकृत (मण्डलगढ़)** दुर्ग से कर लेकर धारा नगरी पहुंचे। वहाँ उन्होंने परमार नरेश भोज को विजितकर **उज्जयिनी** चले गये। उसके पश्चात् **चित्रकूट** (चित्तौड़) पहुँचे। हम्मीर देव इस प्रकार **अर्बुदाचल** पहुँचकर निष्पक्ष भाव से अनेक तीर्थों में स्नान किया। भगवती अर्बुदा के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हुए **वशिष्ठाश्रम** में विश्राम किया। वहाँ **मन्दाकिनी** में स्नान कर भगवान् **अचलेश्वर**[2] की पूजा किया। **अर्बुदेश्वर** को उसने बहुत धन आदि समर्पित किया। इसके पश्चात् **वर्धनपुर** जाकर उसको निर्धन किया। उसके अप्रतिम प्रताप से चंगा नगरी अस्त व्यस्त हो गयी। बाद में **अजयमेरु (अजमेर)** जाकर दुर्लभ पुण्यदायी **पुष्कर** तीर्थ में स्नान किया।

वहाँ इन्होंने भगवान **आदिवाराह**[3] की पूजा किया। इस प्रकार उन्होंने शाकम्भरी को प्रस्थान किया।

हम्मीरदेव उसके पश्चात **महाराष्ट्र** और **खण्डिल्ल** को ध्वस्त किया और **चम्पा नगरी** को कम्पित किया था। **ककराल** के शासक ने भी उसकी आधीनता स्वीकार किया था। इस प्रकार हम्मीरदेव चारों दिशाओ मे विजय प्राप्त कर प्रसन्न मन से **रणस्तम्भपुर** वापस में आये। वहाँ आकर उन्होंने कुछ समय पश्चात पुरोहित **विश्वरूप** के बताने के अनुसार **कोटि यज्ञ किये**[4] वह

1. हम्मीर महाकाव्य—9/16
2. हम्मीर महाकाव्य—9/26-36
3. अजयोपपदं मेरुं मध्येकृत्य एवं कृत्यावित ।
   पुष्कर तीर्थमासाद्य दुष्करं पुष्यमर्जयत।।
   अनर्च भूपस्तदिवराहाख्याधरं हरिभ् ।।
   चित्रं दशावतारोड्पि नयो दाहात्मतां गतः।।

   हम्मीर महाकाव्य 9/41–42

4 हम्मीर महाकाव्य 9/48,76–78

महान कोटियज्ञ का आरम्भ करके और ब्राह्मणों को यथेवः दक्षिणा प्रदान कर पुरोहित की प्रेरणा से एकमास शकराज अल्लावदीन ने अपने अनुज अल्लूखान को रणस्तम्भपुर के विनाश के लिए भेजा।[1] उल्लूखान **वर्णनाशा** नदी के तट पर रुककर वहाँ के लोगों को पीड़ित किया तथा लूटा।[2]

उस समय हम्मीर मौनवृत्त धारण किये थे। अतः शत्रु का प्रतिकार नहीं किये किन्तु उसके आकस्मिक अत्याचार को देखकर सेनानायक **भीमसिंह** प्रधान **धर्मसिंह** से परामर्श कर अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए गये[3] भीमसिंह यवनों को पराजित कर उल्लासपूर्वक लौट रहा था तब धूर्त **उल्लूखान** गुप्तरूप से उसका अनुसरण कर रहा था। **धर्मसिंह** इस कुचक्र को नहीं जान सका। अतः उसने **भीमसिंह** को अकेला छोड़कर शत्रुओं को लूटने से प्राप्त सभी वस्तुओं को लेकर **रणस्तम्भपुर** आ गया।[4] घाटी में प्रवेश के समय प्रसन्न भीमसिंह ने यवनों से छीने गये वाद्ययन्त्र को बजा दिया। यवनों से इसे अपने विजय का संकेत समझा कर एकत्र हो गये[5] अपने सैनिकों को एकत्र देखकर शकराज ने तुरन्त युद्ध का आदेश दिया।[6]

एकाकी भीमसिंह दुर्भाग्य से यवनों के हाथों मारा गया। इसके पश्चात **उल्लूखान दिल्ली** को प्रस्थान किया।

---

1. हम्मीर महाकाव्य 9/100–107
2 भुग्नयन बलमारेण फटातोयं स वासुकैः।
प्रवेष्टुमक्षमो म्यन्तवर्णनाशातहे स्थितः ।।
हम्मीर महाकाव्य—9/108
3. हम्मीर महाकाव्य—9/109-111
4 हम्मीर माकाव्य—9/142-144
5 हम्मीर महाकाव्य 9/145–147
6. मिलितं स्वबल वीक्ष्य शको यौद्धुमढौकत।
ववले भीमसिंहोऽपि तादृशाः किमु कातराः।।
हम्मीर महाकाव्य 9/148

इस प्रकार **धर्मसिंह भीमसिंह** को पीछे छोड़कर अपने शिविर मे आ गया। पूर्णमौनव्रत में स्थित हम्मीरदेव ने धर्मसिंह को ही भीमसिंह समझकर उन्हें ही बुलवाया। भीम सिंह को छोड़कर आ गये धर्मसिंह को देखकर राजा अत्यन्त क्रोधित हो गये। राजा बोले कि तुमने बलशाली शकराज को नही देखा इसलिए उसे अन्धा बना दिया। युद्धभूमि से भीमसिंह को अकेला छोड़कर नपुसंकों की तरह पलायन किया इसलिये तुम्हे नपुंसक ही बनाया जाय।[1] इसके पश्चात धर्मसिंह का पद खड्गधारी भोज को प्रदान[2] किया और धर्मसिंह को देश से निष्कासित कर दिया।[3] किन्तु भोज यौग्य वित्तसचिव नहीं थे।

वह राजा को विपुल धन तथा घोड़े प्रदान करने में समर्थ नहीं हुआ। इस कारण धर्मसिंह की शिष्या नर्तकी **धारादेवी** के कहने से धर्मसिंह को पुनः राज्यमन्त्रिपद पर राजा ने प्रतिष्ठापित किया।[4] उसने लोगों से अनेक प्रकार से कर लेकर राजकोष को परिपूर्ण किया। इससे राजा तो प्रसन्त हो गया परन्तु जनता असन्तुष्ट हो गयी[5]। उसने भोज पर मिथ्या आरोप लगाकर राजा को उसके विरुद्ध कर दिया। हम्मीर ने भोज का सम्पूर्ण धन बलपूर्वक छीन लिया[6] राजा का हमेशा हित कने के बाद भी। सजा के द्वारा भोज तिरस्कृत हुए और अत्यन्त दुखित हुए। अन्त में वह **काशीयात्रा** के बहाने

---

1 हम्मीर महाकाव्य 9/151–153

2 पण्डोविर्दुखतत्स्य राज्ञोऽभूदनुजो जयी।
भोज देवामिधः खड्गग्रहित्यपरनाममाक् ।।
हम्मीर महाकाव्य—9/154

3 धर्मसिंह पदं तस्मै तुदतोऽथ प्रददे तपः।
तं च निर्वासयन देशादमुनैव न्याषिध्यत।।

4. हम्मीर महाकाव्य 9/156–162

5. हम्मीर महाकाव्य 9/167–170

6 हम्मीर महाकाव्य 9/174–177

अपने भाई **पीथसिंह** के साथ **रणस्तम्भपुर** छोड़ दिये। हम्मीर ने प्रसन्न मन से दण्डनायक का पद रतिपाल को दे दिया।[1]

कारण के बिना भी राजा ने मुझे इस प्रकार पीड़ित किया यह सोंचकर भोज अत्यन्त व्यक्ति हुये। उसने विचार किया कि अपमानित होकर दूसरे लोग क्षमा नहीं करते[2]। इसलिये प्रतिकार की इच्छा से वह अपने भाई **पीथम सिंह** से पूँछकर यवनेश **अल्लावदीन** से मिलने के लिये **योमिनीपुर** (दिल्ली) को प्रस्थान किये पूर्व में हम्मीर के विश्वास पात्र रह चुके और वर्तमान में उसके द्वारा तिरस्कृत भोज के आगमन से अल्लावदीन अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने भोज का स्वागत किया। यवनराज ने भोज को छोटा राज्य भी समर्पित किया[3] हम्मीर को युद्ध में किस तरह जीत सकते है यह शकराज ने जानने की इच्छा से भोज से कहा कि वीर **हम्मीर देव** को आसानी से कभी भी जीता नही जा सकता है।[4]

भोज ने विचार करके कहा कि इस समय दण्डाधिकारी धर्मसिंह के अत्याचार से वहाँ की जनता अत्यन्त खिन्न है। नई फसल कटने का समय अत्यन्त निकट है। अतः तुरन्त **रणस्तम्भ पुर** पर आक्रमण कीजिए। जनता का मन धान काटने आदि अपनी जीविका के साधन को छोड़कर युद्ध में तत्पर नही होगा[5] इसलिए शीघ्र ही हम्मीर के ऊपर आक्रमण करने से विजय

---

1 हम्मीर महाकाव्य 9/178

2 हम्मीर महाकाव्य 10/4 अपमानपरेऽपि यो नरे शममेव प्रयतो बलम्बते।
अपि शूकशिंखा ततोवरं कथयत्यंध्रमसौ तदाहता।।

3. हम्मीर महाकाव्य 10/9 – 11

4 हम्मीर महाकाव्य 10/16–28

5. तदयुं जिगीषसि यदीशः सर्वथा त्वस्या तदा प्रवितर प्रयाणकम्।
पदमुष्य नीवृदधुना नवोल्लसत्सुमनः प्ररोहदूरितीकृताव निः।।
ननु तेषु मंक्ष्वपि कथावशेषतां गमितेषु भूप, (य) भवदीयसैनिकै·।
जहतिप्रजा अमुमिता निराशतां गतनेत्रचण्डत रदण्डनात् पुरा।।
हम्मीर महाकाव्य 10/20-30

प्राप्त कर सकते है।

इतना सुनकर **अल्लावदीन** ने तुरन्त उल्लूखान को विशाल सेना के साथ रणस्तम्भपुर के ऊपर आक्रमण के लिए भेजा। उल्लूखान सैनिकों के साथ **हिन्दूवाट** पहुँचा। हम्मीर के गुप्तचरों ने इसकी सूचना हम्मीर को दी।[1]

वीरमदेव, रतिपाल जाजदेव, रणभल्ल महिमासाहि आदि अद्वितीय वीरो नें उल्लूखान के शिविर पर तुरन्त आक्रमण किया।[2]

इस प्रकार यवनों के आक्रमण से पूर्व ही क्षत्रियवीरों में युद्ध आरम्भ कर दिया। यवनसैनिक पराजित होकर भाग खड़े हुए[3] कुछ समय बाद महिमासाहि और उसके भाई ने **आगरा** राज्य के ऊपर आक्रमण किया। भोज के भाई को और उसके परिवार के सदस्यों को बन्दी बनाकर **रणस्तम्भपुर** ले आये[4] इन सभी को सुनकर और जानकर क्रोधित अल्लावदीन ने शीघ्र ही हम्मीर के विनाश की प्रतिज्ञा किया।[5]

अल्लावदीन ने क्रोध के कारण **अंग, वंग, कलिंग, पांचाल** आदि राज्यो के राजाओं को बुलाकर **उल्लूखान** व **निसुरतखान** की अध्यक्षता मे **हम्मीर** को पराजित करने के लिए भेजा। उल्लूखान व निसुरतखान दूनें उत्साह के साथ हम्मीर को विजित करने के लिए प्रस्थान किया। किन्तु पर्वत की घाटी में सेना का प्रवेश आसान नही है यह पूर्व के अनुभव का स्मरण कर उल्लूखान निसुरतखान से बोला कि हम्मीर के समीप सन्धि के लिए **मोल्हण** को भेजना चाहिए। जब तक यह सन्धि प्रस्ताव प्रस्तुत करेगा। तब

---

1. हम्मीर महाकाव्य 10/31–33
2 हम्मीर महाकाव्य 10/34–44
3 हम्मीर महाकाव्य 10/55–58
4. हम्मीर महाकाव्य 10/65–68
5 हम्मीर महाकाव्य 10/80–87

तक हमारे सैनिक पर्वत की घाटी में आसानी से प्रवेश कर जायेंगे। इस प्रकार निसुरतखान की अनुमति लेकर वह मोल्हण को ठीक तरह से समझाकर सन्धिप्रस्ताव के साथ हम्मीर के पास भेजा। दूसरी तरफ **हम्मीरदेव** के सैनिकों नें विचार किया कि पर्वत की घाटी में प्रवेश के पश्चात यवन सैनिकों को आसानी से मारा जा सकता है। इस कारण उन्होंने यवनों के पर्वत की घाटी में प्रवेश के समय कोई विरोध प्रदर्शित नहीं किया। यवन सैनिक पर्वत की घाटी में उतर कर श्री मण्डप जैत्रसर आदि स्थानो मे अपना शिविर स्थापित किया।

मोल्हण ने रणस्तम्भपुर पहुँचकर हम्मीर के पास जाकर उल्लूखान का सन्देश सुनाया कि

हम्मीर, राज्य यदि भोक्तुमीही तत स्वर्ण
लक्षं चतुरो गजेन्द्रान
अश्वो खानां त्रिशती सुतां च दत्वा किरीटीकुरु नो निदेशम
इदं विभुक्तं यदि वापरन्तु तदास्मदाज्ञा प्रविलोपिनो ये।
श्राग मुदगलांस्तांश्चतुरोऽपि दत्वा क्रोडीकृतां क्रीडय राज्य लक्ष्मीमं ।।[1]

स्वाभिमानी हम्मीर ने उसके सन्देश का तिरस्कार कर वीरसैनिकों को अपने दुर्ग की रक्षा करने का आदेश दिया। पवन सैनिक तीन महीनें तक वहाँ रुक कर युद्ध किये। एक दिन एक गोलकास्त्र का टुकड़ा निसुरत खान के शिर पर गिरा। उसके प्रहार से निसुरत खान मारा गया। उल्लूखान उसके मृत शरीर को दिल्ली भेजा तथा अपनी खराब स्थिति से भी अवगत कराया। यह सुनकर क्रोध और शोक से व्याकुल होकर अल्लावदीन स्वयं हम्मीर से युद्ध के लिये प्रस्थान किया।[2]

---

1 हम्मीर महाकाव्य 11/60–61

2 हम्मीर महाकाव्य 11/100 –103

शकपति अल्लावदीन के आगमन को सुनकर हम्मीर देव उसके अपमान की इच्छा से दुर्ग के ऊपर सूप बंधवाया। अल्लावदीन उनको देखकर आश्चर्य चकित हुआ तथा संकेत में हम्मीरदेव से पूछा[1]।

हम्मीर देव ने उत्तर दिया कि जिस प्रकार सूप संचय में भार नही होता है। उसी प्रकार तुम्हारा आगमन मेरे लिए किसी प्रकार का चिन्ताकारक नहीं है।[2] हम्मीर की क्रोधोत्पादक व्यङ्गय मयी वाणी को सुनकर भी सन्धिप्रिय शकराज उससे बोला कि राजा हम्मीर मैं तुमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। अतः वाञ्छित वस्तु माँगो तब मानी हम्मीर ने केवल इतना कहा कि यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो तो मुझसे दो दिन तक युद्ध करो। मै इसके अतिरिक्त कोई वस्तु नही चाहता।[3]

इस प्रकार प्रथम दिन उसके कथनानुसार दोनो सेनाओं के मध्य भयंकर युद्ध हुआ।[4] उस दिन युद्ध में बहुत से सैनिक मारे गये। दूसरे दिन भी प्रातः काल से ही अपने राजा की आज्ञा के अनुसार दोनो पक्ष की सेनाये युद्ध भूमि में उतरीं नयचन्द्र ने वर्णन किया है कि 85 हजार यवन सैनिक इस युद्ध में मारे गये।[4] तब कुछ दिनो तक दोनों पक्षों युद्ध रुक गया।

एक दिन राजा हम्मीर ने नृत्य गीत आदि का आयोजन करवाया। उसमें

---

1. हम्मीर महाकाव्य 12/1-3
2 म्लेच्छावनीदयित चारु चारुभो, चक्रे त्वया गमदमुत्र यद् भवान।
   पूर्णेनसि प्रचुरवस्तु संचयैर्भाराय किं भवति शूर्पसंचयः।।

   हम्मीर महाकाव्य 12/4
3. हम्मीर महाकाव्य 12/5-6
4. हम्मीर महाकाव्य 12/7-79
4. एतास्मिन समरे वीरा यवनानां महौ जसः।
   पंचाशीतिसरमाणि यमावासमासिषुः।।

   हम्मीर महाकाव्य 12/88

सभी सामन्त आदि लोग सम्मिलित हुए। नर्तकियों में सबसे प्रसिद्ध नर्तकी **धारा देवी** नृत्य करना शुरू की।[1] नृत्य करते समय उसके अपमान युक्त चेष्टा से अत्यन्त क्रोधित होकर **अल्लावदीन** ने उसे मारने का आदेश दिया। उड्डानसिंह नामक धनुर्धर ने बाण से धारादेवी को निशाना बनाया। बाण के प्रहार से वह पर्वत की उपत्यका मे गिर गयी।[2] वीर **महिमासाहि** धारा देवी की इस प्रकार गति देखकर अत्यन्त क्रोधित हुए और तुरन्त ही अल्लावदीन को मारना चाहा।[3] किन्तु हम्मीर ने कहा कि आद अल्लावदीन मर जायेगा तो मैं किसके साथ युद्ध करूँगा ? अतः तुम केवल **उड्डान सिंह** को ही मारो[4] महिमासाहि ने वैसा ही किया उड्डान सिंह मारा गया[5] उड्डान सिंह की मृत्यु से विस्मित होकर शकेश जैत्रसर छोड़कर उसके पीछे अपना शिविर स्थापित किया।[6]

अनेक अपमानों से अत्यन्त खिन्न शकराज ने पर्वत की खाई को मिट्टी, घास, उपलो आदि से भरवा दिया। कुछ महीनो मे यह कार्य पूर्ण हो गया तब वह पुनः युद्ध के लिये उपस्थित हुआ।[7] **हम्मीर** के गुप्तचरों ने खाई आदि के विषय में सब कुछ जानकर खाई में अग्निगोलस्त्र फेका तथा सुरंग में गर्म लाख का तेल डलवा दिया[8]। खाई में गुप्त रूप से छिपे यवन सैनिक

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/1-17
2. हम्मीर महाकाव्य 13/27–32
3. हम्मीर महाकाव्य 13/33–34
4 नृपो वक्ति हते त्रामा रस्येऽहं केन संगरे।
हित्वा महिमा साहे जहयुड्डानं धनुर्धरम्।।
हम्मीर महाकाव्य—13/36
5 हम्मीर महाकाव्य 13/37
6 हम्मीर महाकाव्य 13/38
7 हम्मीर महाकाव्य 13/39–41
8. विज्ञाय चाहमानास्तत्परिरवां वह्नि गौलकैः।
अदहन् जतु तैलं च सुरंगायां प्रचिक्षिपुः।।
तेन तैलेन पूर्णायां सुरंगायां द्विषद्भटाः।
उद्च्छलन् यथा मीनाः सरस्यां ज्वलदम्मभसि।।
हम्मीर महाकाव्य—13/42–42

जल गये व जो सुरंग में थे वे भी गर्म लाख के तेल से मर गये।[1] इस प्रकार **अल्लावदीन** ने हम्मीर को जीतने के जितने उपाय किये थे वे सभी हम्मीर ने निष्फल कर दिये। धीरे–धीरे ग्रीष्मऋतु बीत गयी व वर्षा ऋतु आ गयी। अल्लावदीन ने किसी प्रकार सन्धि की इच्छा से रतिपाल को बुलवाया। हम्मीर भी कौतूहल वश कुछ विचार कर रतिपाल को वहाँ जाने की अनुभूति प्रदान किया।[2]

कूटनीतिज्ञ शकराज ने विविध बहुमूल्य वस्तुओं को व सम्मान प्रदान कर रतिपाल को प्रसन्न करके अपने वश में कर लिया उसने रतिपाल से कहा कि मैने अनेक दुर्गों को जीता है तथा विपुल धन अर्जित किया है किन्तु **रणस्तम्भपुर राज्य** को नहीं जीत पाया यह मेरे मन को हमेशा दुखित करता है। मै केवल विजय चाहता हूँ उस राज्य को नहीं चाहता। यह राज्य तुम्हारे अधीन होगा किन्तु कीर्ति की इच्छा से हम्मीर को पराजित करना चाहता हूँ।[3] तुम्हारी सहायता से यह सम्भव हो सकता है। इसके पश्चात रतिपाल को अन्तःपुर में लाकर भोजन करवाया तथा प्रेमपूर्वक अपनी बहन के हाथो से मदिरा भी पिलवाया।[4] शकेन्द्र द्वारा सत्कृत रतिपाल हम्मीर के क्रोध को बढ़ाने के लिए झूठी कल्पना मन में करके हम्मीर से बोला कि– हे राजन अल्लावदीन कहता है—

मूर्ख हम्मीर मुझे अपनी पुत्री नहीं देता है किन्तु मै उसकी स्त्रियो को बलपूर्वक ले आऊँगा।[5]

---

1. हम्मीर महाकाव्य 3/47–48
2. हम्मीर महाकाव्य 13/68–69
3 हम्मीर महाकाव्य 13/71–78
4. अन्तस्तः पुरं नीत्वां शकेश स्तमभोजयत्।
   अपीप्यत हृदभगिन्या च प्रतीतयै मदरिमपि।।
   हम्मीर महाकाव्य—13/81
5 यद्वा मा दादसौ किन्त्वल्लावदीनोऽस्मिनो तदा।
   पुत्रीमयच्छतोऽमुष्य नाददे यदि वल्लभाः।।

हम्मीर महाकाव्य—13/84

रणमल्ल हम्मीर का विश्वसनीय योद्धा था। शकेश के साथ सन्धि वार्ता उसे बिल्कुल पसन्द नहीं थी।[1] अतः धूर्त रतिपाल रणमल्ल व हम्मीर मे परस्पर वैर बढ़ाने की इच्छा से स्वामी हम्मीर से कहा राजन इस समय रणमल्ल किसी कारण से कुछ अप्रसन्न दिखायी पड़ते है। अतः पाँच छः लोगों के साथ जाकर उसे प्रसन्न करिये।[2] **रतिपाल** हम्मीर के भाई **वीरमदेव** के बगल से जब गुजरा तब शराब की दुर्गन्ध से वीरमदेव को पता चल गया कि यह शत्रु से मिल गया है। यद्यपि हम्मीर देव भी इसे जान चुके थे परन्तु रतिपाल के वध से संसार में मेरा अपयश होगा। इसकारण उन्होंने उसे कुछ नहीं कहा।[3]

अन्तःपुर में जब रानियों को यह पता चला कि यवनेश केवल पुत्री ही माँगता है तब उन्होंने राजकुमारी **देवलदेवी** को सिखा कर राजा हम्मीर के पास भेजा। उसने पिता से प्रार्थना किया कि पिता श्री[4] आप मुझे शकराज को प्रदान कर राज्य की रक्षा करे। स्वाभिमानी हम्मीर ने जब अपनी पुत्री के इस प्रकार के वचन को सुना तो ऐसा लगा उसके कान में जलता हुआ आग डाल दिया गया हो।[5] उसने अपनी पुत्री से कहा कि पुत्री जिन पापियो ने तुम्हे शिक्षित कर मेरे पास भेजा है यदि स्त्री वध का भय न होता तो उन छुद्रो की जिह्वा काट डालता। तुम्हारे दान से प्रजा तथा राज्य लाभ की अपेक्षा मुझे

---

1 तत्पंचषै जनैर्युक्तो गत्वा सायं तदालयम।
तं प्रसादय सद्योऽपि किंमात्रोड्सौ शकेश्वरः ।।
हम्मीर महाकाव्य—13/89

2. हम्मीर महाकाव्य—13/70

3. हम्मीर महाकाव्य 13/90–98

4. हम्मीर महाकाव्य 13/106-114

5 हम्मीर महाकाव्य 13/115

मरना ही पसन्द है।[1] इस प्रकार अनेक प्रकार से उसे समझाकर वापस अन्तःपुर में भेज दिया।[2]

दूसरी तरफ रतिपाल रणमल्ल के पास जाकर बोला भाई राजा इस समय तुमसे अत्यन्त क्रुद्ध है अतः तुम्हे मारना चाहते है।

उसकी बातों का रणमल्ल को विश्वास नहीं हुआ तब रतिपाल फिर बोला कि यदि सांयकाल में पाँच छः लोगों के साथ हम्मीर स्वयंमेव आये तब मेरी बातों को सत्य मानना अन्यथा नहीं।[3] इतना कहकर वह अपने घर चला गया। तब शाम को रतिपाल द्वारा बताये अनुसार राजा को आते देखकर रतिपाल की बातों पर विश्वास कर डरा रणमल्ल दुर्ग से उतरकर शत्रु से जा मिला।[4] तभी रतिपाल भी दुर्ग से उतरकर शकराज के अवास में चला गया। उनके उस प्रकार के कार्य को देखकर हम्मीर अत्यन्त दुखी हुये। यह अत्यन्त दुखित मन से कोशपाल जाहड से पूछे कि कोश में कितना अन्न है। जड़बुद्धि जाहड ने सोचा कि यदि कोश में अन्न नहीं है कहता हूँ तो निश्चित रूप से सन्धि होगी। इसलिए उसने कहा कि अन्न नहीं है।[5] हम्मीर यह सुनकर अत्यन्त दुखी हुए। रणमल्ल, रतिपाल के विपरीत आचरण का

---

1. शिक्षायित्वेति पापिन्या त्वमिह प्रेसिता यथा।
   छिनाद्मि रसनां तस्या विभेमि स्त्रीवधान चेत्।।
   त्वछानेन यदाप्स्येत प्राज्यराज्य सुखासिका।
   तत किं न जीवितव्याशा पुत्रकालेय भक्षणः।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/117–118

2 हम्मीर महाकाव्य 13/119–129

3 हम्मीर महाकाव्य 13/130–133

4. अथ दृष्टवा यथादिष्टभायन्त स क्षितीश्वरम्।
   जातप्रतीतिरूतीर्थ दुर्गाद भीत्या मिलद रिपोः।।

   हम्मीर महाकाव्य—13/134

5. हम्मीर महाकाव्य 13/36–14

स्मरण करके विश्वसनीय लोगो के प्रति भी शंकित हो गये।

उसके मन में महिमासाहि आदि मुगलों के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया। अतः दूसरे दिन राजसभा में महिमासाहि को बुलवाया तथा महिमासाहि से बोला महिमासाहि हम सब क्षत्रिय हैं अपनी मातृभूमि के लिए प्राणों का परित्याग करना हमारा कर्तव्य है। परन्तु तुम विदेशी हो। अतः अब तुम्हारा यहाँ रहना उचित नहीं है। तुम जहाँ कहीं भी जाना चाहो बोलो, मैं तुम्हे वहाँ पहुँचाऊँगा।[1]

हृदय से स्वामिभक्त महिमासाह स्वामी हम्मीर के उस प्रकार के अविश्वासोत्पादक वचनों को सुनकर अत्यन्त दुखित हुए। उन्होने अपने आवास आकर परिवार के सभी सदस्यों को तलवार से मार डाला[2]। इसके पश्चात हम्मीर के पास जाकर बोले कि, जाने से पूर्व आपकी भाभी एक बार आपको देखना चाहती है। जिसकी कृपा से आजतक हम सभी आनन्दपूर्वक निवास किये उन महापुरुष को देखे बिना जाने से मुझे अत्यन्त कष्ट होगा।

अतः पश्चाताप संतप्त उन लोगों को अपना दर्शन देकर कृतार्थ करे।[3] महिमा साहि के घर पहुँच कर वहाँ सभी को मृत देखकर राजा मूर्च्छित हो गये। वीरम आदि के प्रयास से मूर्छा समाप्त होने पर राजा महिमासाहि के गले से लगकर विलाप करने लगा।[4] परन्तु अब क्या हो सकता था। होनी को टालने में कौन समर्थ है? राजा मन में विचार करते हुए महिमासाहि से

---

1 हम्मीर महाकाव्य 13/148–15

2 एवमस्तिति जल्पाको महिमारम्येत्यमन्दिरम।
कुतुम्बमसिसात् कृत्वा नृपं गत्वेदमब्रवीत।।

हम्मीर महाकाव्य—13/153

3. हम्मीर महाकाव्य 13/154–161

4. हम्मीर महाकाव्य 13/162–164

बोले—

[1]मत्तो नैवाधमः कोपि त्वत्तो नैवोत्तमः परः।
अधायं मन्दधीस्तादृगीदृक प्रेमीयपि यतु त्वाये।।

वहाँ से वापस आकर हम्मीर कोश को अन्न से परिपूर्ण देखकर जाहड के ऊपर अत्यन्त क्रोधित हुए। अतः राजा ने उसे बार–बार तिरस्कृत किया तथ डाँटा।[2] उन्होंने कोश में स्थित सम्पूर्ण द्रव्य को **पद्मसर** में फेकवा दिया। राजा के आदेश से **वीरमदेव** ने **जाहड** को मार डाला।[5]

थोड़े ही दिनों में परिस्थितियों में महान परिवर्तन हुआ। **रणस्तम्भपुर** की दशा अत्यन्त गम्भीर हो गयी। सब जगह विश्वासघात की भावना देखकर व जनता को भयभीत देखकर **हम्मीर देव** जनता के लिए मुक्ति द्वार खुलवा दिया। अपनी प्राणप्रिय रानियों को अग्नि को प्रवेश करने का आदेश दिया। **रंगदेवी** आदि प्रमुख रानियों ने पुत्री **देवलदेवी** के साथ अग्नि में प्रवेश किया।[4] राजा हम्मीर ने **वीरमदेव** को राज्य देना चाहा परन्तु यह लोकोपवाद के भय से राज्य स्वीकार नहीं किये। उसके पश्चात **हम्मीरदेव** ने **जाजदेव** को राज्य देकर वीरम आदि वीरों के साथ युद्ध के लिए गये। युद्ध भूमि में वीर हम्मीर को आया जानकर **अल्लावदीन** स्वयं युद्धभूमि मे आया। युद्ध में हम्मीर से पूर्व शौर्य प्रदर्शन में वीरमदेव वीरगति को प्राप्त हुए। तब **महिमासाहि** को मूर्च्छित देखकर उन्होंने स्वयं भयंकर युद्ध किया। हम्मीर की युद्ध कला तथा अद्वितीय शौर्य को देखकर यवन सैनिकों के साथ–साथ

---

1 हम्मीर महाकाव्य 13/165
2 हम्मीर महाकाव्य 13/169-170
3 हम्मीर महाकाव्य 13/194–195
4. हम्मीर महाकाव्य 13/173–185

शकराज स्वयं विस्मित हो गया।[1] अन्त में शत्रु के बाण के प्रहार से जर्जर हो जाने पर हम्मीर देव ने सोचा कि शत्रु मुझे जीवित पकड़ेगा। अतः हम्मीर ने स्वयं अपना गला काट कर वीरगति को प्राप्त हो गये।[2]

आकाश मण्डल में सूर्य की भाँति प्रचण्ड प्रताप वाले **हम्मीर** की मृत्यु के पश्चात उसके परम भक्त **जाजदेव** ने दो दिन तक विलक्षण रण कौशल का प्रदर्शन करता हुआ युद्ध किया।[3] एकाकी तथा असहाय होने पर भी मानी जाजदेव ने म्लेच्छों के समझ कभी सिर नहीं नवाया अपितु पैर से ही इशारा किया। तब **अल्लावदीन ने** पूछा कि यदि तुम्हे जीवित छोड़ दू तो तुम मेरे साथ कैसा आचरण करोगे। यह सुनकर **जाजदेव** ने कहा मै वैसा ही आचरण करूँगा। जैसा तुमने **हम्मीरदेव** के साथ किया था।[4]

अन्त में शकराज ने स्वामी को धोखा देने वाले **रतिपाल** के शरीर से खाल निकालने का आदेश प्रदान किया। वस्तुतः स्वामी को धोखा देने वालो के लिए इस प्रकार का दण्ड उचित ही है।

राजा हम्मीर के जीवन वृत्त के विषय में अन्यत्र भी वर्णन मिलता है उनसे **हम्मीर महाकाव्य** में वर्णित कथा की कही समानता तो कहीं असमानता परिलक्षित होती है। इसलिए यहाँ इसी प्रसंग में विचार करते है। यद्यपि महाकवि नयचन्द्र ने हम्मीर की दिग्विजय का अत्यन्त मनोरम वर्णन किया

---

1 हम्मीर महाकाव्य 13/209–225

2. श्री हम्मीरोथ वीर व्रज मुकुटमणिर्म्लेच्छबाण प्रहारैः।
सर्वागेषु प्ररुढैः क्षितितलममितो भवितो भीष्मकर्मा।।
जीवन्तं ग्राहिषुर्मा क्वचिदपि यवना मामिति ध्यातबुद्धिः
कण्ठं छित्वाऽत्मनैव स्वमतति दिवं स्मात्तसूरातिथित्वम्।।

हम्मीर महाकाव्य—13/226

3 हम्मीर महाकाव्य 14/17

4. हम्मीर महाकाव्य 14/20

है किन्तु उसके पूरी तरह से सत्य होने में सन्देह प्रतीत होता है। जिस प्रकार दिग्विजय के समाप्त होने पर हम्मीर ने **कोटियज्ञ** किया था। इसका संकेत हम्मीर के मन्त्री **बैजादित्य** द्वारा 1345 विक्रम संवत में रचित शिलालेख मे भी प्राप्त होता है। उसमें लिखा है कि हम्मीर ने कोटि संख्या मे हवन किया मालव नरेश अर्जुन के पराजय का उल्लेख मिलता है न कि किसी दिग्विजय का।

यह भी सम्भावना किया जाता है कि हम्मीर ने कोई महान दिग्विजय नहीं किया था। अपितु मालव विजय के पश्चात समय–समय पर अन्य प्रदेशों पर विजय प्राप्त किया था। जिनका प्रतिभाधनी कवि ने अपनी कल्पना से एकत्र करके अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन किया।

कविवर **नयचन्द्र** ने अल्लावदीन के अनेक आक्रमणों का वर्णन किया है। उनमे पहले वर्णित दो आक्रमणों का यवन इतिहास ग्रन्थों में वर्णन नही प्राप्त होता है। किन्तु उन आक्रमणों का प्रमुख वृत्त के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध तथा उसका वर्णन क्रम अत्यन्त व्यवस्थित है। इस कारण से यदि उसकी इतिहासज्ञ असत्यता सिद्ध करते है तो यह निरर्थक तथा अश्रद्धाजनक मात्र ही होगा इस प्रकार सम्भावना की जाती है कि भीमसिंह की मृत्यु में केवल **शकवाघ** ही कारण नहीं था। यवन सेनानायकों की अनेक बार इस प्रकार की नीति दृष्टिगत होती है कि शत्रु के आक्रमण के समय ये पहले पृष्ठभाग में अथवा इधर–उधर चले जाते है परन्तु बाद में अचानक शत्रु के ऊपर आक्रमण कर देते है। तराइन में शहाबदीन (मुहम्मदगोरी) ने इसी तरह की ही रणनीति अंगीकार किया था। सम्भवतः अल्लूखान ने भी **भीमसिंह** को मारने के लिए वही चिरपरिचित रणनीति अंगीकृत किया था। इस प्रकार अल्लाबदीन की **रणस्तम्भपुर दुर्ग** के ऊपर आक्रमण यवनों के लिए विशेष कीर्तिकर नही था। इसलिए यवन

इतिहासकारों ने इसका उल्लेख नहीं किया। **अमीर खुसरो उर्दू, फारसी** भाषा का सुप्रसिद्ध कवि था किन्तु उसने भी केवल एक आक्रमण का उल्लेख किया है। किन्तु वस्तुतः चार बार अथवा उससे अधिक बार अल्लाबदीन ने आक्रमण किया था यह विवेचना करने पर ज्ञात होता है।

हम्मीरदेव के अन्तिम दिनों में प्रजा किस–किस प्रकार से दुखित हुयी, और विविध दुर्दशाओं का अनुभव की, किस प्रकार राजा धर्मसिंह के वश मे होकर अनुचित कार्यों को किया आदि, ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण तथ्यों के ज्ञान का अद्वितीय साधन **हम्मीर महाकाव्य** है। इस प्रकार ये ही हम्मीरदेव के पतन के वास्तविक कारण थे किन्तु उनके आन्तरिक पतन का कारण ज्ञात नही हो सका है। यद्यपि खड्गधारी भोज की सत्यता या असत्य को प्रमाणित करने के लिए कोई बाह्य साधन उपलब्ध नही है तथापि उसमे यह कही भी असत्य प्रतीत नही होता है। अल्लावदीन के तृतीय नहीं चतुर्थ आक्रमण के वर्णन की समानता यवन इतिहास कारों के साथ कर सकते हैं। प्रायः उन सभी का वर्णन बराबर दृष्टिगत होता है। निसुरतखान की मृत्यु तथा शकों की पराजय वर्णन जिस प्रकार **हम्मीर महाकाव्य** में प्राप्त होता है उसी प्रकार का ही वर्णन वर्नी आदि के विवेचन में भी देख सकते हैं। चौहान सैनिकों ने जिस प्रकार यवन सैनिकों के सुरंग को जला डाला था उसका वर्णन **खजाइन–उल–फुतूह ग्रन्थ** मे सरलता से देख सकते है।

वेश्या **धारा देवी** की कथा के विषय में कुछ भी नही कह सकते। यद्यपि यह सब जगह असम्भव नहीं प्रतीत होता। स्वामी वञ्चक रतिपाल का हम्मीर के प्रति किये गये षडयन्त्र का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता है किन्तु इस परसन्देह नहीं किया जा सकता क्योंकि अल्लावदीन नें इस प्रकार की कूटनीति का संचालन अवश्य किया होगा। **फरिश्ता** में भी लिखा कि राजा का मन्त्री रणमल्ल अपनी

लघु सेना के साथ यवनेश से जा मिला। **शफराज** ने यह कह कर उन सभी को मार दिया कि यदि ये अपने सत्य आचरण वाले स्वामी को धोखा दे सकते है तो ये कभी किसी के कृतज्ञ नहीं हो सकते। **रतिपाल** भी उन्ही कृतघ्नो में से एक था।

नयचन्द्र ने उल्लेख किया है कि **शकराज अल्लावदीन** ने रतिपाल को सादर अन्तःपुर में लाया तथा उससे हाथ फैलाकर हम्मीर को पराजित करने के लिए याचना किया। परन्तु यह याचना विषयी कथा कवि कल्पना मात्र प्रतीत होती है। अथवा वीर हम्मीर तथा उसके सैनिकों के पराक्रम को देखकर हताश शकराज जिस किसी प्रकार हो सके **हम्मीर देव** को पराजित करने का संकल्प किया एवं विचार किया यदि **रतिपाल** सदृश स्वामिभक्त योद्धा मेरे पक्ष मे आ जाये तो शत्रु के गुप्त स्थान तथा युद्ध नीति आदि के विषय में ठीक से जानकारी प्राप्त कर अजेय होने पर भी हम्मीर को आसानी से पराजित किया जा सकता है। स्वामिभक्त और विश्वत सम्मान आदि से पूजित अधिकारी सामान्य रूप से कहने पर शत्रु के समक्ष अपने स्वामी राजा के रहस्य उद्घाटित नही करता। अतः उसके सदृश कुशल कार्यकर्ता बार–बार विनय करने पर ही वश में किया जा सकता है। माना जाता है कि उसी कूटनीति का सहारा लेकर उसके सम्मुख याचना किया होगा। रानियों का अग्नि में सती होना केवल कवि की कल्पना मात्र नहीं है। पहले जिस प्रकार बंगाल आदि में सती प्रथा प्रचलित थी उसी प्रकार में यह प्रथा सम्यक रूप से **राजस्थान** में प्रचलित थी। उनके मृत्यु के स्मारक चिन्ह के रूप में मन्दिर के रूप में आज भी राजस्थान के गाँव–गाँव और नगर–नगर में दिखायी पड़ते हैं उस समय वीर क्षत्राणियाँ सम्मान की रक्षा, अपने कुल की मातृभूमि की रक्षा करने में नष्ट होने की स्थिति में शत्रु के हाथ में जाने की अपेक्षा मरना ही उचित मानकर अपने को अनेक आभूषणों से सुशोभित कर अग्नि में प्रविष्ट होती थी। अतः इसलिए रानी का अग्नि में प्रवेश

का वर्णन सत्य ही है इस पर सन्देह नही किया जा सकता है। यवन सैनिक ने दूर से उनकी अग्नि चिता को देखकर आश्चर्य चकित हो गये थे। नयचन्द्र ने युद्ध के अन्तिम दिनों में हम्मीर के जिन सहायकों का उल्लेख किया है **अमीर खुसरों** ने उनमें से एक या दो का ही उल्लेख किया है।

स्वामि भक्त वीर शिरोमणि **महिमासाहि** की मृत्यु का **नयचन्द्र** ने विशेष वर्णन नही किया है। उन्होंने अपने महाकाव्य में महिमासाहि द्वारा अल्लावदीन के प्रति दिये गये शूरतापूर्ण उत्तरों का ही उल्लेख किया है। हिन्दू शासक तथा यवन शासक उनका हृदय से सम्मान करते थे। यह रहस्य **तबकाते अकबरी** नामक ग्रन्थ में निम्न लिखित रूप में सुष्पस्ट प्रतीत होता है।

मुहम्मदशाह घायल पड़ा था। सुल्तान की दुष्टि उस पर पड़ी और उसने दयार्द्र होकर कहा–यदि मैं तुम्हें इस भयंकर खतरे से बचा लू और तुम्हारे जख्मों की मरहम पट्टी करवाकर ठीक करवा दूँ तो तुम क्या करोगे और इसके बाद तुम्हारा व्यवहार कैसा होगा? उसने उत्तर दिया यदि मैं घावों से ठीक हो जाऊँ तो मैं तुम्हे मारकर हम्मीरदेव के पुत्र को सिंहासन पर बैठा दूँगा। जो स्वभाव से ही दुष्ट होता है वह किसी के लिए सच्चा नही होता। जो कुघात है वह सदा बुरा ही करता है''।

इस प्रकार की अपमानपूर्ण गर्वोक्ति को सुनकर अत्यन्त क्रोधित अल्लावदीन ने तुरन्त आदेश दिया कि इसे पागल हाथी के पैरों के नीचे फेंक कर मार दिया जाय। उसके मृत्यु के पश्चात जब अल्लावदीन ने शान्त मन से उसकी स्वामिभक्ति शूरता व धीरता के प्रति विचार किया तो महिमासाहि के प्रति किये गये आचरण से उसके हृदय में अत्यन्त कष्ट उत्पन्न हुआ। परन्तु अब उससे क्या लाभ। वह वीर हमारे संसार से बहुत दूर चला गया था। इस कारण अल्लावदीन ने उसके अन्तिम संस्कार में अत्यन्त आदर व शृद्धा प्रकट किया। महाकवि **नयचन्द्र ने**

अपने महाकाव्य में हिन्दूपक्ष से **महिमासाहि** को सादर स्मरण करके तथा उसके प्रति कृतज्ञता प्रदार्शित करके महान कार्य किया है। **हम्मीर महाकाव्य** के अध्ययन से ज्ञात होता कि **रणस्तम्भपुर** के दूर्ग का पतन श्रावण मास की कृष्ण पक्ष की षष्ठी को रविवार के दिन 1358 विक्रम संवत में हुआ किन्तु अमीर खुसरो इस तिथि से दो दिन पूर्व ही दुर्ग के पतन की तिथि स्वीकार किया है। परन्तु यह अन्तर चिन्ता का विशेष विषय नहीं है प्रस्तुत महाकाव्य से ज्ञात होता है कि **हम्मीर** के महान भक्त **जाजदेव ने हम्मीर** की मृत्यु के बाद भी दो दिनतक यवनों के साथ युद्ध किया था। सम्भवतः जाजदेव की मृत्यु के दिन ही **रणस्तम्भपुर दुर्ग** के पतन का दिन स्वीकार किया है।

हम्मीर महाकाव्य में वर्णित राष्ट्रीय भावना

कोई भी उत्कृष्ट कवि सहृदय पाठकों के हृदय में अपने राष्ट्र की भूमि, पर्वत, वन, नदी, संस्कृति-सभ्यता, धर्म, दर्शन आदि का विशेष वर्णन करके राष्ट्रीय भावना को जगाता है। सुकवि अपनी रचना से हमेशा लोगों को प्रेरित करता है कि राष्ट्र की, मातृभूमि की रक्षा और विकास न केवल वाणी कर्म एवं मन से अपितु प्राणों से भी प्रयत्न करना चाहिए। प्रायः कवियो ने अपने काव्यों मे राष्ट्रीय भावना के प्रकाशन में निम्नांकित तथ्यो का आश्रय लिया है।

1. कवियों ने भारत देश के भौगोलिक स्थिति के प्रदर्शन करने में सम्यक रूप से ध्यान दिया है।
2. देश भूमि तथा मातृभावना का सम्मान किया है।
3. भारत के प्राकृतिक सम्पत्तियों गिरि, वन,नदी आदि के वर्णन मे उदात्त भावना का प्रदर्शन किया है।
4. भारत की सम्यता और संस्कृति के प्रति अतिशय अनुराग का प्रदर्शन किया है।
5. भारतीय साहित्य, धर्म, दर्शन, और समाज के वर्णन मे आदर का प्रदर्शन किया है।
6. भारत देश की रक्षा, कल्याण तथा सम्यक् विकास के लिए निरन्तर ध्यान दान आदि के लिए उपदेश प्रदान किया गया। हमारे संस्कृत महाकवियों ने न केवल अपने देश के लिए प्रत्युत सम्पूर्ण संसार के कल्याण के लिए बार–बार अनेक स्थलों पर मंगल कामना किया है तथा इष्टदेव से मन से आराधना भी किया है।

संस्कृत साहित्य निश्चय ही अपने गौरव के लिये केवल भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण संसार में सुप्रसिद्ध है **भास, कालिदास, भारवि, माघ, भवभूति, सुबन्धु, दण्डी, बाण, श्री हर्ष, जयदेव, धनपाल** आदि की रचनाएँ विदेशों मे सहृदय विद्वानों के द्वारा सम्मानित की गयी है। हमारे देश मे इन महाकवियों की बहुमूल्य रचना की कमनीयता और महानता की प्रायः सभी ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किया है। **भास कालिदास** आदि संस्कृत के महाकवियों ने अपनी रचनाओं में काव्य सौन्दर्य के साथ–साथ भारतीय संस्कृति सभ्यता और जीवन दर्शन का विस्तार से वर्णन किया है। ये सभी देश काल की परिधि से परे, हमेशा आदर प्राप्त महान तत्वों के प्रभाव से **रामायण, महाभारत** आदि का और **भास, कालिदास** आदि की रचनाओं जैसे **रघुवंश** आदि का जिस प्रकार महत्व प्राचीन काल में था उसी प्रकार आज भी है। **महाकवि कालिदास** ने **रघुवंश महाकाव्य में रघुवंशीय राजाओं** जो सांस्कृतिक स्वरूप वर्णित किया है–

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।

वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।

इत्यादि का उस समय के समाज के लिए ही नहीं परम उपयोगी था अपितु आज भी हमारे लिए उतना ही महत्वपूर्ण है इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य में नयचन्द्र चन्द्रशेखर आदि कवियों की रचनाओं में राष्ट्रीय भावना की बहलता से वर्णन किया है।

वीररस इस प्रधान **हम्मीर महाकाव्य** में मुख्य तथा चौहानवंशीय रणस्तम्भपुर के राजा **हम्मीर देव** के अपूर्ण शौर्य एवं कीर्ति सजीव चित्रण हुआ है। ग्रन्थ के आरम्भ में तीन सर्गों में हम्मीर के पूर्वजों के वर्णन में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज के अदभुत शौर्य तथा देश के लिए प्राणोत्सर्ग का रोमांचकारी वर्णन प्राप्त होता

है। भारतीय राजाओं में **पृथ्वीराज** ने मानमर्यादा की रक्षा के लिये अत्याचारी **सहाबदीन** को युद्ध में पराजित करके उसे प्राणदान दिया। वही पृथ्वीराज अन्त मे शत्रु के द्वारा छलपूर्वक पराजित हुये थे तथा प्राण त्याग दिया था। इन सभी ऐतिहासिक घटनाओं का इस काव्य में अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है। इस वर्णन को सुनकर और पढ़कर हमारे मन में देश के गौरव की रक्षा के लिए आत्मबलिदान की भावना उत्पन्न होती है। इस महाकाव्य के नायक हम्मीरदेव ने अपने देश धर्म और स्वाभिमान की रक्षा के लिए प्रबल एवं दुराचारी यवन राज **अल्लावदीन** के सम्मुख नतमस्तक होने की अपेक्षा थोड़े सैनिको के साथ युद्ध किया। हम्मीर के जीवन चरित से हम भारतीयो को यह शिक्षा मिलती है कि विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य को नहीं त्यागना चाहिए। अनेक कष्टों के आने पर भी स्वाभिमान की रक्षा करनी चाहिए, पूज्यमातृ भूमि की रक्षा करनी चाहिए शरणागत शत्रु की प्राणदान करके रक्षा करनी चाहिए साम्राज्य लाभ में भी कुल परम्परा तथा गौरव की निरन्तर रक्षा करनी चाहिए। हमें यहाँ हम्मीर के चरित्र से शिक्षा मिलती है कि भारतीयता, हमारी संस्कृति, सभ्यता और धर्म के जो–जो विरोधी है और जो निरपराधी भारतीयों को पीड़ित करते है उनके साथ कभी भी संधि नहीं करनी चाहिए। उस प्रकार के नीच शत्रु किसी तरह से दण्डित तथा मृत्यु अवश्य प्रदान करना चाहिए। हम्मीर यदि धन एवं साम्राज्य के लोलुप होते तो **अल्लावदीन** के साथ सन्धि करके और अपनी पुत्री का **अल्लावदीन** से विधिवत विवाह करके **दिल्ली** का अत्यन्त उच्च पद प्राप्त कर सकते थे किन्तु शत्रु पक्ष के होने से उन्होंने ऐसा नहीं किया। इन्होंने इस प्रकार देश की कुल की जाति की देशभक्तों तथा वीरो के गौरव को बढ़ाया। आज भी जब देश के स्वाभिमान तथा मातृभूमि की रक्षा की चर्चा होती है देश के ऊपर संकट के बादल उत्पन्न होते हैं तब वीर हम्मीर का चरित्र हमें अपने कर्तव्य पालन के लिये

प्रेरित करता है **हम्मीर महाकाव्य में रतिपाल, रणमल्ल**[1] के सदृश्य पूर्व में स्वामिभक्तों का राज्यलोभ से अन्त में स्वामी हम्मीरदेव के साथ विश्वासघात किया तथा अन्त में उनकी **अल्लावदीन** ने दुर्दशा किया। इससे कवि ने यह प्रदर्शित किया है कि स्वामी तथा मित्र के साथ विश्वासघात नही करना चाहिए क्योंकि संसार में सभी राज्य, धन आदि वस्तुए कुछ समय रहती है परन्तु विश्वास पात्र, स्वामिभक्त कृतज्ञ की कीर्ति चिरकाल तक लोक में विद्यमान रहती है कृतज्ञ के प्रति कृतध्न की इस संसार में तो निन्दा होती ही है परलोक में मरने के बाद भी सद्गति नहीं प्राप्त करता। इसलिए देश की रक्षा के लिए मातृभूमि की सेवा के लिए तथा अपने स्वामी के कार्य के लिए प्राणार्पण करके अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। कृतघ्न तथा विश्वासघाती जीवन की अपेक्षा खुशी–खुशी शत्रु के हाथ में मरना ही श्रेयष्कर है।

महाकवि नयचन्द्र ने हम्मीर के देशभक्ति की मुक्त हृदय से प्रशंसा किया है। इन्होंने स्पष्ट किया है कि ये अपने देश की जनता, धर्म, भाषा संस्कृति और कुल की प्रतिष्ठा की असाधारण रूप से रक्षा किया[2]।

महिमासाहि जाति से यवन था परन्तु शरणदाता हम्मीर का हृदय से भक्त था। कवि ने यहाँ महिमासहि जैसे यवन का हम्मीर के प्रति और भारतभूमि के प्रति निर्मल भक्ति प्रदर्शित कर यह प्रमाणित कर दिया कि किसी अन्य धर्म के अवलम्बी तथा भिन्न जाति के लोग भी अपने आश्रयदाता स्वामी तथा देश के प्रति कृतज्ञ हो सकते हैं इसमें जाति तथा धर्म किसी प्रकार बाधक नही है हम्मीर के इस शौर्यपूर्ण कार्यकलाप के लिए और मातृभूमि को यवनों के अत्याचार से स्वतन्त्र कराने के लिये उनके द्वारा किये गये त्याग और बलिदान को पढ़कर

1 हम्मीर महाकाव्य—13/73–104, 130–135, 140–141 191–193, 14/6,21

2 हम्मीर महाकाव्य 13/1–15

भगत सिंह चन्द्रशेखर आजाद आदि देश भक्तों की अमर कथा हमारे समक्ष उपस्थित होती है। जिन्होंने अंग्रेजों से देश को भारत माता को छुड़ाने के लिये शत्रु द्वारा दिये गये अनेक कष्टों को सहते हुये आजीवन संघर्ष किया और अन्त में सहर्ष प्राणों को भी समर्पित कर दिया। इस प्रकार **हम्मीर महाकाव्य** भारतीयो के मन मे वीरता, मातृभक्ति, त्याग, बलिदान की भावना को बढ़ाने उत्कृष्ट साधन है।[1]

वस्तुतः नरवीर **हम्मीर** ने राष्ट्र, धर्म कुल भारतीय संस्कृति आदि की रक्षा के लिए उस समय के ही नहीं अपितु संसार के इतिहास का शक्तिशाली क्रूर धर्मध्वसंक शासक का भयंकर आक्रमण और नीचता पूर्ण आमन्त्रण को गर्व पूर्वक तिरस्कृत करके सभी राष्ट्रभक्तों स्वाभिमानियों के मन मे उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करते है। हम्मीर देव भारतीय संस्कृति धर्म आदि की रक्षा मे हमेशा तत्पर रहे। उन्होंने अनेक बार शत्रु के आक्रमण निष्फल कर उसे रणस्तम्भपुर से बाहर भगाया। भारत वर्ष के भाग्य विधाता, विराट पुरुष नें राष्ट्र, गौरव और धर्म की रक्षा के लिए हम्मीर के सदृश महावीरों की सृष्टि किया जिन्होंने देश के लिए प्राणों को हर्ष के साथ समर्पित किया। उन वीरों की कीर्ति पताका हमेशा सादर फैलती रहेगी। इस प्रकार के यशस्वी, मनस्वी महापुरुष के यश को अनन्तकाल तक अक्षुण्ण रखने के लिए स्वयं विराटपुरुष ने महाकवि **नयचन्द्र** को आदेश दिया। इस प्रकार अनेक प्रकार से राष्ट्रीय भावना का आविष्कार करने में समय–समय पर भारतीयों के मन में त्याग बलिदान सदृश पवित्र भावनाओं को उत्पन्न करने में यह महाकाव्य समर्थ है और सभी के द्वारा पठनीय है।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—14/19-20

पंचम अध्याय

हम्मीर महाकाव्य का महाकाव्यत्व और ग्रन्थान्तर प्रभाव

हम्मीर महाकाव्य का महाकाव्यत्व

लोकोत्तर वर्णन में निपुण कवि का कर्म ही काव्य है और सहदयो के ह्रदय का अहलायकारक शब्द और अर्थ से युक्त काव्य होता है। **काव्य दृश्य** तथा **श्रव्य** दो प्रकार का होता है।[1] उसमें दृश्य काव्य का अभिनय होता है। इस कारण रूपकों आदि की गणना उसमें की जाती है। उससे भिन्न श्रव्य काव्य होता है। श्रव्य काव्य भी गद्य–पद्य के भेद से दो प्रकार[2] का होता है। पद्य छन्द बद्ध पद होता है। पद्यान्तर अपेक्षा रहित एक पद्य को **मुक्तक** कहते है दो सापेक्ष पद्यों के मेल को युग्मक, तीन परस्पर अन्वित पद्यों को सन्दानितक, चार परस्पर अन्वित पद्यों को कलापक और चारों पद्यों के मेल को कुलक कहते है।[3]

जब किसी नायक के चरित्र के कुछ अंश को पद्य मे वर्णित करते है तो वह खण्ड काव्य होता है किन्तु जब नायक के चरित्र का सम्पूर्ण वर्णन किया जाता है तो वह **महाकाव्य** होता है। महाकाव्य का लक्षण निरूपण में प्राचीन काल से ही साहित्य मर्मज्ञ आचार्य सावधान दिखायी पड़ते है। काव्य के विविध रूपों में महाकाव्य का स्थान सर्वोपरि है। **महाकाव्य** का लक्षण सर्वप्रथम आचार्य **भामह** ने अपने ग्रन्थ **काव्यालंकार**[4] में वर्णित किया है। उसके पश्चात **दण्डी** ने **काव्यादर्श** में महाकाव्य के स्वरूप का निरूपण किया है। उन्होने मुख्यरूप से **भामह** का ही अनुकरण किया है फिर भी अपनी प्रतिभा से मौलिकता की भी रक्षा की[5] है इसके पश्चात **रुद्रट** ने अपने **काव्यालंकार** में महाकाव्य के स्वरूप निरूपण में थोड़ा परिवर्तन किया है अतः उन्होंने महाकाव्यों को अलंकार प्रधान

1. साहित्य दर्पण 6/1
2. साहित्य दर्पण 6/3–3
3. साहित्य दर्पण 6/3–4
4. काव्यालंकार 1/19–23
5 काव्यादर्श 1/14–19

नही माना है और प्राचीन **भामह, दण्डी** आदि के द्वारा स्वीकृत परम्परा को अत्यधिक महत्व नही स्वीकार किया है। इसलिए **रुद्रट** ने ग्रन्थारम्भ में मंगलाचरण के प्रत्येक सर्ग में एक वृत्त और सर्गान्त में भिन्न वृत्त के प्रयोग का खण्डन किया है। पश्चात्य आलोचकों[1] ने महाकाव्य में चार तत्वों को अनिवार्यतः स्वीकार किया है—महान उद्देश्य, महान चरित्र, महान घटना, और सम्पूर्ण जीवन का रसमय चित्रण। **आचार्य रूद्रट** के महाकाव्य के लक्षण मे ये विशेषताएँ स्फुट रूप से परिलक्षित होती है। रूद्रट ने ही सर्वप्रथम अलौकिक तथा अति प्राकृत तत्वों का सन्निवेश किया है[2] प्रतिनायक का भी वर्णन सुस्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। रूद्रट से पूर्व के आचार्यो ने प्रतिनायक का वर्णन नही किया है।

आचार्य विश्वनाथ ने केवल इन्हीं लोगों का ही नही अपितु **भोजराज वाग्भट, हेमचन्द्र** आदि के भी द्वारा दिये गये महाकाव्य के लक्षण की समीक्षा करके **साहित्य दर्पण** में विस्तारपूर्वक महाकाव्य के विषय का प्रतिपादन किया है। उन्होंने छठें परिच्छेद में महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है।[3]

सर्गबन्धों महाकाव्य तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः फुलजा वहवोऽपि वा ॥
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽगीरस दृश्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः ॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्धा सज्जनाश्रयम
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्थुस्तेष्वेकं च फलं भवित्॥

1. महाकाव्य की कथा सर्गो में विभक्त होती है

---

1. हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ. सं. 54 ले. डा. शम्भूनाथ सिंह
2 रूद्रटकृत—काव्यालंकार
3 साहित्य दर्पण 6/315–318

2. इसमें धीरोदात्त आदि गुणों से युक्त एक देवता अथवा कुलीन क्षत्रिय नायक होता है। कहीं–कहीं एक ही वंश के कुलीन बहुत से राजा नायक होते है।

3. श्रृंगार, वीर अथवा शान्त में से कोई एक अङ्गी होता है। अन्य रस अङ्गी (गौण) होते हैं नाटक की प्रायः मुख, प्रतिमुखादि सभी सन्धियाँ होती है।

4. कथावस्तु ऐतिहासिक अथवा लोकप्रसिद्ध सज्जन से सम्बन्धित होती है।

5. धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष में से कोई एक फल (प्रयोजन) होता है।

6. कथा का प्रारम्भ आशीर्वाद नमस्कार या वर्ण्यवस्तु का निर्देश होता है। कहीं–कहीं

7. न बहुत छोटे नहीं बहुत बड़े कम से कम 8 सर्ग अवश्य होते है।

8. प्रत्येक सर्ग एक ही छन्द मे निबद्ध होता है। परन्तु प्रत्येक सर्ग का अन्तिम छन्द भिन्न होता है।

9. कहीं–कहीं एक ही सर्ग में अनेक छन्दों का भी प्रयोग होता है सर्ग के अन्त में अगली कथा की प्रायः सूचना दे दी जाती है।

10. महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, शैल वन, ऋतु सागर आदि का वर्णन किया जाता है।

11. यज्ञ, नगर, युद्ध, विवाह, मन्त्र, पुत्र, सम्भोग, वियोग मुनि आदि

का भी इसमें वर्णन किया जाता है।[1]

12. महाकाव्य का नाम कवि के नाम से (**माघ**) चरित्र के नाम से (यथा **कुमार सम्भवम**) अथवा चरित्र नायक के नाम से (**यथा—रघुवंशम**) होना चाहिए।

13. सर्ग की काव्यवस्तु के अनुसार सर्ग का नामकरण किया जाता है।

अतः हम्मीर महाकाव्य में कवि ने प्रायः सभी नियमों का पालन उचित रूप से किया है। इस कारण इस काव्य की कथा सर्गों में विभक्त है। आठ से अधिक चौदह सर्ग है। इस महाकाव्य का नायक सद्वंश में उत्पन्न क्षत्रिय वीर राजा **हम्मीर देव** है जिसकी वीरता की कीर्ति इस संसार में सुप्रसिद्ध है।[2] इसका रसवीर है तथा शृंगार, रौद्र, हास्य अद्भुत रस का भी वर्णन हुआ है। इस महाकाव्य की कथावस्तु रणस्तम्भपुर के लोकप्रसिद्ध नरेश **हम्मीरदेव** के ऐतिहासिक

---

1. **आदौ नमार्सक्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एवं वा।**
क्वचिन्निदा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम् ॥
एकमवृत्तमयैः पद्यैरवसाने न्यवृन्तकैः
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥
त्रानावृत्तमयः क्वापि सर्गः काश्चन् दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदेसध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगशैलतुर्वनसागराः ॥
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वराः ।
रण प्रयाणोपयममन्त्र पुत्रोदयादयः।
वर्णनीय यथायोगं सांगोपरंगा अभी इह।
कवेर्वृत्तस्थ वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा॥
नामास्त्र सर्गोपदेयकथया सर्गनाम तु।

साहित्यदर्पण 6/319–324

2. धर्मः शर्मपदं मुमोच करुण रव्यं शरण्यं यथा–
वौदार्य विजगाल वालललितं।
हम्मीर महाकाव्य–14/2

वृत्त से सम्बद्ध अतः यह ऐतिहासिक है।

महाकाव्य में मुख प्रतिमुख गर्भ आदि पाँचो सन्धियों का यथावसर सुन्दर प्रयोग हुआ हैं इस विषय में कथानक औचित्य के विचार के अवसर पर विस्तार से विवेचन किया गया है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष फल प्राप्ति रूप प्रयोजन को भी महाकाव्य में प्रयोग किया गया है। यद्यपि इसमें सभी साहित्यचार्य एक मत दिखायी पड़ते है किन्तु **आचार्य विश्वनाथ** के मतानुसार उनमे से एक वर्ग के फल का अनिवार्य रूप से निरूपण होना चाहिए। यद्यपि साहित्य दर्पण के आरम्भ में विश्वनाथ ने काव्य प्रयोजन के विस्तार के अवसर पर सुस्पष्ट कहा है कि–

चतुवर्ग फल प्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तने तत्स्वरुपं निरूयते।।[1]

किन्तु उन्होंने भी महाकाव्य के स्वरूप निरुपण के समय थोड़ा परिवर्तन किया है उसी के भाव से प्रतीत होता है कि चतुवर्गो धर्मादि फल की प्राप्ति का वर्णन अत्यन्त प्रंशंसनीय है परन्तु जहां चारों ही सम्भव हो वहाँ अन्यतम फल प्राप्ति का वर्णन तो अनिवार्यतया वर्णनीय है। इस महाकाव्य में धर्मादि समस्त पुरूषार्थों में परमार्थभूत नायक हम्मीर के सत्व का कवि ने अत्यन्त उदात्त भाव से वर्णित किया गया है।

अपनी रक्षा की अपेक्षा शरणागत और देश वासियों की दुराचारियों से रक्षा करना निश्चय ही पुण्य प्रद कर्म है। इस महाकाव्य से शिक्षा मिलती है कि देश व मातृभूमि की रक्षा के लिये हम्मीर देव का आचरण अनुकरणीय है न कि कृतघ्न रतिपाल का या क्रूर अल्लावदीन का।

इस महाकाव्य के आरम्भ में प्रथम श्लोक से लेकर सात श्लोक तक

---

1 साहित्य दर्पण-1/2

शिष्टाचार पालन के लिए शास्त्र आदि में मंगल प्रकट करने के लिये, प्रारब्ध विघ्न की समाप्ति के लिये कवि ने मंगलाचरण किया है। उसमें प्रथम श्लोक में परम ज्योति परमात्मा को कवि ने श्रद्धा पूर्वक स्मरण किया है।[1] द्वितीय पद्य में श्री ऋषभ और ब्रह्मा के आराधको की कल्याण की कल्पना श्लेष अलंकार मे आशीर्वादात्मक मंगल कामना किया। तीसरे श्लोक में पुरुषोत्तम **विष्णु** के साथ **श्री पार्श्वनाथ** की यश वृद्धि के लिए प्रार्थना किया है।

चतुर्थपद्य में ऐतिहासिक कष्टों की समाप्ति के लिए कवि ने शंकर की प्रार्थना का वर्णन किया है। पाँचवे पद्य में **भास्कर** के साथ **शान्तिनाथ** की पापनाश के लिये प्रार्थना किया है। छठें पद्य में समुद्र से जन्मे नेमीश्वर की चन्द्रमा के साथ श्रद्धा पूर्वक वर्णन किया है। सातवें श्लोक में शब्द देवता के साथ सरस्वती तथा उसी के नाम की नदी का भी **कवीन्द्र नयचन्द्र** ने वर्णन किया है।[2]

प्रथम सर्ग के आठवें[3] श्लोक में कवि ने मान्धाता, सीतापति, युधिष्ठिर आदि मुख्य सत्वगुण से विभूषित महापुरुष राजाओं का वर्णन किया है। दुष्टों की निन्दा यद्यपि ग्रन्थ के आरम्भ में नहीं दिखायी पड़ती किन्तु मध्य में यथावसर रतिपाल सदृश कृतघ्नों का वर्णन प्राप्त होता है।

महाकाव्य के नियम के अनुसार इसमें एक सर्ग में प्रायः एक वृत्त का प्रयोग हुआ है और सर्ग के अन्त में वृत्त का परिवर्तन भी हुआ है। दसवें सर्ग

---

1. सदाचिदानन्दमहौदयैकहेतु परं ज्योतिरूपास्महे तत ।
   यस्मिन् शिवश्रीः सरसीव हंसी विशुद्धिकृद्धारिणि रीति।।

   हम्मीर महाकाव्य—1/1

2. हम्मीर महाकाव्य 1/2-7
3. मान्धातृसीतापतिकंकमुख्याः क्षितौ क्षितीन्द्रा कति नाम नासन्।
   तेषु स्तवार्हः परमेष सत्वगुणेन हम्मीर महीभेदकः।।

   हम्मीर महाकाव्य—1/8

मे विविध वृत्तों का प्रयोग करने पर महाकाव्य के नियमो का पालन किया गया है। सर्ग प्रायः न तो अधिक दीर्घ और न ही अधिक छोटे है। महाकाव्य मे आठ से अधिक चौदह सर्ग है। सर्ग के अन्त में सभी जगह आगामी सर्ग की कथा की सूचना मिलती है।

महाकाव्य में उत्कृष्टता उत्पन्न करने के लिये कवि ने प्रकृति का वर्णन किया है। कल्पना शक्ति के धनी ये महाकवि संध्या, प्रभात, सूर्य, चन्द्र, रजनी, दिन, शैल, ऋतु, वन आदि का मनोरम वर्णन किया है। इसके पाँचवे सर्ग में ऋतुराज[1] बसन्त का कवि ने इतना मनोरम वर्णन किया है कि पाठक का मन चंचल हो जाता है। उस समय के दिन किस प्रकार गुरुता अंगीकार किये थे इस विषय में कवि ने विलक्षण कल्पना किया है।

स्थलतां प्रयाति गगने पवनेरितपुष्पराजिरसां पटलैः।
अचलन यदर्कतुरगाः शनकै स्तदिवास वासरगणोऽत्र गुरुः ।।[2]

इस महाकाव्य के छठें सर्ग में नायक **हम्मीर** की जलक्रीड़ा का सजीव वर्णन प्राप्त होता है। कामकला में निपुण रूपवान, युवा हम्मीर देव अनेक प्रकार से जलक्रीड़ा करते हुये किस किस प्रकार अपूर्व आनन्द का अनुभव करते थे इसका कवि ने विस्तारपूर्वक सूक्ष्म दृष्टि से वर्णन किया है। कवि ने षष्ठ सर्ग के प्रत्येक पद में शृंगार रस को प्रवाहित करके रसिक पाठकों के लिये पठनीय तथा स्मरणीय बना दिया हैं

कल्पना **धनी नयचन्द्र** ने सप्तम सर्ग के 128 श्लोको में **शृंगार संजीवन** नामक सर्ग में सुरत व्यापार का शृंगारमय वर्णन किया है। षष्ठम् सर्ग मे **जैत्रसर** का ममोरम वर्णन किया है।[3] तेरहवें सर्ग में पद्यमसर का मनोरम

---

1 हम्मीर महाकाव्य–पंचम सर्ग का बसन्त वर्णन

2 हम्मीर महाकाव्य 5/8

3 हम्मीर महाकाव्य 6/1–2

वर्णन प्राप्त होता है।[1] **पुष्कर सरोवर** का उल्लेख नवम सर्ग मे कवि ने अत्यन्त आदर पूर्वक किया है।[2] **मन्दाकिनी** कुण्ड तथा **शाकम्भरी**[3] झरने का वर्णन भी कवि ने किया है।

हम्मीर ने अपनी भुजा के बल पर पृथ्वी को जीतकर सहर्ष अपने नगर आकर पुरोहित **विश्वरूप** से पूछा कि अब मैं क्या करू? उनकी बात को सुनकर पुरोहित ने **कोटियज्ञ** के फल को सुनाया तब हम्मीर ने भी कोटि यज्ञ किया। अनेक बहुमूल्य वस्तुओं को ब्राह्मणो को दानकर हम्मीरदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए इसका वर्णन ग्रन्थ के नवम् सर्ग में किया गया है।[4]

हम्मीर महाकाव्य में **काशी कांची, पल्लीपुरी** नगरों के वर्णन के साथ **गोपाचल, कुन्तल, काश्मीर** आदि स्थानों का **वर्णनाशा, सरस्वती,रेवा, शिप्रा चर्मण्वती** आदि नदियों का, **उल्लूखान–निसुरखान अल्लावदीन** के साथ **हम्मीर देव** तथा उसके वीरो के भयंकर युद्ध का वर्णन प्राप्त होता है। इस महाकाव्य में **अजयमेरु, चित्रकूट, रणस्तम्भपुर, ककराल आम्रपुरी** आदि दुर्गो का हृदयावर्जक वर्णन देख सकते है।

इसमें **शाकम्भरी देवी**[5] **अर्बुदादेवी**[6] **अचलेश्वर,**[7] **ब्रह्मा विष्णु**[8] **शिव के वर्णन के साथ श्री**[9] **आश्रम वशिष्ठाश्रम**[10] **अर्बुदाचल, गोपाचल और**

---

1. हम्मीर महाकाव्य 13/172
2. हम्मीर महाकाव्य 9/96,9/41
3. हम्मीर महाकाव्य 9/37
4. हम्मीर महाकाव्य 9/75–99
5. हम्मीर मकाकाव्य 9144
6. हम्मीर महाकाव्य–9/36
7. हम्मीर महाकाव्य 9/37
8. हम्मीर महाकाव्य 9/42
9. हम्मीर महाकाव्य 8/106
10. हम्मीर महाकाव्य 936

मलय शैल का भी उल्लेख हुआ है।

इस महाकाव्य का नाम साक्षात नायक के नाम पर **हम्मीर महाकाव्य** है इस महाकाव्य का प्रमुख पात्र **हम्मीर देव ही** है प्रारम्भ से लेकर ग्रन्थ की समाप्ति तक हम्मीर की इतिवृत्त का प्रधानरूप से वर्णन हुआ है। अल्लावदीन निश्चित रूप से विपुल सैन्यशक्ति सम्पन्न यवनराजा तथा दिल्ली का शासक था। परन्तु कवि ने उसका प्रधान रूप से वर्णन नही किया है। क्योंकि विपुल सैन्य सम्पन्न होते हुए भी यदि कोई राजा मानवता के सामान्य गुण से विहीन हो तो दुराचारादि गुणों से व्याप्त है तो उसका इस संसार में सम्मान नहीं होता है कोई दुर्जन इस संसार में प्रशंसा नहीं प्राप्त कर सकता इसलिए कवि ने अल्लावदीन को यहाँ पर प्रतिनायक के रूप में वर्णित किया है। यद्यपि पृथ्वीराज का भी यहाँ अन्य चौहानवंशीय राजाओं की अपेक्षा कुछ विस्तार से वर्णन मिलता है परन्तु कवि की इनके वर्णन में प्रधान दृष्टि नहीं रही है। अतः सब तरह से भलीभाँति विचार करके कवि ने नायक के नाम का अनुकरण करके इस महाकाव्य का नाम **हम्मीर महाकाव्य** रखा जो सभी प्रकार से उचित एवं सार्थक है।

महाकाव्य में सर्गो के नाम भी सर्ग में वर्णित विषय के नाम पर ही रखे गये है। इसलिए प्रथम सर्ग में हम्मीर में पूर्वज राजाओं का प्रधान रूप से वर्णन हुआ है। अतः प्रथम सर्ग का नाम है **हम्मीर पूर्वज वर्णनम्** यह हुआ है द्वितीय सर्ग में भी भीमदेव आदि राजाओं का हम्मीर देव के पूर्वजों का ही वर्णन होने से कवि ने इसका नाम भीमदेव प्रभूति पूर्वज वर्णनम किया है तृतीय सर्ग का नाम **पृथ्वी राज का संग्रम वर्णन है।** इस प्रकार अवशिष्ट सर्गो का नाम भी उसमें वर्णित घटनाओं के आधार पर ही किया गया है। अतः स्वयं उन्होने प्रत्येक सर्ग के अन्त में इस काव्य का उल्लेख महाकाव्य के लिये किया है। स्वयं चौदहवें सर्ग में सुस्पष्टतः कहते है।

भवन्ति काव्येषु महाकवीनां यत्येव भावा अशुभाः शुभावा।
प्रदर्शितास्ते कतिचित् ततीह न चेन्महाकाव्यमिदं कथं तत्।।[1]

कवीन्द्र **नयचन्द्र** ने इस ग्रन्थ में केवल काव्यशास्त्रीय नियमो के पालन के लिये ही महाकाव्य के इन विशेषताओं का उपयोग नहीं किया है अपितु यहाँ इसमें महाकाव्य के ही अनुकूल भाषा गुणों अलंकारों, रसों आदि का उचित प्रयोग भी किया है। यहाँ पदों के अर्थ प्रकाशन मे स्फुटता, अर्थगम्भीरता, और स्वभाविकता भी सुरक्षित है। इसमें **कालिदास** के महाकाव्यो की सरलता2 सरसता **भारवि—माघ** महाकवियो की अलंकार रमणीयता, **श्रीहर्ष** मे **नैषध चरित्र** भी नूतन कल्पना की कमनीयता आदि इन सभी का कवि ने एक जगह प्रदर्शित करने का प्रयास किया है तथा इसमें उन्होंने सफलता भी प्राप्त किया है। इस कारण से ही **विक्रमांक देव चरित** के बाद इस महाकाव्य का ऐतिहासिक महाकाव्यों में अत्यधिक महत्व आलोचकों और विद्वानों ने स्वीकार किया है।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—14/41

ग्रन्थान्तर प्रभाव

ग्रन्थान्तर प्रभाव

संसार में प्रायः दिखायी पड़ता है कि मनुष्य का जन्म से ही पिता से स्वतन्त्र अस्तित्व होताहै। जबकि पुत्र की शिराओं में पिता का ही रक्त प्रवाहित होता है तथापि उसका पृथक अस्तित्व स्वीकार किया जाता है। इसी प्रकार शिक्षा प्राप्त करके, काव्य के रस का आस्वादन करके, काव्य रचना के अभ्यास से, काव्य कर्म में प्रेरणा प्राप्त करने के लिए जो प्राचीन कवियो के काव्यों का अध्ययन करते हैं। उस अध्ययन से सूक्ष्म संस्कार विशेष उनके स्मृति पटल पर अंकित हो जाती है। वे ही संस्कार विशेष उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं परिस्फुटित होते हैं। काव्य रचना में व्युत्पत्ति का विशेष स्थान है। व्युत्पत्ति के बिना कोई भी कवि काव्य रचना में प्रागल्भता नही प्राप्त कर सकता। कवि को इसके लिए पूर्व कवियों के काव्यो का अध्ययन करना आवश्यक है। अध्ययन करने से जो संस्कार उनकी बुद्धि में स्थित होते हैं वे संस्कार प्रायः उनकी रचनाओं में दिखाई पड़ते हैं। अतः उन संस्कारों का प्रभाव प्रायः नवीन कवियों की रचनाओं मे दिखायी पड़ता है। किसी कवि की नवीन रचना प्राचीन कवि से प्रभावित रहती है और यदि वह अपनी प्रतिभा से विशिष्ट रस निष्पत्ति करने में सफल होता है तो उसकी रचना नवीन मानी जाती है न कि अनुकृति। आनन्द वर्धन ने कहा है—

दृष्टपूर्वा अपि हयर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः।।[1]

इस विषय में **डॉ0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल** के विचार उपयुक्त नही हैं कि अपने काव्य में किसी प्राचीन कवि की विषय शैली स्वीकार करने से कोई भी कवि उत्कृष्ट कवियों की श्रेणी में नहीं आता है। काव्य की उत्तमता

---

1. ध्वन्यालोक—4/4

की परीक्षा के अवसर पर उसके मार्मिक पक्ष को प्राथमिकता देनी चाहिए। यदि कवि भावुक हृदय से वस्तु विशेष के मार्मिक पक्ष का अपने काव्य में सौम्य अभिव्यक्ति किया है तो वह काव्य नितान्त उच्च कोटि का होता है।[1]

इसी सन्दर्भ में **ध्वन्यालोककार** आचार्य **आनन्द वर्धन** ने कहा है कि[2]—

संवादास्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधरसाम्।
नैकरुपतया सर्वे ते मन्तव्या विपश्चिता।।

अन्य के साथ सादृश्य को ही संवाद कहते हैं।

यह तीन प्रकार का होता है—1. प्रतिबिम्बित, 2. चित्राकारतुल्य, 3 तुल्यदेहिवत्।[3]

उनमें से पहला प्रतिबिम्बिकल्प सादृश्य, पूर्व वर्णित स्वरूप से भिन्न अपने अलग स्वरूप से रहित है अतः त्याज्य है। उसके बाद दूसरा चित्राकार तुल्य सादृश्य तुच्छ स्वरूप है। और तीसरा तुल्यदेहिवत् प्रसिद्ध स्वरूप है अतः अन्य वस्तु के साथ इस तृतीय प्रकार के साम्य का कवि परित्याग न करे।

अतः उनमें से पहले प्रतिबिम्ब स्वरूप काव्यवस्तु को छोड़ देना चाहिए क्योंकि वह तात्विक स्वरूप से रहित है।

उसके बाद चित्रतुल्य साम्य शरीरान्तर से युक्त होने पर भी तुच्छ रूप होने से परित्याज्य है। किन्तु तुल्यदेहिवत् साम्य वस्तुतः कमनीय होता है।[4] अतः सदृश होने पर भी भिन्न और सुन्दर शरीर से युक्त इस तीसरे प्रकार

---

1. नैषध परिशीलन—पृ0 106
2. ध्वन्यालोक—4/11
3. ध्वन्यालोक—4/12
4. ध्वन्यालोक—4/13

के सादृश्य का परित्याग नहीं करना चाहिए। क्योंकि एक देह धारी मनुष्य दूसरे देह धारी से समान होने पर भी एक ही है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। **आनन्दवर्धन** ने कहा है—

आत्मनोऽन्यस्य सद्भावे पूर्वास्थित्यनुयाय्यपि।
वस्तु भातितरां तन्व्याः शशिच्छायानिवाननम्।।

वस्तुतः यह साम्य काव्य में उपजीव्य-उपजीवक की भाँति विद्यमान रहता है। कवि की स्वाभाविक कवित्व प्रतिभा (शक्ति), लोकशास्त्र आदि के पर्यालोचन से उत्पन्न निपुणता, तथा काव्य को जानने वाले गुरु की शिक्षा के अनुसार काव्य निर्माण का अभ्यास, ये तीनों मिलकर समष्टि रूप से उस काव्य के निर्माण के कारण है। किसी वस्तु को देखकर कवि अपनी प्रतिभा के अनुसार उसका वर्णन करता है। इसीलिए एक ही वस्तु के वर्णन में कवि की विशिष्टता से नूतनता आ जाती है। **कालिदास** आदि महाकवियों ने अपनी रचनाओं में जिन वस्तुओं का वर्णन किया है उसका वर्णन उनके परवर्ती कवियों ने भी किया है। अतः पूर्ववर्ती कवियों से वस्तु वर्णन मे स्वभावतया कुछ साम्य हो सकता हैकिन्तु जगत की प्रकृति के समान पूर्व कवियों के वर्णन में न्यूनता नहीं आ सकती।[1]

किसी एक ही विषय का आश्रय लेकर समान भाव कवियों में उत्पन्न होता हैक्योंकि मनुष्यों की चिन्तन पद्धति में समानता स्वभाव सिद्ध है। प्रायः काव्य निर्माण का अभ्यास करते समय कवि अपने पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों का अध्ययन करता है। तत्पश्चात् प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से उनके मर्मस्पर्शी भाव कवि की कल्पना में दिखायी पड़ते हैं। परन्तु इस प्रकार की साम्यता कहीं-कहीं ही होती है। यही कारण है कि अनेक कालों में अनेककवियों

1. ध्वन्यालोक—4/10

की रचनाओं कहीं भाव साम्य तो कहीं शब्द साम्य दिखायी पड़ता है।

हम्मीर महाकाव्य के अध्ययन से ज्ञात होता है इस महाकाव्य में भी इसके पूर्ववर्ती महाकाव्यों का प्रभाव कहीं-कही दिखायी पड़ता है। कुछ आलोचक कहते हैं कि **नयचन्द्र** अनुकरणशील महाकवि थे। वस्तुतः इस महाकाव्य में नयचन्द्र द्वारा उद्भूत नूतन काव्य सौष्ठव का बाहुल्य है। यहाँ विचारणीय है कि जितना काव्य सौष्ठव **हम्मीर महाकाव्य** में है उतना अन्यत्र नहीं है। माना जाता है कि जिस अंश में अन्य कवियों का प्रभाव है वह रमणीय है और जिस अंश में केवल नयचन्द्र की प्रतिभा का ही प्रभाव है वह उससे भी रमणीय है। इस प्रकार यहाँ पर यह भी विचारणीय है कि ऐसा कोई भी कवि नहीं है जिसके काव्य में प्राचीन कवियों का प्रभाव न दिखायी पड़ता हो। परन्तु वे सभी अनुकरणशील है यह नहीं कहा जा सकता है।

हम्मीर महाकाव्य में कविकुलगुरु **कालिदास** की प्रतियो का अत्यधिक प्रभाव दिखायी पड़ताहै। कालिदास ने **रघुवंश महाकाव्य** के आरम्भ में अपना विनय प्रदर्शित करते हुए कहा है कि मेरी बुद्धि से सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन करने में वैसा ही दुष्कर कार्य है जिस प्रकार छोटी सी नौका से सागर को पार करना।

क्वसूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।[1]

इसी प्रकार का भाव महाकवि नयचन्द्र ने विनयपूर्ण वाणी से कहा है कि कहाँ चौहानवंशीय भास्कर स्वरूप हम्मीरदेव का महान चरित्र, कहाँ मेरी अल्प बुद्धि जैसे अज्ञानता के कारण एक ही भुजा से सागर पार करने की

1. रघुवंश—1/2

इच्छा करता हूँ। यथा—

क्वैतस्य राज्ञः सुमहच्चरित्रं
क्वैषा पुनर्मे धिषणाऽणुरूपा।
ततोऽपि मोहाद् भुजयैकयैव
मुग्धस्तितीर्षामि महासमुद्रम्।[1]

इति

जिस प्रकार कालिदास रघुवंशी राजाओं के गुणों से प्रेरित होकर रघुवंश महाकाव्य के निर्माण में प्रवृत्त हुए वैसे ही कवीन्द्र नयचन्द्र ने गुणों से प्रेरित होकर इस महाकाव्य का निर्माण किया। इसका अभिप्राय है कि प्रत्यक्ष में भी रघुवंश का प्रभाव निश्चित रूप से दिखायी पड़ता है। जैसे रघुवंश में कहा गया है—

रघुणामन्वयं वक्ष्णे तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः।।[2]

इसी तरह का भाव हम्मीर महाकाव्य के पद्य में स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है—

अतोऽस्य किंचिच्चरितं प्रवक्तुमिच्छामिराजन्यपुपूषयाऽहम्।
यदीयतत्तद् गुणगौरवेण विगाहय नुन्नः फिल कर्णजाहम्।।[3]

रघुवंश महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में कुमार रघु के जन्मकाल के सभी शुभ लक्षणों का वर्णन करते समय कालिदास ने कहा—

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुःसुखाः प्रदक्षिणीर्चिः हविरग्निराददे।
वभूव सर्व शुभशंसि तत्क्षणं भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्।।[4]

1. हम्मीर महाकाव्य—1/11
2 रघुवश—1/9
3 हम्मीर महाकाव्य—1/10
4. रघुवश—3/14

इसी प्रकार कुमार हम्मीरदेव के जन्म के समय भी सभी शुभ लक्षण विद्यमान थे। उन्हीं का उल्लेख कविवर नयचन्द्र ने इस प्रकार किया है—

दिशः प्रसादमासेदुः सुखसेव्यो ववौ मरुत्।
नभो निर्मलतां भेजे दिन कृत विद्युतेतमाम्।।[1]

रघुवंश में जिस प्रकार सूतिकागृह का वर्णन किया है उसी प्रकार यहाँ भी (हम्मीर महाकाव्य) सूतिकागृह का सौन्दर्य वर्णित है—

बालांगसंगरोचिर्भिरभितोऽपि प्रसृत्वरेः।[2]
अभ्युद्यत्सहस्त्रांकमिवासीत् सूतिकागृहम्।।

बालके हम्मीरदेव का शरीर चन्द्रमा के समान प्रतिदिन विकास को प्राप्त कर रहा था इसे देखकर जिस प्रकार के अपूर्व आनन्द की प्राप्ति उनके माता-पिता को हुई उसी प्रकार बालक रघु के माता-पिता आनन्दित हुए। जैसा कि हम्मीर महाकाव्य में कहा भी गया है—

मातापित्रोर्दृशोः सिंचन् स्वदर्शनसुधारसैः।
सौम्यमूर्तिरवर्धिष्ट सशशीव दिने-दिने।।[3]

रघुवंश महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग[4] में रघु के द्वारा विश्व विजय यज्ञ के अनुष्ठान का जिस प्रकार का वर्णन प्राप्त होता है उसी प्रकार का ललित वर्णन वीर हम्मीर देव के दिग्विजय यात्रा के वर्णन में प्राप्त होता है। इस प्रकार अनेक स्थलों पर **हम्मीर महाकाव्य** का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है।

हम्मीर महाकाव्य के वर्षा एवं बसन्त वर्णन में **ऋतुसंहार** काव्य का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है। प्रकृति वर्णन प्रसंग में चन्द्रमा, रात्रि, सूर्य

---

1 हम्मीर महाकाव्य—4/145

2 हम्मीर महाकाव्य—4/144

3. हम्मीर महाकाव्य—4/149

4 तुलना—रघुवंश के 3/32, 23 श्लोको के साथ

और नायिका आदि के वर्णन में **किरातार्जुनीयम**[1] और **शिशुपालवध**[2] महाकाव्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है।

नैषधचरित के ग्यारहवें सर्ग के दो श्लोकों का प्रभाव इस महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में दिखायी पड़ता है। यथा—

शस्त्रेषु शास्त्रेषु च लंकणपारं विलोक्य भूपालथ तं कुमारम्।
साम्राज्य भारं प्रवितीर्य तस्मै योगेन मातं व पुरुत्सराजं।।[3]

नाट्यशास्त्रकार भरत मुनि ने **नाट्यशास्त्र** के वर्ण्य विषयों का संकेत करते हुए कहते हैं कि—

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म यन्नाट्येऽस्मिन्न दृश्यते।।[4]

इस कारिका का स्पष्ट प्रभाव हम्मीरदेव में विविध शास्त्रो के पाण्डित्य प्रदर्शन करते समय **नयचन्द्र** ने इस पद्य में प्रदर्शित किया है—

न तच्छास्त्रं न तच्छस्त्रं न च तज्जनरंजनम्।
सदाशयाम्बुधे तस्य न यदभ्रमरायत।।[5]

हम्मीर महाकाव्य के **श्रृंगार संजीवन** नामक सप्तम सर्ग में सुरत वर्णन प्रसंग में सुरतक्रीड़ा की जो विशिष्ट पद्धति वर्णित है उस पर **वात्स्यायन** के **कामसूत्र** का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है। वह पद्य है—

शशीरवी सुरतेषु तथा चलत्कनकुण्डलकैतव कल्पितो।

---

1. तुलना—हम्मीर महाकाव्य के नवम् सर्ग के साथ रघुवंश महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग रघु के दिग्विजय वर्णन के साथ
2. किरातार्जुनीयम्—17
3. तुलना—हम्मीर महाकाव्य—2/77, नैषधचरित—11/1,2
4. नाट्यशास्त्र—1/116
5 हम्मीर महाकाव्य—4/151

मृगदृशः पुरुषायितमूर्जितं समभिवीक्ष्य झलज्झलिताविवा।।[1]

अनेक प्रकार से सप्तम सर्ग के श्लोक 90 मे **कामसूत्र** का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है—

प्रियतमे पुरुषायितहलाघवं किमपि पश्यति वक्रिटकनधरम्।
असह्या रतिमुज्झितुमन्मया गृहमणिः शमितः कुसुमैर्हिर्मया।।[2]

हम्मीर महाकाव्य के अष्टम सर्ग में राजा श्री जैत्रसिंह ने अपने अवसान कोसमीप जानकर हम्मीर के लिए जो शिक्षा प्रदान[3] की वहाँ महाकवि बाणभट्ट द्वारा विरचित **कादम्बरी** के **शुकनासोपदेश** का प्रभाव सम्यक् रूप से दृष्टिगत होता है। जैसे जैत्रसिंह ने कहा है कि—

स्त्रीणां श्रियां वा क्वचनापि मा गा विश्वाससमासां क्षणभंगुराणाम्।
रक्ता विरक्ता सतामपि स्युः पदे पदेऽमूर्विपदे यदाशु।।[4]

आगे उन्होंने उपदेश दियाकि—हे नरेश, साम्राज्य को प्राप्त करने पर उत्तम लोग विनय का परित्याग नहीं करते। क्योंकि ऐसा करने पर कुल का नाश[5] होता है। राजा को विषयों के प्रति अनुराग नहीं रखना चाहिए। जिस राजा के इन्द्रियाँ वश में नहीं होती है उसका विनाश शीघ्र होता है।[6] जहाँ पर बुद्धि के प्रयोग से कार्य सिद्ध हो जाय वहाँ बल प्राप्ति नहीं करना चाहिए। जो शौर्य के साथ बुद्धि एवं बल का प्रयोग करते हैं वे सर्वत्र सिद्धि प्राप्त करते हैं।[7]

---

1 हम्मीर महाकाव्य—7/83, और कामसूत्र
2. हम्मीर महाकाव्य 7/90 तुलना कामसूत्र से।
3. तुलना—कादम्बरी के शुकनासोपदेश के साथ जैत्रसिह के उपदेश का
4 हम्मीर महाकाव्य—8/73
5. हम्मीर महाकाव्य—8/74
6 हम्मीर महाकाव्य—8/80
7. हम्मीर महाकाव्य—8/84

अपने साम्राज्य में आये हुए शत्रु का भी सत्कार करना चाहिए।[1] जिस प्रकार से प्रजा को कष्ट न हो उस तरहका ग्रहण करना चाहिए।[2] सब कुछ नष्ट होने पर भी कुल विरोधी कार्य नहीं करना चाहिए। क्या दुर्योधन के सदृश सौ भाइयों वाले राजा ने अन्त में कष्ट से मृत्यु नहीं प्राप्त किया?[3]

हम्मीर के लिए राजा जैत्रसिंह द्वारा प्रदत्त उपदेश में राजनीति[4] से सम्बन्धी महत्वपूर्ण तथ्य दिखायी पड़ते हैं। अनेक प्रकार से राजनीति शास्त्र का भी प्रभाव यहाँ निश्चित रूप से देखा जा सकता है।

जैत्रसिंह राजनीतिक तत्वों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि स्वतः कुलीन लोग दूसरों पर आश्रित होकर वृद्धि को नहीं प्राप्त करते क्योकि जड़ होने पर भी वट वृक्ष वृद्धि प्राप्त करने पर राज भवन को विनष्ट करता है। मन्त्रियों में प्राचीन मन्त्री का ही ग्रहण करना चाहिए। अपने विरोधी लोगों को कुछ समय से विश्वासपात्र होने पर भी प्रधान पद पर नहीं नियुक्त करना चाहिए क्योंकि अवसर प्राप्त करने पर इनमें छल करने की प्रवृत्ति होती है।[5]

स्त्रियों में बायीं आँख का स्फुरण शुभ फलदायक होता है इससे प्रिय समागम शीघ्र होगा इसका स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है। इस तथ्य का वर्णन **शुकनास** में हुआ है। उसके अनुसार इस प्रकार की विचारधारा संसार में प्रसिद्ध है। इसी तथ्य को **कविवर नयचन्द्र** ने निम्न पद में उद्घाटित किया है—

प्रियसमागमसूचकवामदृक्स्फुरणतो मुदिताशयमाऽन्यया।

1. हम्मीर महाकाव्य—8/86
2 हम्मीर महाकाव्य—8/87
3 हम्मीर महाकाव्य—8/90
4 कौटिल्यीय अर्थशास्त्र
5. हम्मीर महाकाव्य—8/101

हृदयनाथं मनु प्रहिताऽपि किंनिज सखी न पथः स्म निवर्त्यते।।[1]

मृच्छकटिक में शर्विलक के कथन के द्वारा कवि ने स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है कि स्त्रियाँ और लक्ष्मी विश्वास योग्य नहीं होती है। इन पर जो लोग विश्वास करते हैं वे मूर्ख होते हैं—

अपिण्डतास्ते पुरुषामतामे ये स्त्रीषु चश्रीषु च विश्वसन्ति।[2]

इसी तथ्य को **जैत्रसिंह** के सरल वाणी में निम्नलिखित कथन में छाया रूप में देख सकते हैं। यह उक्ति **हम्मीरदेव** के प्रति कही गयी है कि—

स्त्रीणां श्रियां वा क्वचनापि मा गा विश्वासमासां क्षणभंगुराणाम्।
रक्ता विरक्ताश्च सतामपि स्युः पदे पदे मूर्विपदे यदाशु।।[3]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह सुस्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि **हम्मीर महाकाव्य** में उसके पूर्ववर्ती अनेक ग्रन्थों का यथावसर विविध विषयो के वर्णन प्रसंग में प्रभाव है। महाकवि अपनी प्रतिभा तथा कौशल से पूर्ववर्ती विद्वानों तथा महाकवियों चमत्कार धायक भावो का प्रकाशन करके अपनी रचना की चारुता को संवर्धित किया है इसमें संशय नहीं है।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—7/50

2 मृच्छकटिक—4/12

3 हम्मीर महाकाव्य—8/73

षष्ठम अध्याय

रसादि दृष्टि से हम्मीर महाकाव्य की मीमांसा

क. रसादि विमर्श

ख. दोष

ग. गुण

घ. अलंकार

ङ. छन्द

च. सूक्तियाँ

रसादि विमर्श

सहृदयों के हृदय को आह्लादित करने वाले शब्द और अर्थ रूपी शरीर वाले काव्य का प्रयोजन क्या है इसके विवेचना के अवसर पर आचार्य **भरत मुनि**[1] **आनन्द वर्धन**[2] और **मम्मट**[3] आदि ने सद्यः पर निवृत्ति को ही काव्य का प्रमुख प्रयोजन स्वीकार किया है। अतः वाग्देवतावतार आचार्य **मम्मट** ने **काव्य प्रकाश** में कहा है[4]—समस्त प्रयोजनों में मुख्य काव्य के पढ़ने या सुनने के पश्चात् तुरन्त ही रस के आस्वादन से अलौकिक आनन्द की अनुभूति होती है। वह विलक्षण आनन्द रस जन्य होता है। इसलिए काव्य का प्राणधायक तत्व रस को माना गया है। **नाट्यशास्त्रकार** ने रस के महत्व को प्रदर्शित करने के लिए स्पष्ट शब्दो में कहा है—

नति रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।[5]

अग्निपुराणकारेणापि निगिदितम्

वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।[6]

यद्यपि **महिमभट्ट ध्वनिसिद्धान्त** के प्रबल विरोधी आचार्य थे किन्तु उन्होने भी रस को ही काव्य के आत्मतत्व के रूप मे सादर स्वीकृत किया है।

---

1 दुःखार्ताना प्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्ति जननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।

नाट्यशास्त्र—1/114

2 तेन ब्रूम. सहृदयमनः प्रीतये तत्स्वरूपम्।

ध्वन्यालोक की कारिका

3 काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदेशिवेतरक्षतये।
सघ पर निर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।

काव्यप्रकाश—2

4. काव्यप्रकाश—प्रथम उल्लास पृ0 8-9 (वामनीटीका)

5 नाट्यशास्त्र—6

6. अग्निपुराण—337/33

इन्होंने कहा है—

काव्यस्थात्मनि संज्ञिनि रसादिरूपेनकस्य चिद्विमतिः।[1]

आनन्दवर्धन में तीन प्रकार की ध्वनियों को काव्य के आत्मतत्व के रूप में स्वीकार किया है, परन्तु उनमें से रसध्वनि की ही प्रधानता प्रतिपादित की है। स्वयमेव कहा है—वस्तुतः रस ही काव्य की आत्मा है।

इस कारण वाच्य और वाचक शब्दादि की रसादि विषयक औचित्य की दृष्टि से जो योजना[2] करना है, वही महाकवि का मुख्य कर्तव्य है। वसन्त ऋतु में वृक्षों के समान काव्य में रस पाकर पूर्वदृष्ट सारे पदार्थ भी नये से प्रतीत होने लगते हैं।[3] अतएव उन्होंने **ध्वन्यालोक** मे पुनः कहा—

रसादिमय एकस्मिन कविः स्यादवधानवान्।[4]

वस्तुतः आनन्दानुभूति ही रसानुभूति है और आनन्द ही रस है। भावानुभूति तो रसानुभूति का प्रथम सोपान है।

किसी भी महाकाव्य में श्रृंगार, वीर, शान्त में से कोई रस अङ्गी होता है और अन्य सभी रस अंग के रूप में वर्णित[5] है। **हम्मीरमहाकाव्य** में श्रृंगार वीर रस से अद्‌भुत है।

स्वयं नयचन्द्र ने इस प्रकार कहा है—

---

1. व्यक्तिविवेक—1/26
2. ध्वन्यालोक—3/32
3 दृष्टपूर्वा अपि ह्यर्थाः काव्ये रसपरिग्रहात्।
सर्वे नवाइवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः।।

ध्वन्यालोक—4/4

4. ध्वन्यालोक—4/4
5 साहित्य दर्पण—6/317

तद्भ्रूचापलकेलिदोलितमनाः श्रृंगारवीराद्भुतं।

चक्रे काव्यमिदं हम्मीरन्तपटेर्नव्यं नयेन्दुः कविः।[1]

तथापि श्रृंगार एवं वीर रस के मध्य में वीर रस की ही यहाँ प्रधानता है। महाकाव्य का नायक वीरवर हम्मीर है। इसलिए वीर रस को ही इस महाकाव्य अङ्गी रस मानना उचितहै। इसमें तृतीय[2] में पृथ्वीराज व सहाबदीन के मध्य युद्ध, नवम् सर्ग में हम्मीरदेव का दिग्विजय वर्णन, उल्लूगखान और भीम सिंह के युद्ध के प्रसंग में, दशम् सर्ग में उल्लूगखान के साथ हम्मीर का युद्ध तथा बारहवें तेरहवें सर्ग में सर्वत्रवीर रस का सम्यक् परिपाक दिखायी पड़ता है।

वीररस

वीर रस के चार[3] भेद अलङ्कार शास्त्र में स्वीकार किये गये हैं। उनमें से युद्धवीर का यहाँ बहुलता से वर्णन प्राप्त होता है। अन्य दान-धर्म दयावीरो का भी आंशिक वर्णन **हम्मीर महाकाव्य** में प्राप्त होता है। दानवीर का उदाहरण इस प्रकार है—

राधेयः कवचं ददौ शिबिरहो मांसं बलिर्मेदिनीं

जीमूतोऽर्धवपुस्तथाऽपि न समा हम्मीर देवे न ते।

येनोच्चैः शरणागतस्य महिमासहेर्निमित्तं क्षणा

दात्मा पुत्र कलत्रभृत्यनिबहो नीतः कथाशेषताम्।।[4]

हम्मीरदेव ने शरणागत महिमासाहि की रक्षा के लिए स्त्री पुत्र परिजन आदि का सादर परित्याग किया। यहाँ हम्मीर देव का अपने परिवार के साथ

---

1 हम्मीर महाकाव्य—14/43

2 हम्मीर महाकाव्य का तीसरा सर्ग

3 साहित्य दर्पण—34/234

4. हम्मीर महाकाव्य—14/17

प्राण त्याग का उत्साह स्थायी भाव महिमासाहि का आलम्बन विभाव, जीमूत आदि का त्याग उद्दीपन विभाव, महिमासाहि की रक्षा के लिए किये गये प्रयास अनुभाव, क्षमा गर्व आदि संचारी भाव है।

धर्मवीर का उदाहरण—

द्विषामपि स्त्राच्छरणागतानां रक्षासु मन्दोऽपि निबद्धकक्षः।
तद्मुद्गलान् नो ननु याचमांनौ न किं त्वदीशौ जऽधीवतंसौ।।[1]

अल्लावदीन के दूत मोल्हण ने रणस्तम्भपुर दुर्ग में आकर सभा में अल्लावदीन का सन्देश सुनाया कि हम्मीर यदि राज्य चाहते हो स्वर्ण हाथी अश्वों के साथ-साथ अपनी पुत्री देकर मेरे आदेश का पालन करो अथवा चारों मुगलों को देकर मैत्री करो अथवा तुम्हारा भगवान ही मालिक होगा। इसे सुनकर क्रोधित हम्मीर देव बोले कि, शरणागत की रक्षा करना हम क्षत्रियों का परम कर्तव्य है। यहाँ महिमा साहि आलम्बन विभाव, अल्लावदीन का सन्देश उद्दीपन विभाव, क्रोध के कारण भृकुटी टेढ़ा होना आदि अनुभाव उग्रता गर्व आदि संचारी भाव है।

दयावीर का उदाहरण इस प्रकार है—

वासांसि दत्वा सुरलोकलोभि
महांसि तस्मा इति राङ् मुमोच।
हतेऽत्र की नाम पुनर्विधित्सु
रमायया संगररंगमेवम्।।[2]

चाहमान नरेश पृथ्वीराज ने शकेश सहाबदीन को युद्ध में सात बार पराजित किया था, किन्तु दया के कारण उसको मृत्यु दण्ड उन्होंने नही

1. हम्मीर महाकाव्य—11/67
2 हम्मीर महाकाव्य—3/45

दिया। एक बार सहाबदीन के दुराचार से पीड़ित राजा लोग पृथ्वीराज के समीप आकर निवेदन किये कि यह दुष्ट अकारण ही हमको पीड़ित करता है। अतः श्रीमन् इसको पकड़कर कारागार में बन्द कर दें। अन्यथा हमारा जीवन दुष्कर होगा। इतना सुनकर पृथ्वीराज ने मयूरबन्ध के द्वारा[1] सहाबदीन को बांध कर अपनी राजधानी में लाने की प्रतिज्ञा किया। उसी प्रतिज्ञा के अनुसार शक राज को पकड़कर राजधानी ले आये। इसके पश्चात् उसे अत्यन्त सुन्दर वस्त्र प्रदान कर छोड़ दिया, मारा नहीं। उन्होंने विचार किया कि यदि यह मर जाएगा तो मेरे साथ युद्ध कौन करेगा? अतः दया भाव से सहाबदीन को छोड़ दिया। इस पद्य में पृथ्वीराज का शत्रु शकराज के प्रति दया का उत्साह स्थायी भाव, विभावादि से परिपोषित होकर दया वीर रस की निष्पत्ति होती है।

युद्ध वीर—इस महाकाव्य में युद्ध वीर के बहुत से उदाहरण प्राप्त होते हैं—

यथा—

रे रे हम्मीर वीरस्त्वमसि परमसौ साम्प्रतं[2] वीरता ते
नूनं व्यक्तीभवित्री मम नयनपथे प्राप्तपान्थव्रतस्य
भ्राम्यत्तुच्चैर्वनान्ते मद्मलिनकपोलस्थलो हन्त, दन्ती

हम्मीर द्वारा अपमानित भोज जब अल्लावदीन के पास गया, तो उसे देखकर अल्लावदीन[3] ने हम्मीर को पराजित करने के विषय में पूछा। भोज ने कहा कि हम्मीर साधारण वीर नहीं है, अतः उसे सरलता से जीता नहीं

1. हम्मीर महाकाव्य—3/15
2. हम्मीर महाकाव्य—10/86
3. हम्मीर महाकाव्य—10/14

जा सकता है। भोज के मुख से हम्मीर की शौर्य की प्रशंसा सुनकर क्रोधित अल्लावदीन पूर्वोक्त बात को कहा। इस श्लोक में हम्मीर आलम्बन विभाव, हम्मीर के शौर्य को सुनना उद्दीपन विभाव, ओष्ठस्फुरण आदि अनुभाव, गर्व आदि संचारी भाव है। इनसे परिपुष्ट होकर सहृदय के हृदय में विद्यमान उत्साह स्थायी भाव युद्ध वीर रस के रूप में परिणत होता है।

अल्लावदीन अपने भाई निसुरित खान के मरने के पश्चात् हम्मीर को किसी भी प्रकार वश में करने के लिए या फिर मैत्रीके लिए उसके समीप आया। वहाँ आकर हम्मीर से बोला कि—हे हम्मीर[1] मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ अतः युद्ध छोड़कर अपना अभीष्ट मांगो। मैं तुम्हें देना चाहता हूँ। इतना सुनकर स्वाभिमानी हम्मीर दो दिन तक युद्ध करने की इच्छा प्रकट किया और कुछ भी नहीं माँगा—

क्षत्रोत्तमोऽथ निजगाद यद्यदस्ततर्हि प्रयच्छ समरं दिनद्वीयम्।
आयोधनादपरमत्र दोष्मतां नो वांछितं किमपि वल्गु वल्गति।।[2]

यह पद्य युद्ध वीर उचित उदाहरण है। यह शत्रु शकेन्द्र अल्लावदीन आलम्बन विभाव, अल्लावदीन की उक्ति उद्दीपन विभाव, क्रोध के कारण ओठ आदि का स्फुरण अनुभाव, आवेग गर्व आदि संचारी भाव इन सभी से परिपुष्ट संचारी भाव उत्साह युद्धवीर रस से सहृदयों के हृदय को आनन्दित करता है। इसी प्रकार रतिपाल आदि के साथ उल्लूगखान व निसुरत खान का युद्ध वर्णन में युद्ध वीर के बहुत से स्थल दिखायी पड़ते हैं। कवीन्द्र नयचन्द्र निश्चित रूप से प्रतिभा धनी थे, क्योंकि युद्ध वर्णन मे भी कहीं-कहीं अतिशयोक्ति प्रदर्शन किया है। इसके अतिरिक्त नवम् सर्ग में हम्मीरका दिग्विजय वर्णन, उल्लूखान के साथ भीम सिंहका युद्ध वर्णन व एकादश,

1. हम्मीर महाकाव्य—11/5
2. हम्मीर महाकाव्य—11/6

द्वादश, त्रयोदश[1] अध्याय सर्गों में युद्ध वर्णन में वीर रस की भली-भाँति अभिव्यक्ति हुई है। आक्रमण परायण अल्लावदीन तथा विजय के लिए प्रस्थान की हम्मीर देव की सेना के वर्णन में भी वीर रस का सम्यक् परिपाक दिखायी पड़ता है।

इत्थं यथायुक्तिकृतप्रतिज्ञा वीरा रणोत्साहलसच् हरीराः।[2]
हम्मीर-हम्मीर इति ब्रवाणः शकाधिपीये शिविरे निपेतुः।।

इस पद्य में अल्लावदीन आलम्बन विभाव, उसकी विशाल सेना उद्दीपन विभाव, युद्ध में शत्रु को विजित करने के लिए तत्पर हम्मीर के सैनिक, हम्मीर की जयघोष आदि अनुभाव, आवेग, गर्व इत्यादि संचारी भाव है। इन सबसे परिपोषित होकर उत्साह नामक स्थायी भाव का वीर रस परिणाम है।

श्रृंगार रस

हम्मीर महाकाव्य में अंगी रस वीर रस के वर्णन के पश्चात् **श्रृंगार रस** का द्वितीय स्थान है। श्रृंगार रस ही चिर काल से रसराज के रूप में प्रसिद्ध है। अतः चाहे जिस किसी भी रस की प्रधानता हो परन्तु श्रृंगार के बिना तो प्रायः कोई भी काव्य, महाकाव्य, नाटक आदि पूर्ण नहीं होते हैं। इसलिए इस महाकाव्य में भी श्रृंगार रस को आदर प्राप्त है। श्रृंगार रस का लक्षण करते हुए **आचार्य विश्वनाथ** ने साहित्य दर्पण में कहा है—

श्रृंग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमनहेतुकः।
उत्तम प्रकृतिः प्रायो रसः श्रृंगार उच्यते।।[3]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—11-13
2 हम्मीर महाकाव्य—11/40-41
3. साहित्य दर्पण—3/183

नायिका, नायक आदि उद्दीपक, प्रेमालाप का मण्डन ऋतु वर्णन, वन-उपवन, जल क्रीड़ा चन्द्र आदि श्रृंगार रस के उद्दीपन विभाव, नायिका का कटाक्ष निक्षेप आदि अनुभाव, असूया, धृति, स्मृति आदि संचारी भाव होते हैं।

श्रृंगार रस के महत्व को ध्वन्यालोक[1]कार आनन्दवर्धन ने मुक्त कण्ठ से प्रतिपादित किया है। कहा भी है—

श्रृंगार एव मधुरः परः प्रह्लादनो रसः।
तन्मयं काव्यमाश्रित्य माधुर्यं प्रतितिष्ठति॥

निश्चित रूप से श्रृंगार मधुर और परमानन्द का जनक है। रसराज श्रृंगार के प्रयोग में **नयचन्द्र** अत्यन्त निपुण और सावधान दिखायी पड़ते हैं। इसलिए उन्होंने कहीं भी श्रृंगार के स्थल पर कठिन यमक आदि अलंकारों का प्रयोग नहीं किया है। अपितु माधुर्य व्यञ्जक समास रहित पदो का ही प्रयोग किया है। नयचन्द्र के श्रृंगार वर्णन में **कालिदास** का प्रभाव होने पर भी उनकी मौलिकता सुरक्षित है।

प्रेम ही अवसर प्राप्त कर रति भाव के रूप में परिणत होता है। एक प्रकार का प्रेम **रामायण** में सीता राम का वर्णित है। उनका प्रेम सात्विक और सर्वोत्कृष्ट है। यह सुख-दुःख दोनों मिला-जुला स्वरूप है। द्वितीय प्रकार का प्रेम **अभिज्ञानशाकुन्तल** में वर्णित है कि—गान्धर्व विवाह आदि दिखायी पड़ता है। तृतीय कोटि का प्रेम राजाओं के विलास में दृष्टिगत होता है। चतुर्थ कोटि का प्रेम गुण के सुनने, चित्र दर्शन स्वप्न दर्शन आदि से होता है। **हम्मीर महाकाव्य** में तृतीय, चतुर्थ कोटि का प्रेम प्राप्त होता है।

---

1 ध्वन्यालोक—2/8

श्रृंगार दो प्रकार[1] का होता है—सम्भोग और विप्रलम्भ श्रृंगार। इस महाकाव्य में दोनों प्रकार के श्रृंगार का यथावसर मनोरम वर्णन किया गया है। नयचन्द्र ने स्पष्ट रूप से कहा है कि काव्य का प्रधान रस चाहे जो हो परन्तु श्रृंगार रस का वर्णन परम आवश्यक होता है। जिस प्रकार से नमक विहीन भोजन में स्वाद नहीं होता है उसी प्रकार श्रृंगार रस के बिना आस्वाद योग्य काव्य नहीं होता है।

रसो स्तुयः कोऽपि परं स किंचिन्
नास्पृष्ट श्रृंगार रसो रसाय।
सप्तप्यहो पाकिम पेशलत्वे
न स्वादु भोज्यं लवणेन हीनम्।।[2]

कृष्णगच्छीय नयहंस भी कहते हैं—

लालित्यममरस्येव श्रीहर्ष वक्रिमा।
नयचन्द्रकवेः काव्ये दृष्टं लोकोत्तरं द्वयम्।।

हम्मीर महाकाव्य में लालित्य के साथ वक्रिमा अत्यन्त सुशोभित होती है।

श्रृंगार रस में शकार षकार का सरेफ में संयोग करके और ढकार का प्रयोग बहुलता से नहीं किया है क्योंकि ये श्रृंगार रस की अभिव्यक्ति में बाधा उत्पन्न करते हैं। इसी बात को आनन्दवर्धन[3] ने इस प्रकार कहा है—

शषौ सरेफ संयोगौ ढकारश्चापि भूयसा।
विरोधिनः स्यु श्रृंगारे तेन वर्णा रसच्युतः।।

---

1. काव्य प्रकाश—चतुर्थ उल्लास पृ0 सं0 100
2 हम्मीर महाकाव्य—14/36
3 ध्वन्यालोक—3/3

सुकवि नयचन्द्र ने श्रृंगार रस का वसन्त वर्णन, जलक्रीड़ा वर्णन मे अधिक प्रयोगकिया है। नायक मानिनी नायिका को देखकर कहता है कि हे प्रशास्यवदना, यह मधुर अवसर निरर्थक ही चला जा रहा है। अतः तुम मान करके व्यर्थ में अपना अहित क्यों करती हो। यह तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। इसी तथ्य को इस श्लोक में इस प्रकार कहा गया है—

अथि पश्य शेश्यवदने मधुरा ममधुवासरा झटिति यान्ति कथम्।
अधुनाऽपि मानमिममादधती स्वपराहितं किम् चिकीर्षसिहा।।
इतिकश्चन प्रकुपितां दयितामुनीय योच्चिदनुनीतिचणः।
उपगूहनं प्रतिपदं वितरन्नचलन्मधूत्सवकृते सुकृती।।[1]

यहाँ नायिका आलम्बन विभाव, वसन्तागम उद्दीपन विभाव, मधुर वचन, नायिका का अनुनय आदि अनुभाव, हर्ष मद आदि संचारी भाव है। इन सभी से परिपुष्ट स्थायी भाव का परिणाम सम्भोग श्रृंगार है। कोई नायक लता के अग्र भाग को पकड़ कर नायिका के शरीर में नाभि, जघन आदि में नख से शिख तक स्पर्श कराता है तो उस नायिका को अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। यहाँ स्त्रियों के स्वाभाविक कुट्टमित नामक भाव का **प्रकाशन** कवि ने किया है। जैसा कि **साहित्यदर्पणकार**[2] ने कहा है—

केशस्तनाधरादीनां ग्रहे हर्षेऽपि सम्भ्रमात्।
आहुः कुट्टमितं नाम शिरः करविधूननम्।।

ज्येष्ठ और कनिष्ठ नायिका को एक ही समय में पाकर नायक इधर-उधर देखता है। इस प्रकार एक नायिका को पाकर धूर्त नायक दूसरी नायिका के प्रति भी अनुराग प्रदर्शित करता है। इसी का श्रृंगार पूर्ण मनोरम वर्णन यहाँ हुआ है—

---

1. हम्मीर महाकाव्य—5/47-48
2. साहित्य दर्पण—3/103

अपि पश्य-पश्य लकुचे सकुचे कथं भ्रमति भृंग युवा।
इति प्रविलोम्य दयितामितरोनिपपौ पदां सुचिरमर्द्धदृशा।।[1]

कोई नायक नायिका के उरोज को कुसुमस्तवक मानकर सानन्द ग्रहण करता है—

दयितस्य वृक्षमधिरुढ़वतः पदमाशु पल्लववधिया विघृतम।
न चकर्षनैव च मुमोच परा तदवाप्तिजातपुलक प्रसरा।।[2]
अपि पश्यतोऽपि कुसुमस्तवकः कव गतो मयेति कि तोक्ति परः।
करसाद् विधाय दयितोरसिजं निजगाद लब्धमिति कोऽपि हसन्।।

नयचन्द्र ने ऊर्ध्वसुरत क्रीड़ा का अत्यन्त विस्मयकारी वर्णन किया है— जैसे

कामिन्याः कुसुमानिचेतुमधिरोहन्त्यास्तरुस्क-धकं
भूमौ स्थायिनि दक्षिणे पदतले वामे च शाखास्पृशि।
कृत्वा किंचन कैतवं विनमितोऽधोनाभिमूलं परो
दृष्ट्वोदीरितकाम ऊर्ध्वसुरते वांछामतुच्छां दधौ।।

जलक्रीड़ा के वर्णन में तो इस महाकाव्य के प्रत्येक पद में श्रृंगार रस का साम्राज्य दिखायी पड़ता है। **जैत्रसर** के निर्मल जल में नायिका व नायक के जलक्रीड़ा को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे स्वयं रति एवं कामदेव ही जलक्रीड़ा कर रहे हो।

वारिणि प्रतिनिधिकपदेशाद् त्यत्ययेन मदनश्च रतिश्च।
तत्तदाप्तरुचिरत्वविशेषौ संश्रिताविव वधूं च वरं च।।[3]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—5/64
2 हम्मीर महाकाव्य—5/57-59
3. हम्मीर महाकाव्य—6/28

चंचललोचनानामंगनानाम् अधर भागाद्
नवयावकरागः वारिभिः दूरी भूतस्तथापि तासां
सौन्दर्ये काचिदपि न्यूनता नागता यतः कान्त
निहितैः रदनांकैः तत्सौन्दर्ये वृद्धिः जाता।[1]

कामी लोग रति जनित रस की अपेक्षा आत्मजनित रस को तिरस्कृत करते हैं। क्योंकि आत्मजनित रस के आस्वादन से कोई एकव्यक्ति योगविद होता है किन्तु रति जनित रस से नायक-नायिका दोनों को विलक्षण सुख का अनुभव होता है। अतः उसकी विशिष्टता सुस्पष्ट है। इस तथ्य निम्न श्लोक में कवि ने कहा है—

रतिरसं परमात्म रसाधिकं कथमयी कथयन्तु न कामिनः।
यदि सुखी परमात्मविदेककौ रतिविदौ सुखिनो पुनरप्युभौ।।[2]

काण्डफलतामनयत्

मदनोधुनापि परदेशजुषां हृदि नष्टशल्यमभिहन्तुमिव।[3]
कुसुमानि वृन्तसुषिराणि भृंश विरचय्य काण्डफलताभनयत्।।

करुण रस

अलङ्कारशास्त्र में आचार्य मम्मट आदि ने श्रृंगार-हास्य रस के पश्चात् प्रायः करुण रस का विवेचन किया है। इष्टनाश, अनिष्ट की प्राप्ति का जहाँ वर्णन होता है, वहाँ स्थायी भाव शोक तथा रस करुण होता है, यहाँ शोच्य वस्तु आलम्बन विभाव दाह आदि अवस्था उद्दीपन विभाव, दैवनिन्दा, क्रन्दन आदि उच्छवास प्रलाप आदि संचारी भाव होते हैं।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—6/46

2 हम्मीर महाकाव्य—7/104

3. हम्मीर महाकाव्य—5/16

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुसार—

इष्टनाशादनिष्टाप्तेःकरुणाख्यो रसो भवेत्।
धीरैः कपोतवर्णोऽयं कथिता यमदैवतः॥
शोकोऽत्रस्थायी भावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम्।
तस्य दाहादिकावस्था भवेदुद्दीपनं पुनः॥
अनुभावा दैवनिन्दा भूयातक्रन्दितादयः।
वैवर्ण्योच्छ्वासनिःश्वासस्तम्भप्रलपनानि च॥
निर्वेदमोहापस्मार व्याधिम्लानि स्मृतिघ्रमाः।
विषाद जडतोन्मादचिन्ता या व्यभिचारिणः॥[1]

हम्मीर महाकाव्य में महाराज जैत्रसिंह की मृत्यु के पश्चात् हम्मीर देव के विलाप में करुण रस का परिपाक् दिखायी पड़ता है। अश्रु पूरित हम्मीर देव अपने पिता के वियोग में विरलाप करते हुए कहते हैं—

तातेति तातेति वचः प्रघोष शुष्यद्गलस्यापि ममावनीश।
यद्दर्शनं प्रददासि तत् का तवौचिती संगतिमंगतीभयम्॥

यहाँ मृत जैत्रसिंह आलम्बन विभाव क्रन्दन व उनका दाहादि विषयक चिन्तन अनुभाव, उच्छवास, निःश्वास प्रलाप आदि संचारी भाव है। इन सभी से परिपोषित शोकस्थायी भाव वाले करुण रस का आस्वादन होता है। इस प्रकरण में हम्मीर महाकाव्य के अष्टम सर्ग के 119 श्लोक से लेकर 123 श्लोक तक करुण जल धारा प्रवाहित होती है। इसी प्रकार महिमा साहि के वर्णन में भी करुण रस का सम्यक परिपाक दिखायी पड़ता है।

रौद्र रस

यद्यपि कविवर नयचन्द्र ने इस महाकाव्य में वीर, व श्रृंगार रस का

---

1. साहित्य दर्पण—3/222-225

अद्भुत प्रयोग किया है किन्तु इस महाकाव्य केसम्यक् अवलोकन सेप्रतीत होता है कि वीर रस एवं श्रृंगार रस के समान ही रौद्र रस का भी प्रयोग ब्राहुलता से किया है। रौद्र रस के विषय में आचार्य **विश्वनाथ** ने **साहित्य दर्पण** में इस प्रकार कहा है—

रौद्रः क्रोध स्थायी भावो रक्तो रुद्राधिवतः[1]
आलम्बनमरिस्तत्र तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।।
मुष्टिप्रहारपातनविकृतच्छेवावदारणैश्चैव।
संगमसम्भ्रमाद्यैरसस्य दीप्तिर्भवेत प्रौढ़ाः।।
भ्रूविभंगोष्ठानिर्दशं वाहुरस्फोटनर्तजनाः।
आत्मावदानकथनमायुधोत्क्षेपणानि च।।
अनुभावस्तथाक्षेपक्रूर सन्दर्शनादयः।
उग्रता वेगरोमांचस्वेदवेपथवो मदाः।।
मोहामर्षादयस्तत्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः।।

इति

रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। यहाँ आलम्बन विभाव शत्रु ग्रहण, उसकी चेष्टा उद्दीपन विभाव, मुष्टि प्रहार भ्रूभंग-बाहु स्फोटन आदि अनुभाव उग्रता-वेग-मद आदि संचारी भाव है।

हम्मीर महाकाव्य में शकराज सहाबदीन के साथ युद्ध को तत्पर वीर प्रवर पृथ्वीराज के वर्णन में रौद्र रस नदी की तरह प्रवाहित होता है। पृथ्वीराज युद्ध में अपने सैनिकों के अत्यधिक विनाश को देखकर सहाबदीन का वध करने को व्याकुल हो जाते हैं। इसी दृश्य का वर्णन कवि ने अनेक प्रकार से किया है—

---

1 साहित्य दर्पण—3/227-231

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य चाह[1]
मनोऽप्यधावद् धृततीव्रवेगः।
अन्तः स्फुरत्क्रोधकृशानुकीला
नुकारिरागारुणदारुणाक्षः।।

इस पद्य में शत्रुसहाबदीन आलम्बन विभाव, खड्ग ग्रहण करके युद्ध में दौड़ना उद्दीपन विभाव, भ्रू विभंग ओष्ठ दशन आदि अनुभाव, आवेग क्रूरता दर्शन आदि संचारी भाव है। इन सभी से परिपुष्ट होकर क्रोध नामक स्थायी बाव रौद्र रस में परिणत होता है।

करोदरोद्भासिमहासिदण्ड
च्छलोल्लसत्पुष्करदुर्निरीक्षौ।
अभ्युद्यतौ वन्यगजौ किमेतौ
पितर्क्य माणविति वीरवारैः।।[2]

इस पद्य में पृथ्वीराज व सहाबदीन के मध्य हुए युद्ध का सजीव चित्रण दिखायी पड़ता है। वे दोनों एक-दूसरे को वन्यगज की तरह क्रोध से मारने को तत्पर है यह पढ़कर स्वयं ही सहृदयों के हृदय में रौद्र रस प्रवाहित होता है।

म्लेच्छराज सहाबदीन ने छल द्वारा पृथ्वीराज को पकड़कर दुर्ग के अन्दर ले आया और चाहमानवंशीय सूर्य पृथ्वीराज दिवंगत हो गये। उन महावीर के मृत्यु की सूचना प्राप्त कर उनके मित्रराजा[3] शोकाकुल हो गये। पृथ्वीराज के पुत्र राजा हरिराज ने पिता का दाह-संस्कार किया।

इस प्रसङ्ग में करुण रस का मनोरम वर्णन प्राप्त होता है। जैसे—

---

1. हम्मीर महाकाव्य—3/40
2. हम्मीर महाकाव्य—13/163-167
3 हम्मीर महाकाव्य—4/73

अधिगत्य भूपतिविपत्तिमिति

स्त्रवदस्त्रमिश्रनयनस्तदनु।

पिहितौर्ध्वदैहिक इलामखिला

स्वकरे चकार हरिराजनृपः॥[1]

इस महाकाव्य के **अल्लावदीनमर्षण** नामक दशम[2] सर्ग में रौद्र रस के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। भोज की समर में दुर्दशा सुनकर क्रोधित अल्लावदीन ने हम्मीर को उद्देश्य करके कहा—

कः कण्ठीरवकण्ठकेसरसतां स्प्रष्टुं पदेनेहते[3]

कुन्ताग्रेण क्षितेन कश्चनयने कण्डूयितुं कांक्षति।

कश्चाभीप्सति भोगिवक्त्रकुहरे मातुं च दन्तावलीं

कोवा कोपयितुं न वांछति कुधीरल्लावदीनं प्रभुम्॥

इस पद्य में हम्मीर आलम्बन विभाव, हम्मीर के वीरों रतिपाल आदि द्वारा भोज की एवं उल्लूखान की दुर्दशा उद्दीपन विभाव, भ्रूबंग, ओष्ठ निदर्शन आदि अनुभाव, अमर्षा वेग आदि संचारी भाव, इन सबसे परिपुष्ट होकर क्रोध स्थायी भाव का परिणाम रौद्ररस है।

रौद्र रस का मनोहारी वर्णन कवि ने इस श्लोक में किया है—

तावद् गर्जन्तु जाग्रन्मदभरतलाश्चंचला वीरमाद्याः[4]

वीराः प्रत्यर्थिवीरावलिदलनकलाकेलिकण्डूलहस्ता।

ज्यारावैर्विस्फुरद्भिः जगदखिलमपि प्रापयन्नेऽभावं

यावन्नाल्लावदीनः किरति शरभरं प्रावृषेण्यच्छतावत्॥

---

1 हम्मीर महाकाव्य—4/73

2 हम्मीर महाकाव्य का दशम सर्ग

3. हम्मीर महाकाव्य—10/82

4. हम्मीर महाकाव्य—10/84

इसके आगे भी दशम सर्ग के अन्त के तीन[1] श्लोक हैं जिनमे रौद्र रस का अपूर्व प्रवाह दिखायी पड़ता है।

वीर हम्मीर की सभा में उल्लूखान व निसुरित द्वारा प्रेषित दूत मोल्हण से जब उन दोनों के मनोभाव को व्यक्त किया तो हम्मीर देव अत्यन्त क्रोधित होकर मोल्हण को डाँटते हुए बोले—

इत्येतददीयानि वचांसि भूपः
श्रुत्वाऽथ भीमां भृकुटीं दधानः।
नवोल्लसत्क्रुध्विषल्लि
सूनद्विरेफलीला क्षरमित्युवाच॥

इस प्रकार इस महाकाव्य में रौद्र रस के बहुत से स्थल प्राप्त होते हैं। इस महाकाव्य के द्वादश[2] त्रयोदश सर्ग में अल्लावदीन के साथ हम्मीर के तुमुल युद्ध के प्रसंग में रौद्र रस का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

हास्य रस

यद्यपि श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य में हास्य रस का प्रयोग अधिक होता है किन्तु श्रव्य काव्य में भी हास्य रस का महत्व साहित्याचार्यो ने स्वीकार किया है। **आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण** में इस विषय मे विस्तार से कहा है—

विकृताकारवाग्वेषचेष्टापदेः कुछकाद् भवेत्।
हास्यो हासस्थायीभावः श्वेतः प्रथमदैवतः।
विक्रताकार वाक्चेष्टं यमलोक्य हसेज्जनः।

1. हम्मीर महाकाव्य के दशम सर्ग के 85-87 श्लोक
2. हम्मीर महाकाव्य

तमत्रालम्बनं प्रातुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।।

अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः।

निद्रालस्यावहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः।।[1]

इति

इस रस के पात्र भेद से छः[2] भेद किये गये हैं।

इस महाकाव्य के पंचम सर्ग में वसन्त वर्णन में श्रृंगार वर्णन के अवसर पर वहाँ अधिक चमत्कार उत्पन्न करने के लिए बीच-बीच मे श्रृंगार के सहायक हास्य रस का सुललित प्रयोग किया है।

जैसे—

सुमकन्दुकौनिजकर ग्रथितौ सहसं प्रदर्श्य किलकेनचन।[3]

त्वदुरोजकौध्रुवमियतप्रमितौ

तददतेत्यहासि कुपिताऽपि सदृका।।

उल्लूखान के सैनिकों के साथ हम्मीर के सैनिकों के भयंकर युद्ध के प्रारम्भ में रणभूमि वीरों के मुकुट, खड्ग, दण्ड आदि की झन्कार को सुनकर तथा देखकर सभी प्रत्यक्षदर्शी आनन्दित हुए। इसी का वर्णन कवि ने इस पद्य में किया है—

हर्षात् प्रनृत्यतां वीरकोटीराणां रणांगणे।[4]

खात्काराः खड्गदण्डानां कस्यासन् न मनोमुदे।।

यह हास्य रस का सुललित उदाहरण है। हम्मीर की सेना से दो दिन तक युद्ध करने में 85000 यवन सैनिक यमलोक चले गये। हम्मीर देव की

1. साहित्य दर्पण—3/214-216
2. साहित्य दर्पण—3/217
3. हम्मीर महाकाव्य—5/54
4. हम्मीर महाकाव्य—9/125

उस प्रकार की क्षति नहीं हुई। अतः वीरम, रतिपाल आदि विजयोल्लास में हास गोष्ठी आयोजित की। राजा हम्मीर देव के दक्षिण भाग में वीरम सुशोभित हुए जिससे रतिपाल को बहुत आनन्द हुआ। इसका वर्णन इस श्लोक में इस प्रकार हुआ है—

वीरमोऽभात् नृपात् तत्र दक्षिणे चारुलक्षणः।[1]
हासं-हासं सृजन्गोष्ठीं रतिपालो रतिं दधौ।।

अतः इस प्रकार इस महाकाव्य में अनेकस्थानों पर हास्य रस का वर्णन प्राप्त होता है।

भयानक रस

भयानक रस का प्रयोग प्रायः सभी दृश्य एवं श्रव्य काव्यों मे प्राप्त होता है क्योंकि यदि वीर रस एवं रौद्र रस की कहीं भी प्रधानता से वर्णन नायक के पक्ष में करेंगे तो नायक के उत्कर्ष वर्धन के लिए प्रतिनायक के पक्ष में भयानक रस का सन्निवेश परम आवश्यक होगा। यही कारण है कि वीर रस के साथ भयानक रस प्रायः सर्वत्र दृष्टिगत होता है। भयानक रस का वर्णन **साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ** ने इस प्रकार किया है—

भयानको भयस्थायिभावः कालाधिदैवतः।
स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्वविशारदैः।।
यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम्।
चेष्टाघोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः।।
अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्गदस्वरभाषणम्।
प्रलयस्वेदरोमांचकम्पदिक् प्रेक्षणादयः।।
जुगुप्सावेगसम्मोहसंत्रासग्लानिदीनताः।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—13/11

शंका पस्मारसम्भ्रान्तिमृत्वाद्या व्यभिचारिणः।।[1]

इति

भयानक रस का स्थायी भाव भय है। जिससे भय उत्पन्न हो वह आलम्बन विभाव है। उसकी घोर चेष्टा उद्दीपन विभाव, गद्‌गद् स्वर भाषण आदि अनुभाव है।

यहाँ जुगुप्सा, संवेग, संत्रास आदि संचारी भाव है।

हम्मीर महाकाव्य में भी कवि ने भयानक रस का यथावसर समुचित प्रयोग किया है। **हम्मीर** की दिग्विजय यात्रा के समय चाहमान सैनिकों ने शत्रुओं की जो दुर्दशा किया उससे भयभीत होकर शत्रु अपनी रक्षा के लिए कबन्ध के मध्य में सन्निविष्ट हो गये।

इसी को नयचन्द्र ने इस प्रकार कहा है—

शत्रुभीत्या कबन्धान्तर्निविष्ट जनरक्षणात्[2]
मृता अपि भटाश्चित्रं न शरण्यव्रतं जहुः।।

यहाँ वर्णित हम्मीर आलम्बन विभाव, उनके द्वारा की गयी घोर चेष्टा उद्दीपन विभाव है। प्रलय कम्पन दृष्टि का प्रक्षेपण आदि अनुभाव, सन्त्रास, दीनता, शंका आदि संचारी भाव है। इन सबसे पोषित होकर भय नामक स्थायी भाव वाला भयानक रस सहृदयों के हृदय को आनन्दित करता है। भयानक रस निम्न पंक्ति में दृष्टव्य है—

केचित् तृणं दधुर्ददिभर्निपेतुः केऽपि पादयोः।[3]
त्वद्‌गौरित्यवदन् केऽपि जीवं त्रातुं शकब्रुवाः।।

---

1 साहित्य दर्पण—3/235-238

2 हम्मीर महाकाव्य—9/137

3 हम्मीर महाकाव्य—9/142

अल्लावदीन मर्षण नामक दशम सर्ग में हम्मीर व अल्लावदीन के सैनिकों के मध्य तुमुल युद्ध हुआ। इसका भयानक रस से परिपूर्ण वर्णन इस प्रकार है—

भीता जीवाधातमाकर्ण्य सघो म्लेच्छा यावदिदक्षु चक्षु क्षिपन्ति।
बाणास्तावत् प्रेरिताश्चाहमानैर्विध्यन्ति
स्मैवासु मर्माणि तेषाम्।।[1]

यहाँ चाहमान सैनिक आलम्बन विभाव, उनके द्वारा की गयी घोर चेष्टा उद्दीपन विभाव, शंका संत्रास आदि संचारी भाव है। इनसे परिपुष्ट होकर भय नामकस्थायी भाव वाला भयानक रस सहृदयों को आनन्दित करता है।

वीभत्स रस

श्रृंगार वीर आदि नव[2] रस में वीभत्स रस की गणना की जाती है। इस विषय में आचार्य **विश्वनाथ** के विचार इस प्रकार हैं—

जुगुप्सा स्थायीभावस्तु वीभत्स! कथ्यते रसः।
नीलवर्णो महाकालदैवतो यमुदाहृतः।।
दुर्गन्धमांसरुधिरमेदांस्यालम्बनं मतम्।
तत्रैवकृमिपाताद्यमुद्दीपनमुदाहृदतम्।।
निष्ठीवनास्यवलन नेत्रसंकोचनादयः।
अनुभावस्तत्र मतास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः।।[3]
मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादयः।।
इति

---

1. हम्मीर महाकाव्य—10/48
2. साहित्य दर्पण—3/182
3. साहित्य दर्पण—3/239-242

हम्मीर महाकाव्य में वीभत्स रस के अनेक उदाहरण दिखायी पड़ते हैं। समर भूमि में गिरे हुए वीरों के अंगों को देखकर जुगुप्सा व वीभत्सता का अनुभवहोता है। वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है।

दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा।[1]

दोष दर्शन, स्पर्शन, घ्राणन आदि विषयों से उत्पन्न घृणा को ही जुगुप्सा कहते हैं। दुर्गन्ध, मांस, रुधिर, मेदा आदि वीभत्स रस के आलम्बन है। उसी में कृमि आदि का वर्णन उद्दीपन है। नेत्र संकोच आदि अनुभाव है। मोह, स्मार आवेग आदि संचारी भावहै। महाराज जैत्रसिंह ने राज्याभिषेक के अवसर पर हम्मीरदेव को जो उपदेश दिया उसमें वीभत्स रस का स्पष्ट प्रदर्शन हुआ है। यथा—

मलातुराणामशुचौ शुचौ वा
यथा प्रदेशे न विचारणाऽस्ति।
स्त्रीणां तथा मूत्र पुरीष पात्रे
गात्रे नराणां मदनातुराणाम्।।[2]

यहाँ स्त्रियों का मूत्र पुरीष पात्र व शरीर आलम्बन विभाव, मूत्रपुरीष का वर्णन अनुभाव, निष्ठीवन, नेत्रसंकोच आदि संचारी भाव इनसे परिपुष्ट होकर जुगुप्सा नामक स्थायी भाव वाला वीभत्स रस है।

जैत्र सिंह के उपदेश क्रम में ही दूसरा वीभत्स रस का उदाहरण निम्नवत् है—

ये यौवनोन्मादभरे गतेऽपि
कुर्वन्त्यरवर्वं विषयेषुरागम्।

---

1 साहित्य दर्पण—3/179 इति

2 हम्मीर महाकाव्य—8/44

निर्मांसमज्जाऽऽस्थिषु ये श्रृगाला
लालारसास्वाद न माचरन्ति॥[1]

यहाँ जैत्रसिंह ने विषयानुराग के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए तथा आसक्ति दूर करने के लिए उपदेश दिया है।

इस प्रकार अष्टम सर्ग के 47वें[2] पद्य में वीभत्स रस का परिपाक दिखायी पड़ता है।

सर्वांगेषु निकृष्टमंगयुगलं स्त्रीणां तदुक्तं तया
राघं विडिववरं प्रसिद्धमितरत् प्रस्तावरन्ध्रं पुनः।
तन्मध्ये यदपत्थरन्ध्रमसकृद्धिस्त्रस्त्रवच्छोणितं
ये तस्मादधुनाऽपि नान्यवदनास्तेभ्योऽपि निनद्योस्तु कः॥

अद्‌भुत रस

अद्‌भुत रस का वर्णन संस्कृत साहित्य में कम ही प्राप्त होता है। इस विषय में दर्पणकार ने इस प्रकार कहा है—

अद्‌भुतो विस्मयस्थायिभावो गन्धर्वदैवतः।
पीतवर्णो वस्तु लोकातिगमालम्बनं मतम्॥[3]
गुणानां तस्य महिमा भवेदुद्दीपनं पुनः[4]
स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांचगद्‌गदस्वरसम्भ्रमाः॥
तथा नेत्रविकासाद्या अनुभावाः प्रकीर्तिताः।
वितर्कावेगसम्भ्रान्तिहार्षाद्याः व्यभिचारिणः॥

इसके अनुसार अद्‌भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। अलौकिक

1 हम्मीर महाकाव्य—8/46
2 हम्मीर महाकाव्य—8/47
3. साहित्य दर्पण—3/242
4. साहित्य दर्पण—3/232-244

पदार्थ आलम्बन उसके गुणों की महिमा उद्दीपन विभाव होता है। स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, गद्‌गद् स्वर, नेत्र विकास आदि अनुभाव की श्रेणी में आते हैं। और यहाँ वितर्क के आवेग सम्भ्रान्ति, हर्ष आदि संचारी भाव होते हैं। विस्मय नामक स्थायी भाव का लक्षण आचार्य विश्वनाथ ने इस प्रकार किया—

विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु।
विस्फारश्चेतसौ यस्तु स विस्मय उदाहृतः।।

इति

हम्मीर महाकाव्य में भी कहीं-कहीं अद्‌भुत रस का प्रयोग दिखायी पड़ता है। निसुरत खान के वध के होने के बाद स्वयं अल्लावदीन हम्मीर से युद्ध करने आया। यह सुनकर हम्मीर देव ने उसका तिरस्कार करने के लिए अपने दुर्ग के ऊपर सूप टंगवा दिया।

तब इतने सारे सूपों को देखकर शकेश आश्चर्य चकित हो गया। इस दृश्य के वर्णन में कवि ने अद्‌भुत रस का प्रयोग किया है। जैसे—

दृष्ट्वा तद्‌द्भुतमसौ शकेश्वरो
विस्मेरविस्मयविकासिलोचनः।
पप्रच्छ पाणितलचालसंज्ञये
त्येतत् किमंग वरुणोपरिस्थितान्।।[1]

संसार में कभी किसी ने शत्रु का तिरस्कार दुर्ग के ऊपर सूप टाँग कर नहीं किया। अतः यह हम्मीर ने कोई नवीन तथा अलौकिक परम्परा प्रदर्शित की। अतः हम्मीर द्वारा सूप स्थापन, आलम्बन विभाव, उसके लिए हम्मीर का प्रताप प्रकाशन उद्‌दीपन विभाव, सूप युक्त दुर्ग को देखकर अल्लावदीन

---

1 हम्मीर महाकाव्य—12/2

का नेत्र विकास आदि अनुभाव, वितर्क आवेग-सम्भ्रम आदि संचारी भाव है। इनसे पोषित होकर विस्मय नामकस्थायी भाव वाला अद्भुत रस लोगों को आनन्दित करता है।

अधोलिखित पद्य में भी अद्भुत रस का चमत्कार सहृदयो के हृदय को आह्लादित करता है।

चिन्तारत्नावनद्धे नवरतममृतासिक्तकल्पद्रसान्द्र[1]
च्छायाच्छन्ने निषण्णाः श्रमविगमकृते चत्वरे-चत्वरेऽपि।
तीरे सिद्धापगायाः सुरसुरभिगणांश्चारयन्त्योऽस्य दानं
जेगीयन्ते स्म देव्यः करकमलमिलद्वेगुणवीणाविलासाः।

यहाँ वीर रस से उत्थापित अद्भुत रस की प्रधानता अपने विभावादि से व्यक्त होती है।

अल्लावदीन के साथ जब हम्मीर देव का युद्ध हुआ था तो एक ही हम्मीर अपने अद्भुत शौर्य से लाखों योद्धाओं की बराबरी किया था। इस तथ्य को **नयचन्द्र** ने इस प्रकार कहा है—

संयत्येकोऽपि हम्मीरः परो लक्षत्वमाश्रयत्।[2]
व्योमासिकृत्तैर्द्विद्वक्त्रैः पद्माकरनिषाकरोत्।।

इस श्लोक में वीरवर हम्मीर आश्चर्य उत्पादक शौर्य का वर्णन होने से अद्भुत रस है। इस प्रकार इस महाकाव्य में कवि ने अद्भुत रस का सन्निवेश किया है। पृथ्वीराज के वर्णन प्रसङ्ग मे निम्नलिखित पद्य में अद्भुत[3] रस का सम्यक् प्रयोग हुआ है—

---

1. हम्मीर महाकाव्य—2/87
2. हम्मीर महाकाव्य
3 हम्मीर महाकाव्य—2/88

शश्वद्येन निरीतितां गमयता क्षोणीतलं क्ष्माभ्रता।

दिष्टा अप्यतिवृष्टयो जलनिधेः पारं प्रयातुं परम्।।

यत्प्रक्षिप्य ररक्षिरेऽक्षिषु निजेषूच्चै रिपुस्त्रीजनै

स्तत्तेनैव हतप्रियेण पुपुषे साकं न किं वैरिता।।[1]

शान्त रस

नव रसों में शान्त रस की भी गणना की जाती है। यद्यपि भरतमुनि[2] ने नाट्य में शान्त का निषेध किया है, किन्तु श्रव्यकाव्य में उसकी स्थिति उन्होंने भी स्वीकार किया है। आचार्यों में परस्पर विवाद के पश्चात् न केवल श्रव्यकाव्य में अपितु दृश्य काव्य में शान्त रस का वर्णन प्राप्त होता है। **नागानन्द** आदि नाटकों में शान्त सहृदय हठात् आनन्दित होते हैं। शान्त रस के विषय में आचार्य **विश्वनाथ**[3] ने भी कहा है—

शान्तः शमस्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्मतः।

कुन्देन्दु सुन्दरच्छाणः श्रीनारायणदैवतः।।

अनित्यत्वादिना शेष वस्तु निःसारता तु या।

परमात्म स्वरूपं वा तस्यालमिष्यते।।

पुण्याश्रम हरिक्षेत्रतीर्थरम्यवनादयः।

महापुरुषसंगाधाः तस्योद्दीपनरुपिणः।।

रोमांचाद्याश्चानुभावास्तथा स्युर्व्यभिचारिणः।

निर्वेदहर्षस्मरणमतिभूतदयादयः।। इति।

शान्त रस का स्थायी भाव शम है। वह ही निर्वेद नाम से भी जाना जाता है। शम का स्वरूप साहित्य दर्पण में इस प्रकार कहा गया है—

---

1 हम्मीर महाकाव्य—1/88

2. नाट्यशास्त्र—6

3. साहित्य दर्पण—3/245-248

शमो निरीहावस्थायां स्वात्माविश्रामजं सुखम्।[1]

निःस्पृहावस्थायां स्वात्मविश्रामोत्पन्नं सुखमेव शम इत्युच्यते।

आकार आदि की दृष्टि से संसार केसभी महाकाव्यों में विशालतम महाकाव्य **महाभारत** का भी प्रधान रस शान्त ही है। अतएव शान्त रस का महत्व निर्विवाद है।

हम्मीर महाकाव्य में भी कहीं-कहीं शान्त रस का प्रयोग दृष्टिगत होता है। चाहमान वंश के श्रेष्ठ शासक राजा जैत्रसिह की जब अकस्मात् मृत्यु हो गयी तो हम्मीरदेव ने विलाप करना शुरू कर दिया। तब चिन्तातुर बीजादित्य आदि उनको समाने लगे। उनकी उक्ति में शान्त रस का स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है।

यथा—

श्वासावीध स्यात्-खलु जीवितव्य[2]
श्वासः प्रसिद्धः स तु वायुरेव।
वायोरिहान्यत् तरलं न किंचित्
यज्जीव्यते तन्महदेव चित्रम्।।
वृथा कृथा मा क्षितिपाल खेदम्।
कस्याप्यवश्या निधनस्थ शस्थ
दृष्टाः श्रुता वा पितरोऽत्र विश्वे।।

यहाँ बीजादित्य आदि मन्त्रियों ने कहा कि हे राजन् हमारा जीवन श्वास रहने तक ही है। श्वास वायु रूप में ही है। इस संसार में वायु की अपेक्षा कुछ भी तरल नहीं है तो भी जो हम अनेक वर्षों तक जीवन धारण करते हैं

---

1 साहित्य दर्पण—3/180

2. हम्मीर महाकाव्य—8/.124-125

वह अत्यन्त विस्मयकारी है।

संसार में जो कोई जन्म ग्रहण करता है उसकी मृत्यु सुनिश्चित है। अतः **गीता**[1] में कहा गया है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽस्मिन् न त्वं शोचितुमर्हसि।।

अतः हे राजन्, आपने क्या ऐसे किसी भी व्यक्ति को देखा है जिसके पिता की मृत्यु न हुई हो? सभी प्राणियों की यही गति है। मृत्यु पर किसी का भी अधिकार नहीं है। अतः आप भी इन सभी को विचार करके पिता के शोक का धीरे-धीरे परित्याग करें।

क्रीडां करिष्यति कियाच्चिरमेष हंसः
स्निग्धोल्लसत्कलरवोऽत्र शरीरवाप्याम्।
कालारघट्टघटिकावलिपीय मान्
मायुर्जलं झगिति शोषमुपैति यस्मात्।।[2]

मन्त्रीगण इस श्लोक के द्वारा शिक्षा देते हैं कि यह संसार नश्वर है, मृत्यु को सुनिश्चित जानकर शोक नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार आगे भी विप्र वीजादित्य आदि हम्मीर को उपदेश देते हुए कहते हैं कि राम जैसे महापुरुष रावण को मारे थे वे स्वयं काल के ग्रास से नही बचे तो अन्य राजाओं के विषय में क्या कहें?

अतः सब विचार करके आप पितृ विषयक शोक का परित्याग करिये—

लंकाभर्तुर्निधनरुचिना चापहस्तेन येन
क्षिप्तास्तास्ताः पितृपतिमुखे कोटयो राक्षसानाम्।

---

1. भगवद्गीता—2
2 हम्मीर महाकाव्य—8/127

सोऽपि स्फूर्जद्दिवसरजनीघोरवक्त्रेण राम

स्ताम्यत्रमूर्तिझगिति गिलितः काल नक्तंचरेण।।[1]

इस प्रकार यहाँ इन सभी स्थलों कविवर नयचन्द्र ने **शान्त रस** का प्रयोग किया है।

कविवर नयचन्द्र ने शिष्टाचार परिपालन में शास्त्रादि मंगल प्रकट करने के लिए और प्रारब्ध विघ्न की समाप्ति के लिए प्रथम श्लोक से सप्तम श्लोक तक विविध देवों की सादर स्तुति किया है। उन देवों के प्रति उन्होंने अपनी श्रद्धा भावना प्रकट किया है। अतः उन स्थलों में भावध्वनि का साम्राज्य दिखायी पड़ता है। यद्यपि किसी भक्ति प्रदर्शन के स्थल में भक्ति रस भी प्रतिपादित किया है किन्तु उनका मत सर्वसम्मत नहीं है यही कारण है कि जहाँ देवता, महापुरुष आदि के विषय में श्रद्धा भाव का प्रकाशन किया जाता है वहाँ भावध्वनि स्वीकार करते हैं न कि भक्ति रस।

वाग्देवतावतार **आचार्य मम्मट**[2] ने भी कहा है कि

रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथांजितः।

भाव प्रोक्तः.....।।

हम्मीर महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक में कवि ने भगवान के प्रति अपना श्रद्धाभाव प्रकट किया है—

चिदानन्द महोदयैकहेतुं परं ज्योतिरूपास्महे तत्।[3]

यस्मिन् शिवश्रीः सरसीव हंसी विशुद्धि वृद्धारिणि रंदमीति।।

यहाँ भगवान विषयक होने से भाव ध्वनि की प्रधानता है। अनेक प्रकार

---

1. हम्मीर महाकाव्य—8/129
2. काव्य प्रकाश—4/35
3. हम्मीर महाकाव्य—1/1

से जैन धर्म के प्रधान देव **ऋषभदेव** तथा **ब्रह्मा** के प्रति श्लिष्ट वाणी में कवि ने अपनी श्रद्धा प्रकट किया है। कहा है—

तज्ज्ञानविज्ञानकृतावधानाः सन्तः[1] परब्रह्म मयं यमाहुः।
पद्माश्रयः क्लृप्तभवावसानः स नाभिभूर्वस्त्वरतां शिवाय।।

अतः यहाँ भाव ध्वनि निश्चित रूप दृष्टिगत होती है।

इस प्रकार प्रथम सर्ग के तृतीय श्लोक में पार्श्वनाथ व भगवान विष्णु के विषय में वर्णन हुआ है। चतुर्थ श्लोक में **शंकर जी** के प्रति श्रद्धा व्यक्त की गयी है। पंचम श्लोक में भगवान **सूर्य** और श्री **शक्तिनाथ** का वर्णन किया है। इन सभी स्थलों में भाव ध्वनि प्रदर्शित होती है षष्ठ पद्य में श्लिष्ट वाणी में श्री **नेमीश्वर**[2] का वर्णन किया है।

हम्मीर महाकाव्य के पंचम सर्ग के निम्न श्लोक में क्रोधाभास का चमत्कार दिखायी पड़ता है—

अमुना विवर्णितदलाममितो[3] विलोक्य नलिनीदपितः।
कुपितः प्रहिंसितुमिवैष होमोच्चयमभ्यगाद्धिभवतः ककुभम्।।

स्त्रियों के अधर आदि ग्रहण से दुख में भी यदि हर्ष उत्पन्न होता है तो स्त्रियों के स्वाभाविक कुट्टमित[4] नामक भाव की अभिव्यक्ति होती है। जिसका वर्णन निम्न श्लोक में किया गया है—

दयितां लताग्रमधिरोहयता क्वचनापि केनचिददापि[5] तनौ।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—1/2
2. हम्मीर महाकाव्य—प्रथम सर्ग-3/6 श्लोक
3. हम्मीर महाकाव्य—5/7
4. हम्मीर महाकाव्य—3/103
5. साहित्य दर्पण—5/53

नखरक्षतं यदतनोत् किलितं न मुदं तदीयहृदये कियतीम्।

कोई रसिक शिरोमणि नायक-नायिका को उद्देश्य करके कहता है कि हे प्रिये यदि तुम मुख का चुम्बन दोगी तो मैं तुम्हें पुष्प माला दूंगा। वह इस बात को नायिका अपनी सखी से बताती है। इसका कवि ने अत्यन्त मनोरम वर्णन किया है—

मुखचुम्बनं यदि ददासि[1]
सकृत प्रददे तदा कुसुममाल्यमिदम्।
गदतीति भर्तरि सखी विदितं
त्रपया मुदा च समवादि परा।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हम्मीर महाकाव्य में कवि ने रस के साथ-साथ भाव भाषा आदि का भी सुललित प्रयोग किया है।

दोष

अलङ्कार शास्त्र में जिस प्रकार गुणों का महत्व स्वीकार किया गया है उसी प्रकार दोष का भी महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय काव्यशास्त्र मे दोनो का ही सर्वत्र विवेचन प्राप्त होता है। दोनों के मध्य यही अन्तर है कि गुण का उपादेय होने से महत्व है और दोष हेय। ज्ञान की दृष्टि से दोनो का समान महत्व है। गुण और दोष दोनों के स्वरूप ज्ञान के बिना गुण का प्रयोग और दोष का परित्याग नहीं किया जा सकता। अतः **दण्डी** ने **काव्यादर्श** में कहा है—

[2]गुणदोषानशास्त्रज्ञः कथं विभजते जनः।
किमन्धस्याधिकारोऽस्ति रूपभेदोपलाब्धिषु।।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—5/56
1 काव्यादर्श—1/8

दोष के परित्याग के विषय में दो वर्ग दिखायी पड़ते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि काव्य में थोड़े दोष के लिए भी स्थान नही है। आचार्य **दण्डी** के अनुसार—

तदल्पमपि नोपेक्ष्यं काव्ये दुष्टं कथंचन।
स्याद् वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्।।

काव्य में थोड़े से दोष की भी अपेक्षा नहीं की जाती क्योंकि सुन्दर शरीर में एक ही दोष निन्दनीयहोता है। किन्तु **आचार्य विश्वनाथ** ऐसा नही मानते हैं। उन्होंने कहा[1] है कि 'सर्वथा दोषरहित को ही काव्य मानने से तो काव्यत्व का विषय अत्यन्त विरल हो जायेगा अथवा सर्वथा असम्भव ही हो जायेगा। अतः जिस प्रकार कीटाणुओं से रत्न का रत्नत्व नही समाप्त होता केवल उसकी उपादेयता में कमी आती है। वैसे ही श्रुतिदुष्टत्व आदि दोषों से काव्य की काव्यता नहीं समाप्त हो जाती, केवल उत्तमता में कमी आ जाती है। जैसा कि किसी ने कहा है—

कीटानुविद्धरत्नादिसाधरण्येन काव्यता[2]।
दुष्टेष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः।।

इति

दोष का सामान्य लक्षण **आचार्य विश्वनाथ** ने इस प्रकार किया है—रसापकर्षका दोषाः इति[3]। रसादि के अपकर्षक धर्म ही दोष कहे जाते हैं। काव्य की आत्मा रस है। इसलिए उसके अपकर्षक धर्म दोष के रूप में स्वीकृत है।

कभी कहीं पर यदि दोष विद्यमान होने पर भी रस के सौन्देर्य मे न्यूनता

---

1 साहित्य दर्पण—प्रथम परिच्छेद पृ0 सं0 12
2 साहित्य दर्पण—प्रथम परिच्छेद पृ0 सं0 13
3 साहित्य दर्पण—7/1

नही आती है तो उसका दोषत्व नहीं स्वीकार किया जाता है।

कवीन्द्र नयचन्द्र स्वयं अपशब्दों के प्रयोग के विषय में कहते हैं कि—

प्रायोऽपशब्दादि कृतोऽपि दोषो[1]
न चात्र चित्तयो मम मन्दबुद्धेः।
न कालिदासादिभिरप्यपास्तो
योऽध्वा कथं वा तमहं त्यजामि।।

अपि च

प्रायोऽपशब्देन न काव्यहानि।[2]
समर्थतार्थे रससेकिमा चेत्।
वादेऽधसौ नो विदधीत् किंचिद्
यदि प्रति विरमेन्न विज्ञः।।

नयचन्द्र अलङ्कार शास्त्र के महान विद्वान थे अतः इन्होंने दोष के विषय में अपना मत प्रकाशित किया है कि कभी अपशब्द आदि दोषो की उत्पत्ति मेरे काव्य में होती है तो चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। जब **महाकवि कालिदास** आदि के महाकाव्य में इस प्रकार के दोष दिखायी पड़ते हैं तो अल्प बुद्धि मेरे काव्य में इसकी सम्भावना स्वाभाविक ही है। वस्तुतः किसी दोष का दोषत्व तभी सिद्ध होता है जब ये विवक्षित रस का अपकर्ष करते हैं। यदि ऐसा नहीं होता है तो उनका दोषत्व भी नही होगा।

यद्यपि नयचन्द्र वैयाकरण, अलंकार, शास्त्र के विद्वान, प्रतिभा धनी तथा छन्द शास्त्रज्ञ भी थे किन्तु उनके भी महाकाव्य में कही-कही काव्यगतस दोष दिखायी पड़ते हैं। यद्यपि दोषों की संख्या अंगुली पर ही है कि उन्हीं

---

1. हम्मीर महाकाव्य—14/38
2. हम्मीर महाकाव्य—14/39

के कथनानुसार छन्दोभंग आदि दशाओं में उन्होंने दोषो पर विशेष ध्यान नही दिया है।

हम्मीर महाकाव्य के जलक्रीड़ा वर्णन के अवसर पर षष्ठम सर्ग के अन्तिम श्लोक में अप्रयुक्त तत्व नामक पद दोषों दृष्टिगत होता है जैसे—

इत्थं विधाय जलकेलिमनन्य जन्यां[1]
श्री जैत्रसिंहतनयः स हम्मीरवीरः।
स्वान्-स्वान् गृहान्प्रतिविसृज्य जवान् सहैतान्
वैश्मासससाद निजमर्थिकृतप्रसादः।।

इस श्लोक में तृतीय चरण का गृहान् यह पद दुष्ट है। यद्यपि गृह शब्द नपुंसक लिंग के साथ-साथ पुल्लिंग में भी **अमरकोश में अमरसिंह**[2] ने पढ़ा है किन्तु काव्य में कवि लोग प्रायः नपुंसक लिग के ही अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग करते हैं न कि पुल्लिंग में। इस पद्य में कवि ने पुल्लिंग मे गृह शब्द का प्रयोग किया है। अतः कवि के द्वारा पुल्लिंग प्रयोग के अनादर से अप्रयुक्त तत्व[3] नामक दोष हुआ।

मुख चुम्बनं यदि ददासि सकृत्[4]
प्रददे तदा कुसुम माल्यमिदम्।
गदतीति भर्तरि सखीविदितं
त्रपया मुदा च समवादि परा।।

इस श्लोक में यदि मुख चुम्बन देती हो तो यह पुष्पमाला देता हूँ यह नायक की मुक्ति ग्राम्य जनोचित विद्यमान है। इसलिए यहाँ ग्राम्यत्वदोष है।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—6/65
2. गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनम्। अमरकोष—2/4
3. साहित्य दर्पण—सप्तम परिच्छेद—पृ0 सं0 605
4 हम्मीर महाकाव्य—5/56

यहाँ श्रृंगार रस का संचारी भाव त्रपया इस शब्द से बताया गया है। अतः इसलिए यहाँ रसदोष भी विद्यमान है।

नर्तकी धारा के नृत्य वर्णन में अर्थगत अश्लीलत्व दिखायी पड़ता है। जैसे

ताण्डवं निर्भिमाणेति सा तालभटनक्षणे।[1]
अधः स्थाय शकेन्द्राय पश्चाद्भागमदीदृशत्।।

इति

हम्मीर के साथ शकेन्द्र अल्लावदीन का दो दिन तक भयंकर युद्ध हुआ। तब यवनों की भारी क्षति हुई। चाहमान सैनिक प्रसन्न होकर मनोविनोद केलिए कार्यक्रम निर्धारित किये। उसी उपक्रम मे सुप्रसिद्ध नर्तकी धारा देवी का नृत्य हुआ।

हम्मीर के आदेश से ऊपरी भाग में नृत्य आरम्भ हुआ। वहाँ ताण्डव नृत्य को करती हुयी नर्तकी **धारा** तालत्रुटि के अवसर फर नीचे स्थित शकेश **अल्लावदीन** को अपना पश्चभाग दिखाया। जिससे अल्लावदीन अत्यन्त क्रोधित हुआ तथा उसको मारने के लिए **उड्डानसिंह** को आदेश दिया। यहाँ नर्तकी अपना पश्चभाग प्रदर्शन से सहृदयों के हृदय में अश्लीलत्व उत्पन्न करती है। अतः यहाँ अश्लीलत्व दोष है।

काव्यप्रकाशकार[2] आचार्य **मम्मट** तथा **विश्वनाथ**[3] ने वाक्यगत दोषों में हतवृत्त नामक दोष की भी गणना किया है हत अर्थात लक्षण का अनुसरण करने पर भी बुरा लगने वाला अन्त लघु जिसमें गुरूभाव को प्राप्त नहीं होता है तथा रस के अनुरूप जिसका छन्द नहीं है वह तीन प्रकार का हतवृत्त है।

1 हम्मीर महाकाव्य—13/27
2 काव्य प्रकाश 7/53
3 साहित्य दर्पण 7/5

हम्मीर महाकाव्य में छन्द भंग से कहीं–कहीं दोष वृष्टिगत होता है।

यथा–

मिथः[1] समानाक्षिनिरीक्षणेन प्ररूढप्रतिधा इवोच्चै।
घटैकदेशीभटा घटाश्चैभानमायुध्यन्तहठात् तदानीम।।

इस पद्य में उपजाति वृत्त लिखा है जिसके तीन चरणों में उपेन्द्र[2] ब्रजा का लक्षण दिखायी पड़ता है। किन्तु चतुर्थ चरण मे इन्द्रब्रजा का लक्षण प्राप्त होता है।

इन दोनों वृत्तों के मिश्रण से उपजाति वृत्त है। इन्द्रव्रजा का लक्षण है—

स्थादिन्द्र व्रजा यदितौ जगौ गः

इसके अनुसार इन्द्रव्रजा के प्रत्येक चरण में क्रम से दो तगण जगण गुरु होते है। किन्तु यहाँ चतुर्थ चरण के आरम्भ में रचना इसके विपरीत हैं अतः यहॉ वृत्तभंग से हतवृत्त नामक दोष है।

इसी प्रकार सप्तम सर्ग के निम्नलिखित पद्य में छन्दोभंग से हतवृत्त नामक दोष विद्यमान है

विधिनियोगतथाऽपतदापदं[3] समभिवीक्ष्यपति महसामिह।
सपदि संचुकुचे सरसीरू हैरपश्रिभिःसुहृदामुचितं ह्यदः।।

इस पद्य में द्रुतविलम्बित व्रत्त है यहाँ चतुर्थ चरण में छन्द के अनुकूल गण योजना नहीं है द्रुत विलम्बित का लक्षण इस प्रकार है

दुतविलम्बितमाह नभों भरौ[4]

---

1. हम्मीर महाकाव्य 3/28
2 उपेन्द्रब्रजा जतजास्ततो गौ व्रत्तरत्नाकर– 22
3 हम्मीर महाकाव्य 7/9
4 वृत्त रत्नाकर।

इसके अनुसार प्रत्येक चरण में क्रम से नगण भगण रगण होते है। यहाँ चतुर्थ चरण के आरम्भ में कवि ने नगण का प्रयोग नहीं किया है। अतः पद्य को पढ़ने में प्रवाह भंग से विरसता उत्पन्न होती है। अतः यहाँ हतवृत्त नामक दोष है।

दशम सर्ग में **भोजदेव** के वर्णन प्रसंग में भी छन्दोभंग दिखायी पड़ता है।

नाटक कुलीनोऽपि सभोजदेवऽघुना ही कृतवान यदेवम।

इस पद्यांश में द्वितीय चरण में उपेन्द्रव्रजा के अनुकूल गणयोजना करना चाहिए था किन्तु जगण तगण की योजना कवि ने अशुद्ध रूप में किया है अतः यहाँ हतवृत्त नामक दोष है।

हम्मीर महाकाव्य में कहीं–कहीं यतिभंग दोष भी दिखायी पड़ता है। यथा।

विशदमेव[1] न कि दयिताविलो-

कनसुधारसयानमसूचयन्।

इस शब्द पद्यांश में द्रुत विलम्बित वृत्त है यहाँ प्रथम चरण के अन्त में विलोकन यह पद आता है किन्तु वृत्तनियमानुसार यति बिलो इसके अन्त मे ही समाप्त कर दिया गया है अतः यतिभंग से मन से उद्वेग स्वाभाविक है इसलिए यहाँ हतवृत्त नामक दोष है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि अनेक गुणों से गुम्फित इस महाकाव्य में अंगुलिगण्य कुछ दोष भी दृष्टिगत होते है। परन्तु "एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विवांक" इस कालिदास[2] के वचन

---

1 वृत्त रत्नाकर।

2. कुमार सम्भवम् 1/3

के अनुसार इस महाकाव्य में विद्यमान गुणों के मध्य मे दोष नगण्य ही है। इसलिए इस महाकाव्य का महत्व अक्षुण्य है।

गुण

अलंकार शास्त्र में काव्य की आत्मा रस के बाद सर्वाधिक महत्व जिस तत्व का स्वीकार किया गया है वह तत्व है गुण। प्राचीन आचार्यो ने कहा भी है गुणाः शौर्यादिवत[1] इति। गुणों के स्वरूप को **वामनचार्य** ने इस प्रकार कहा है काव्य शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः[2] इति। वास्तव में आचार्य **मम्मट** द्वारा प्रतिपादित गुण लक्षण सर्वोत्कृष्ट रूप से स्वीकार किया जाता है।

जैसे—

ये[3] रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचल स्थितयो गुणाः।।

अर्थात आत्मा के शौर्यादि धर्मो के समान काव्य की आत्मभूत प्रधान रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षधायक धर्म है वे गुण कहलाते है। इसके अनुसार गुण के लक्षण में रसोत्कर्षत्व तथा रस निष्ठत्व ये दोनो समाविष्ट हो जाते है तो ये दोनो गुण के लक्षण बनते है।

गुणों की संख्या की दृष्टि से प्राचीन काल से विवाद दिखायी पड़ता है। जैसे **भरतमुनि**[4] तथा **दण्डी** ने[5] दस गुण माना है। किन्तु **भामह**[6] **आनन्द**

---

1. काव्यस्थ शब्दार्थो शरीरं रसादिरात्मा गुणाः शौर्यादिवत्।
   दोषाः काव्यादिवत.....।

   साहित्य दर्पण प्रथम परिप्रेच्छेद· प0 प0 15

2 काव्यालंकार सूत्राणि 3/1/1

3 काव्य प्रकाश 8/1

4. नाटय शास्त्र—17/96

5 काव्यादर्श 1/41–42

6. काव्यालंकार सूत्राणि, काव्यालंकार

वर्धन तथा मम्मट आदि ने तीन ही गुण माना है। वे है माधुर्य ओज तथा प्रसाद।

चित्त भी तीन[1] वृत्तियाँ होती है द्रुति, दीप्ति, विकास। इन्हीं चित्त वृत्तियों के आधार पर काव्य में तीन गुण माने जाते है। इन्हीं तीन गुणों में **वामन** द्वारा बतलाये गये सभी शब्दगुण तथा अर्थगुण सरलता से अन्तर्निहित हो जाते है। **काव्यप्रकाश**[2] तथा **साहित्य**[3] **दर्पण** में विस्तार से इस सन्दर्भ में विवेचना की गयी है। माधुर्य, ओज तथा प्रसाद नाम वाले तीनो गुणो का **हम्मीर महाकाव्य** में समय–समय पर सुन्दर प्रयोग दिखायी पड़ता है।

माधुर्यम द्रुतिकारणम आहलादकत्वमेव[4] माधुर्यमिति कथ्यते।

अर्थात द्रुति का कारण और शृंगार में रहने वाला जो आहलाद रूप तत्व है वह माधुर्य गुण कहलाता है। माधुर्य गुण का प्रयोग सम्भोग शृंगार विप्रलम्भ शृंगार करूण तथा शान्त रस में अत्यन्त द्रवीभाव के कारण अधिकता से मिलता है। माधुर्य गुण[5] को व्यक्त करने वाले शब्द वर्ण अर्थात क वर्ग च वर्ग त वर्ग तथा प वर्ग, वर्ग का अन्तिम अक्षर छोड़कर हस्व स्वर से युक्त रेफ तथा णकार में सभी वर्ण माधुर्य को व्यक्त करने वाले होते है।

हम्मीर महाकाव्य के सातवें सर्ग में सुरतवर्णन के अवसर पर माधुर्य व्यञ्जक पद्य अधिकता से पाये जाते है।

यथा–

---

1 रसगंगाधर प्रथम आनन प्र. 221

2. काव्य प्रकाश 8/72–73

3. साहित्य दर्पण –8

4. काव्य प्रकाश 8/68

5. काव्य प्रकाश 8/74

जहिहि[1] लाक्षिणिकी रसमुत्तमें
नहि न वेदिम मनस्तव यन्मपि।
अहहपश्य तवाधर पल्लव
स्फुरति मामिव चुम्बितुमुत्सकः।।

ह वर्ग वर्ण श्रुति कटु होता है। इस कारण इसकी गणना माधुर्य गुण के प्रतिकूल होती है। इस पद्य में बनावटी मान रखने वाली नायिका को अपने अनुकूल बनाने के लिए नायक कहता है हे सुन्दरी अभिमान छोड़ो तुम्हारी मन में जो है वह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। देखो तुम्हारा ओठ भी मुझे चूमने के लिए फड़क रहा है अतः यह माधुर्यगुण का उदाहरण है।

राजा सामन्त सिंह नन्दन के वर्णन में माधुर्य गुण निश्चित रूप से दर्शनीय है

तन्नदनश्चन्दनवज्जनानाम[2]
आनन्दो नन्दननामधेयः।
निहत्य शत्रून समरे संमग्रान।
स्वसाच्चकाराऽवा निमा समुद्रम।।

यहाँ वर्णन के अनुकूल वृत्त माधुर्य चमत्कार हृदय को अत्याधिक आकर्षित कर रहा है।

करुण रस के स्थान पर भी कवि नयचन्द्र में माधुर्य गुण का सुललित प्रयोग किया है। सम्भोग श्रृंगार रस मधुर पदावलि के द्वारा रति भावना को प्रकट करती है। किन्तु करुण रस के प्रसंग में भाषा विवशता दीनता और हार्दिक व्यथा को प्रकाशित करती है। सारे परिवार के कारागार में डाल दिये

---

1. हम्मीर महाकाव्य 7/87
2 हम्मीर महाकाव्य 1/67

जाने के पश्चात भोज का जो कारुणिक चित्रण नयचन्द्र ने किया है वह निश्चय ही कमनीय है

ततं कि करोमि कं वा श्रयामि यामिक्व वा किमु वदामि[1]
हृदय वातान्दोलित तूलतुलां कलयतीदमनुवेलम।।

महाराज **जैत्रसिंह** के स्वर्गरोहण के पश्चात उनके पुत्र **हम्मीर** ने जो वेदना व्यक्त की है उसके वर्णन में भी माधुर्य गुण का उत्कर्ष परिलक्षित होता है।

ऋतुओं के वर्णन में श्रृंगार रस का प्रयोग अधिकता से पाया जाता है। **नयचन्द्र** ने बसन्त वर्णन के अवसर पर श्रृंगार रस का उत्कृष्ट प्रयोग किया है। मानिनी प्रियतमा को अपने अनुकूल बनाने के लिए प्रयत्नशील नायक के इस कथन में माधुर्यगुण का चमत्कार निश्चय ही सहृदयों को हृदय को हर लेता है।।

न विलोकसेन च ददासि वचः कथमेष जीवत तवानुचरः[2]
इति पीतवल्लभवचा इतरा मदपानतोऽप्यधिकमाप मदम।।

ओजगुण–

वीर रस में चित्त के विस्तार का हेतुभूत दीप्ति ओज गुण कहलाता है। वाग्देवतावतार आचार्य **मम्मट** नें भी कहा है–

दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजोवी ररसास्थिति[3]

इस ओजगुण में वर्ग के प्रथम वर्ण क,च,ट,त,प तथा वेर्ण के तृतीय वर्ण ग,ज,द,ब तथा द्वितीय वर्ण ख, छ, ठ, थ, फ के साथ चतुर्थ घ, झ, ढ, भ, म, वर्णो का योग रेफ ट वर्ग, शकार सकार तथा दीर्घ समास

1 हम्मीर महाकाव्य 10/76।
2 हम्मीर महाकाव्य 4/49।
3 काव्य प्रकाश 8/69

पदावली ओजगुण को व्यक्त करते[1] है। ओजगुण का प्रयोग क्रमशः वीररस वीभत्स रस, तथा रौद्र रस में अधिकता से होता है। **ध्वन्यालोककार** ने प्रतिपादित किया है कि रौद्र, वीर, अदभुत वीभत्स आदि रस काव्य में अपने दीप्ति से प्रभावित होते है। इसलिए उसको व्यक्त करने के हेतुभूत शब्द और अर्थ का आस्त्रय लेकर ओज गुण प्रकट होता है।[2]

ओज गुण निश्चय ही चित्त को उद्दीप्त करता है। इसी कारण वीर, रौद्र, रसों में इसकी स्थिति होती है। गुण तत्व के मर्मज्ञ **कविवर नयचन्द्र** नें ओजगुण का विलक्षण प्रयोग किया है। शत्रुओं द्वारा भोज की दुर्दशा को सुनकर कुपित शकराज अल्लवदीन के निम्न लिखित कथन मे ओज गुण का प्रकर्ष दर्शनीय है–

तावदगर्जन्तु जाग्रन्मदभरतरलाश्चंचला वीरमाद्याः[3]
वीराः प्रत्यर्थिवीरावलिदलनकलाकेलिकण्डूलहस्ता।
ज्यारावैर्विस्फुरदिभर्जगदखिलमपि प्रापयन्नेऽभावं।
यावन्नाल्लावदीनः किरति शरभरं प्रावृषेण्यच्छतावतः।।

इस पद्य में संयुक्ताक्षरों का ट वर्ग का, रेफ का तथा दीर्घ समास युक्त पदों द्वारा वर्णनीय रौद्र रस के उत्कर्ष को बढ़ाने वाला ओजगुण पूर्णतया समर्थ है।

हम्मीर के द्वारा अपमानित होने पर भी हम्मीर के विषय में **अल्लावदीन** द्वारा पूछे जाने पर भोज जो उत्तर देता है वहाँ भी अनेक श्लोको मे ओज गुण का चमत्कार दिखायी पड़ता है। उदाहरण स्वरूप–

---

1 काव्य प्रकाश 8/75
2. ध्वचा लोक 2/10
3 हम्मीर महाकाव्य 10/84।

अश्रान्तस्त्राविदानोच्छलितपरिमलाकृष्टगुंजद्विरेफ[1]
श्रेणी विद्वट्कुम्भिकुम्भस्थलदलन कलाकेलिकण्डूलहस्तः।
सोदर्यो यस्य वीरव्रजमुकुटमणिवीर्रभो विश्वविजेता
स श्री हम्मीर वीरः समरभुवि कथं जीयते लीलयैव॥

भोज ने इस श्लोक में शत्रुओं के विनाश में निपुणता दिखाने वाले **हम्मीर देव** की प्रशंसा की है। इस श्लोक के पूर्वाद्ध में एक ही दीर्घसमास वाली पदावली सुशोभित हो रही है। कर्ण को कटु प्रतीत होने वाले वर्ण ओज गुण की भलीभाँति परिपुष्टि कर रहे है।

वीरम, जाजदेव, रणकुशल शत्रुओं द्वारा आरम्भ किये गये युद्ध के वर्णन में ओज गुण का सौन्दर्य दिखायी पड़ता है।

सुभत प्रकाण्ड घनकाण्ड वर्षणा[2]
तिकदर्थनेन भृशविक्तवाशयाः।

जब युद्ध क्षेत्र में यवन सैनिक प्रलयकाल की हवा की तरह प्रवाहित हो रहे थे। तब बहुत से सैनिकों का विनाश देखकर क्रोधित शकेश स्वयं हम्मीर से युद्ध करने आया। यह देखकर हम्मीरदेव भी उसकी तरफ युद्ध के लिए तीव्रता से दौड़े जंगली दो हाथियों की तरह युद्ध में तत्पर उन दोनो के वर्णन मे ओज गुण स्वयं प्रकट होता है।

हम्मीर जब सेना के साथ शत्रुओं का मान मर्दन करने के लिए प्रस्थान करते है उस समय घोड़ो के खुरों से उठे धूल, राजाओं के शिरों के कटने से निकले रक्त से आकाश धूमिल हो गया, रथ के रखलन से डर कर भगवान भास्कर भी कभी पूर्व तो कभी पश्चिम मे चले जाते है। उत्प्रेक्षालंकार

---

1 हम्मीर महाकाव्य 10/20
2 हम्मीर महाकाव्य 10/50

से अलंकृत इस पद्य में ओज गुण का सम्यक प्रयोग हुआ है।[1]

हम्मीर महाकाव्य निश्चित रूप से वीर रस प्रधान महाकाव्य है। हम्मीर स्वाभिमानी वीर शिरोमणि क्षत्रिय महाराज है। जिसके नाम स्मरण मात्र से भुजाएँ फड़क उठती है, हृदय में अपूर्व उत्साह उत्पन्न हो जाता है। ऐसे मनस्वी` चरित्र वर्णन में महाकवि **नयचन्द्र** ने जो ओज गुण का उत्कृष्ट प्रयोग किया हे वह निश्चय ही महाकाव्य के अनुकूल है वह क्षत्रियोचित गुणों का स्मरण तथा सहृदयों के हृदय में वीर रस उदभूत करा देती है।

प्रसाद गुण

माधुर्य, ओज की अपेक्षा प्रसाद गुण का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। चित्त का विस्तार ही इस गुण का मूल है। आचार्य **मम्मट**[2] ने कहा है– जिस प्रकार अग्नि सूखी लकड़ी को तुरन्त पकड़ लेती है जिस प्रकार जल स्वच्छ वस्त्र को शीघ्र भिगो देता है उसी प्रकार जिस गुण से सभी रस चित्त को व्याप्त कर जाते है वह गुण ही प्रसाद गुण कहलाता है। प्रसाद गुण श्रृंगार करूण आदि रसों भी स्वच्छ वस्त्र में जल की तरह चित्त में व्याप्त हो जाता है।

माधुर्य का श्रृंगार तथा करूण आदि में तथा ओज का वीर रौद्र आदि रसों में प्रयोग किया जाता है।

किन्तु प्रसाद गुण का यह अदभुत वैचित्र्य है कि इस गुण का सभी रसो तथा सभी रचनाओं में यथा अवसर प्रयोग किया जा सकता है आचार्य विश्वनाथ ने कहा है–

---

1. हम्मीर महाकाव्य 10/27
2. काव्य प्रकाश 8/70–71

चित्त[1] व्याप्नोति यः क्षिप्रम शुष्केन्धनमिवानलः

स प्रसादः समस्तेषुरसेसु रचनाषु च।

शब्दास्तद्व्यञ्जका अर्थबोधका श्रुतिमात्रतः॥

हम्मीर महाकाव्य में भी स्वभावतः प्रसाद गुण का अधिकता से प्रयोग मिलता है। चाहमान वंशीय राजाओं का, भौगोलिक, ऐतिहासिक स्थानों का, नदी, पर्वत, ऋतु, जलक्रीड़ा आदि के वर्णन मे प्रसाद गुण का विस्तार से प्रयोग प्राप्त होता है।

वीर हम्मीर के चरित्र की श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुए कवि ने निम्नलिखित पद्य में प्रसाद गुण का प्रयोग किया है।

किलयस्य राज्यश्रियो विलासा अपि जीवितं च[2]

शकाय पुत्रीं शरणागतांश्चाप्रयच्छतः किं तृणमप्यभूवन॥

यह श्लोक पढ़कर ही तुरन्त ही सहृदय पाठक वर्णित कथावस्तु को जान लेता है प्रसाद गुण में पद्य सदल प्रायः समास रहित या स्वरूप समास वाले होते है।

प्रस्तुत पद्य में प्रायः समास का अभाव दिखायी पड़ता है और पद्य अर्थ का स्पष्ट शोध कराने में समर्थ है। अतः यहाँ प्रसाद गुण है। राजा सोमेश्वर की राजमहिसी कर्पूर देवी के कमलवत मुख का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है।

कर्पूरदेवीति वभूव तस्य प्रिया प्रियाराधनसावधाना।[3]

जितं यदास्येन जले निलीयद्याप्यप्सुजं किन तप्स्तनोति॥

---

1 साहित्य दर्पण 8/8

2. हम्मीर महाकाव्य 1/9।।

3 हम्मीर महाकाव्य 2/72

इस श्लोक में प्रसाद गुण दृष्टव्य है ऋतुराज बसन्त के वर्णन मे भी महाकवि ने अनेक स्थलों पर प्रसाद गुण का सुन्दरतम प्रयोग किया है। प्रिया का चुम्बन मीठा है अथवा बसन्त मीठा है ऐसा विचार करता हुआ कामातुर भ्रमर कुछ समय तक कमल का चुम्बन करता है और कुछ समय तक भ्रमरी का मुख चूमता है। यहाँ वर्णित शृंगार रस प्रसाद गुण के सम्पर्क से अधिक आनन्ददायी हो गया है।

किमु[1] चुम्बनं किमथवा मधुरं मधु इत्यसाविव विवेचन कृते
क्षणम्बुजं क्षणमथ भ्रमरीवदनं चुचुम्ब मधुकृत्प्रवणः।

रात्रि में प्रियतमा के वियोग के डर से चकवा ने अपनी चोच मे रखे हुए विषलता को नहीं छोड़ा उसके मुख में रखी हुयी लता मानो वियोग के समय निकलने वाले प्राणों को रोकने के लिए सीकड़ का काम कर रही हो।

निशि वियोगवतः[2] पततः स्थिता बिसलता चलचंचुपुटे बभौ।
असुगणं बनिता विदहाद विनिर्जिगमिसु विनिरोद्धुमिवाडर्गल।।

दुष्ट धर्म सिंह के कुशासन से पीड़ित भोजदेव ने वास्तविक स्थिति को प्रकट करने की चेष्टा की, किन्तु दुर्भाग्यवश धर्म सिंह के प्रति अत्यधिक विश्वस्त हम्मीरदेव ने उसके कथन पर ध्यान नही दिया। इसी का वर्णन प्रसादगुण युक्त इन दो पद्यों में रस प्रकार से किया है–

देवस्य यदि में प्राणैः कार्य गृहणातु[3] तर्हि तान्।
न सहे परमन्धस्य वाक्यतो कदर्थनाम्।।
निजगाद नृपो यस्य मयि भक्तिरनश्वरी।
न लुप्यतेऽत्र केनापि धर्मसिंहस्थ शासनम।।

---

1 हम्मीर महाकाव्य 5/31

2. हम्मीर महाकाव्य 7/13

3 हम्मीर महाकाव्य 9/173-174

यवनों को पराजित करके आते हुए **भीमसिंह** ने प्रसन्न होकर जब यवनों से छीने वाद्ययन्त्र को बजाया; तब यवन सैनिको ने सोचा कि जहाँ-जहाँ अपने बाजे की आवाज होती है वहाँ-वहाँ अपनी विजय मानकर शीघ्र ही सबको चल देना चाहिए। इसी भाव को अतिसरल प्रसादगुण युक्त वाणी में कवि ने इस श्लोक में वर्णित किया है।

यत्र-यत्र स्वकातोद्यनिर्घोषः प्रसरत्यरम।[1]
तत्र-तत्र जयं मत्वा गन्तव्य निखिलैरपि।।

इस प्रकार **जैत्रसिंह** द्वारा दिये गये उपदेशो में भी जगह-जगह पर प्रसादगुण युक्त पदावली सदृस्यों के हृदय में अपूर्व आनन्द प्रदान करती है।

इस प्रकार अपर बतायी गयी बातों से स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि **कविवर नयचन्द्र** ने विविध पद्यों में के अनुकूल वीर आदि रसों का सनिवेश किया है। उसी प्रकार माधुर्य ओज तथा प्रसाद आदि तीनों गुणों का यथावसर प्रयोग किया है। गुणों के सुन्दर प्रयोग के कारण ही इनके महाकाव्य का महत्व विद्वतसमाज में आज भी सुप्रतिष्ठित है। महाकवि ने गुणों के प्रयोग अदभुत सफलता प्राप्त किया है।

---

1. हम्मीर महाकाव्य 9/146

अलङ्कार

काव्यों के उत्कर्ष को बढ़ाने वाले तत्वों में गुणो के बाद अलंकारों के महत्व को स्वीकार किया गया। तत्र अलंक्रियतेऽनेन इति जिसके द्वारा काव्य की शोभा बढ़ जाती है उसे अलंकार कहते है। यमक उपमा आदि इसके बोधक है। अलंकार का लक्षण **श्री विश्वनाथ**[1] ने इस प्रकार कहा है–

शब्दार्थयोर स्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत।।

जिस प्रकार केयूर आदि अभूषण मनुष्यो की शोभा को बढ़ा देते हैं उसी प्रकार शब्द अर्थ की शोभा को बढ़ाने वाला रस आदि का उपकारक धर्म अनुप्रास रूपक उपमा आदि अलंकार नाम से कहे जाते है।

निश्चय ही अलंकार तीन प्रकार के होते हैं **शब्दगत अर्थगत शब्दार्थगत** शब्दालंकारों में **अनुप्रास यमक** आदि अर्थलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि प्रसिद्ध है। उपमालंकारों[2] में श्लेष, पुनरुक्तवदाभास गिना जाता है। यद्यपि गुण की तरह अलंकार रस की तरह स्थिर रूप में नहीं रहते किन्तु वे भी शब्द तथा अर्थ के द्वारा काव्य की आत्मा रस को चमत्कृत कर देते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है।

हम्मीर महाकाव्य में भी प्रायः सभी अलंकारों का प्रयोग दिखाई पड़ता है।

अनुप्रास–

शब्दालंकारों में प्रायः जहाँ तहाँ अनुप्रास सरलतापूर्वक स्थान ग्रहण

---

1. साहित्यदर्पण 101
2 साहित्य दर्पण का दशम परिच्छेद

करता है। **कविवर नयचन्द्र** ग्रन्थ के आरम्भ मे अपनी दीनता को प्रकट करते हुए गुरू की कृपा से इस महाकाव्य की रचना करने की इच्छा करते है और कहते है कि:–

सत्यर्थे[1] पृथगर्थायाः स्वरख्यञ्जन संहते।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते।।

जहाँ अर्थ होने पर भिन्नार्थक वर्णो की उसी क्रम से पुनरावृत्ति होती है वहाँ यमक अलंकार होता है। **हम्मीर महाकाव्य** में इस अलंकार का सुन्दर प्रयोग दिखलायी पड़ता है। जैसे–

तेनेति[2] तेने परलोक पीडा न तेनतेन परलोक पीडा।

चाहमानवंश के मुकुटमणि **पृथ्वीराज** का यह वर्णन है। पृथ्वीराज ने परलोकपीड़ा शत्रु पक्ष की पीड़ा को बढ़ा दिया किन्तु परलोक पीड़ा से स्वर्गलोक में जाने की बाधा नहीं उत्पन्न हुई। यह तात्पर्य है। इस प्रकार यहां पर यमक अलंकार का चमत्कार विरोधामास अलंकार को परिपुष्ट करता हुआ दिखाई पड़ता है। महाराज बाल्हण के वर्णन के अवसर पर भी यमक अलंकार का चमत्कार स्पष्ट परिलक्षित होता है। यथा–

द्याम्नि[3] च संक्षेपं विधित्सन यो विरोधिनाम।
अवनिपालतां हित द्रागवनीपालतां ददो

यहाँ पर राजा वाल्हण ने शत्रुओं के राजा को नष्ट करके विरोधियों के नाम को तथा तेज को अति संक्षिप्त बनाने की इच्छा करते हुए वर रक्षता प्रदान किया। यहाँ वनीपालता वनीपालता में यमक अलंकार का प्रयोग सुशोभित हो रहा है।

---

1. साहित्यदर्पण 10/8
2 हम्मीर महाकाव्य 2/80
3. हम्मीर महाकाव्य 4/36

श्लेष—

श्लेषालंकार का लक्षण **आचार्य विश्वनाथ** ने इस प्रकार कहा है।

शिलष्टैः[1] पदैरने कार्थामिधाने श्लेष इष्यते।

वर्ण प्रत्ययलिङ्गानां प्रकृत्योः पदयोरपि।

श्लेषद्विभक्ति वचन भाषाणामष्टद्याच सः

इति

अनेक अर्थ युक्त पदो द्वारा तथा अमिधावृत्ति द्वारा अनेक अर्थ व्यक्त होने पर श्लेष नामक अलंकार होता है। जहाँ शब्द में परिवर्तन कर दिये जाने पर अर्थ में परिवर्तन न हो उसे शब्द श्लेष कहते है। यह शब्द श्लेष वर्ण, प्रत्यय, लिंग, प्रकृति, पद, विभक्ति, वचन और भाषा भेद से आठ प्रकार का होता है।

हम्मीर महाकाव्य में शब्द श्लेष के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में चाहमान वंश के वर्णन में श्लेष अलंकार का चमत्कार दिखाई पड़ता है।

तदारव्यया[2] जायत चाहमान वंशस्त्रिलोकी विहितप्रशंसः।

शश्वत सुपर्वावलि सेव्यमान उत्पत्ति हेतु र्नरमौक्तिकानाम।।

इस पद्य में वंश कुल तथा वास का बोधक है सुर्पवाणा शब्द देव शब्द का वाचक है तथा बांस के गाँठ को ग्रन्थी कहते है और वे ही मोतियों के उत्पत्ति के कारण हैं यहाँ वंश एवं सुपर्व शब्द शिलष्ट है। अतः यहाँ श्लेष अलंकार है। चाहमान वंश के आदि पुरुष वासुदेव के शौर्य वर्णन के अवसर पर महाकवि ने शब्द श्लेष का मनोरम प्रयोग किया है। जैसे कि—

---

1 साहित्य दर्पण 10/11-12

2. हम्मीर महाकाव्य 1/25

अशात्रवं विश्व मिदं विधातु क्रुद्धे परिभ्राम्यतियत्रभूपे[1]

राज्यश्रियं वातुमरातयः स्वकोशाद् वसून्याचकृषु न खडगान।।

इस प्रद्य में शत्रुगण राज्य लक्ष्मी की रक्षा के लिए स्वकोशात अपने भण्डार से धन देने के लिए निकालते थे भयभीत होकर अपनी रक्षा के लिए खडग से तलवार नही निकालते थे। यहाँ पर कोश पद श्लिष्ट होने से श्लेषालंकार है।

राजा जयपाल के वर्णन प्रसंग में—

यो[2] विश्व विख्यातयशः प्रकाशो

मृशं न कन्दर्पमुरी चकार।

इस पद्यांश में कंदर्प नांर्गाचकार किस अभिमान को स्वीकार नही किया मृशं संदर्भ अत्यधिक कामदेव को स्वीकार नहीं किया। इन दोनों अर्थो का अमिधा के द्वारा बोध होने से श्लेषालंकार स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।

वीर पृथ्वीराज के दानवीरता की बहादुरी की प्रशंसा में लिखे इस पद्य मे भी शब्द श्लेष का चमत्कार निश्चय ही दर्शनीय हैं

वीर[3] यवरणे तथा वितरणे सन्मागणनां गणं

स्तन्वाने प्रथमानमान विमवे संलब्धलक्षान क्षणात।

पूर्वोपाजित कीर्तिकर्तन मिया सम्भ्रान्त चित्तश्चिरम

कश्चन्न श्रयति स्मदान परतां नो वा मटम्मन्यताम्।।

इस वीर पृथ्वी राज के युद्ध में लक्ष्यबेध करने वाले प्रधान बाणों निरन्तर विस्तार करते रहने पर तथा महराज पृथ्वीराज द्वारा स्वर्णो के प्राप्त

---

1 हम्मीर महाकाव्य 1/33 भूपे।

2 हम्मीर महाकाव्य 2/61

3 हम्मीर महाकाव्य 2/90

करने वाले याचकों के निरन्तर विस्तार करते रहने पर कोई अन्य राजा दानशीलता में एवं वीरता में उसका शानी नही था। इस प्रकार यहाॅ पर भी श्लेषलंकार सुशोभित हो रहा है।

धावा पृभिव्योरुदरम्मरीणि प्रोत्तुंगरंगदगर्जितानि[1]।
अपि ह्यानां धरणी धाराणां सत्वानि चकुविघृतीनि।।

इस पद्य में वर्णित सभी विशेषताओं का धरणीधेरः राजाओं तथा पर्वतों के साथ सम्बन्ध है धरणीधर पद का एक अर्थ राजा है तथा दूसरा अर्थ पर्वत है। इसी कारण से यहाँ भी श्लेषालंकार का चमत्कार स्पष्ट प्रतीत होता है।

प्रहलाद नाम वाले राजा के दसो दिशाओं को जीतने के लिए उद्यत होने पर शत्रुगण अपने प्राणों की रक्षा के लिए दो प्रकार से प्रद्यनम संग्राम को द्वितीय पक्ष में प्रकृष्ट धन को त्याग दिया। प्रधन पद से दो अर्थ प्रकट करते हुए कवि ने निम्नलिखित पद्य में शब्द श्लेष का सुन्दरतम प्रयोग किया है

विशामीशे[2] दशाप्याशा जेतुं यत्र कृतोद्यमे।
वैरिणो जीवितं मातुं द्विद्यापि प्रधनं जहुः।।

अर्थालंकार–

कविवर नयचन्द्र ने इस महाकाव्य में[3] मुख्य रूप से प्रायः सभी अर्थालंकारों का यथावसर सुन्दर प्रयोग किया है। उन अलंकारों में उपमा उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, व्यतिरेक, दीपक, तुल्योगिता अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, विरोधाभास–परिसंख्या, भ्रान्तिमान, दृष्टान्त तथा सन्देह आदि प्रमुख है।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—3/19

2. हम्मीर महाकाव्य 4/45

3. हम्मीर महाकाव्य

उपमा—

सभी अर्थालंकारों में काव्यशास्त्र मर्मज्ञो ने उपमा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान स्वीकार किया है। इसी कारण अपय्य दीक्षित ने चित्र मीमांसा में उपमालंकार की प्रशंसा में कहा है।

उपमैका[1] शैलूषी

उपमालंकार का लक्षण **आचार्य विश्वनाथ** ने इस प्रकार किया है

साम्य[2] वाच्यमवैधर्म्य वाक्यैक्य उपमाद्द्योः

जहाँ पर एक ही वाक्य में इव आदि शब्दो से उपमेय और उपमान मे वैधर्म्य रहित समानता दिखलायी पड़े वहाँ उपमा अलंकार होता है। उपमा में प्रमुखरूप से सादृश्य का ही चमत्कार होता है। उपमा मे सर्वप्रथम पूर्णोपमा तथा लुप्तोपमा नामक दो भेद होते है। उपमालंकार के चार अंग होते है उपमेय, उपमान उपमावाचक शब्द, (इव सदृशादि शब्द) साधारण धर्म इस सभी अंगो का जहाँ पर प्रत्यक्ष रूप से वर्णन होता है वहाँ **पूर्णोपमालंकार[3]** होता है। किन्तु जहाँ इन अंगो में से किन्ही तीन दो अथवा एक अंग का लोप हो वहाँ लुप्तोपमालंकार होता है।

हम्मीर महाकाव्य में अनेक स्थानों पर उपमालंकार सुन्दरतम प्रयोग परिलक्षित होता है। उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

आलोक मात्रेण[4] शुभानि पुस्णंस्तत्वार्थ दृष्टचा च तमास्यपास्यन।
प्रजा विवस्वानिव वृत्तरम्यः संवर्द्धयामास निरन्तरं यः ॥

---

1 चित्र मीमांसा
2 साहित्य दर्पण—10/4
3 साहित्य दर्पण—10/15--8
4 हम्मीर महाकाव्य 1/68

यहाँ पर कवि ने सामन्त सिंह के वीर पुत्र नन्दन सिंह के प्रताप का वर्णन उपमा अलंकार में किया है राजानन्दन सिंह देखने मात्र से प्रजा का शुभ करते हुए तत्वार्थ दृष्टि से अन्धकार को दूर करते हुए सूर्य के समान प्रजा का सम्वर्द्धन किया। यही इस पद्य का तात्पर्य है। यहॉ राजा उपमेय, विवस्वान उपमान, उपमावाचक शब्द वृत्तम्यत्वादि साधारण धर्म बतलाया गया है। अतः पूर्णोपमा अलंकार है।

इस महाकाव्य के दूसरे सर्ग में पृथ्वीराज के वर्णन प्रसंग में निम्नलिखित पद्य भी उपमा के लालित्य को प्रकट करता है।

तनुत्विषा[1] निर्दलितान्धकार जाल स वालोऽन्बह्मेघमानः।
मृषं प्रजानां नयनाम्बुजानाम भद्रंकारो मानु रिवाजनिष्ट ॥

बालक पृथ्वीराज अपने बाणों की कान्ति से अंधकार का विनाश करते हुए प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त करते हुए जिस प्रकार सूर्य कमलो को आनन्द देने वाला होता है वैसे ही पृथ्वीराज प्रजाओं के आनन्द बढ़ाने वाले हुए। यह कवि ने बालक पृथ्वीराज का सूर्य के साथ सादृश्य वर्णन करने से उपमा अलंकार है।

कविवर नयचन्द्र ने पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के तलवार के वर्णन में उपमालंकार का सुन्दर प्रयोग किया है।

रणेषु[2] येन स्वकराम्बुजेन प्रोल्लास्यमाना सिलता चकासे।
अन्तः स्फुरत्क्रोधकृशानुजात धूम्येव साक्षात वहिरुल्लसन्ती।।

महराज सोमेश्वर द्वारा चमकायी जाती हुए असिलता कोपाग्नि से उत्पन्न धूये के समान बाहर सुशोभित होने लगी। यहाँ पर धूएँ की कालिका के साथ

---

1 हम्मीर महाकाव्य 2/76

2 हम्मीर महाकाव्य 2/68

तलवार के सदृश्य के कारण उपमालंकार स्पष्ट है।

इस महाकाव्य के तृतीय सर्ग में शकनरेश साहबदीन के वर्णन में महाकवि ने उचित ही उपमा का प्रयोग किया है।

तपः[1] प्रभावार्जित वर्य वीर्यः
शहाबदीनः शकमेदिनीनः
उपप्लवायाजनि धूमकेतु
रिवावनौ वाहुज मण्डलानाम

शाहबदीन नामक शकनरेश पृथ्वी पर क्षत्रियों के विनाश के लिए धूमकेतु के समान जन्म गृहण किया। यहाँ कवि ने शहबदीन का धूमकेतु के साथ सादृश्य वर्णन किया है। अतः उपमालंकार है।

इस महाकाव्य के पाँचवे सर्ग में बसन्त में बहुत स्थानो पर उपमा का चमत्कार पूर्ण वर्णन हठात मन को आकर्षित कर लेता है।

शुक[2] चंचु सन्निम पलाश दलत कुसुमानि रेजुरमितोऽनुवनम।
शमदन्तिनं मृशमुपाननयतो वशंमंकुशा इव सुभेषुविमोः।।

वन में खिले हुए पलास के फूल हाथियों को वश में लेने वाले कामदेव के अंकुश के समान सुशोभित हो रहे है। कामदेव के अंकुश के साथ पलाश फूलों का सादृश्य वर्णन होने से उपमालंकार स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।

''बसन्ते वनेन्वने मधुमानतः शिथिला भ्रमन्तः भ्रमन्तः गुलिकास्ताम्यासम् कुर्वतः कामदेवस्य गुलिका इब अशोमन्त'' इस बसन्तवर्जन परायण पद्य मे भी उपमालंकार के चमत्कार को सहृदश्यो द्वारा भुलाया नहीं जा सकता—

1. हम्मीर महाकाव्य 3/7
2. हम्मीर महाकाव्य 5/12

मद्यपानतः[1] शिथिलितभ्रमरा भ्रमिरा वमु प्रतिवनं तरुषु।
गुलिकास्त्र काम्यसनमुन्नयतो गुलिका इव प्रसवचाप विभोः।।

शक प्रधान निसुरत्तखान के सैनिकों के साथ जब हम्मीरदेव के वीर क्षत्रिय सैनिकों ने युद्ध आरम्भ किया तब कुछ यवन सैनिक भय के कारण वन्दरों के समान कूदकर पहाड़ पर् चढ़ गये तथा कुछ क्रोध के कारण शूकर के समान शाल वृक्ष के नीचे प्रवेश कर विचरण करने लगे।

उत्प्लुत्य[2] शाखामृगवत गिरीन्द्रम
आरुढवन्तः किल केऽपि वीराः।
प्रचरिन्वरे शालतल प्रविष्ट
के चिद् वराह इव तीव्र प्रकोपात् ।।

इस पद्य में कवि ने यवन सैनिकों की तुलाना बन्दरो तथा सूअरो से की है। इसी कारण यहाँ उपमालंकार है।

उड्डान सिंह शकाधीश अल्लावदीन की आज्ञा से कोमलांगी नर्तकी धारा की उसी प्रकार हत्या कर दी जिस कार पापी बहेलिया मृगी की हत्या कर देता है। इस प्रकार इस महाकाव्य के तेरहवे सर्ग में निम्नलिखित पद्य मे उपमालंकार से अलंकार सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। यह पद्य इस प्रकारः—

ततः[3] स सज्जी भूताङ्गोऽनन्यसाधरणं धनुः।
आदायाह्लाय तो पापो विव्याध व्याधवन्मृगीम् ।।

यहाँ दुष्ट उड्डान सिंह का बहेलिए के साथ तथा नर्तकी धारा का मृगी के साथ सादृश्य वर्णन है। अतः यहाँ उपमालंकार का आधिपत्य सुशोभित

1. हम्मीर महाकाव्य 5/20
2 हम्मीर महाकाव्य 11/92
3 हम्मीर महाकाव्य 13/31

हो रहा है।

इस प्रकार इस महाकाव्य में सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन के बाद उपमालंकार का सुन्दर तथा समुचित प्रयोग विस्तार से दिखलायी पड़ा है।

हम्मीर महाकाव्य में उत्प्रेक्षालंकार का भी सुन्दर प्रयोग बहुत से पद्यों मे दृष्टिगोचर होता है। ऐसे कुछ ही कवि प्रतिभा के धनी होते हैं जिनके मन मे नई–नई विविध कल्पनाओं का सागर तरंगित होता है। महाकवि नयचन्द्र भी प्रतिभा के प्रभाव से नूतन कल्पनाओं के आविष्कार में नितान्त प्रवीण प्रतीत होते है। यही कारण है कि इनकी रचना मे उत्प्रेक्षालंकार का सुन्दर प्रयोग रसिकों के हृदयों को आनन्दित करता है। उत्प्रेक्षालंकार का लक्षण **आचार्य विश्वनाथ** ने निम्नलिखित प्रकार से किया है–

भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।[1]
वाच्य प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविद्या मता।।
वाच्येवादि प्रयोगेस्याद प्रयोगे परापुनः।
जातिर्गुणः क्रिया दृव्यं यदुप्रेक्षणं द्वयोरपि ।।

जहाँ पर प्रकृत अर्थात उपमेय का परात्मना अर्थात उपमान के साथ सम्भावना किया जाय वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है। उत्प्रेक्षा के सूचक शब्द मन्ये, शङ्के ध्रुवम, प्रायः नूनम् इत्यादि होते है। वह उत्प्रेक्षा भी दो प्रकार की होती है। वाच्य तथा प्रतीयमान। जब इव आदि शब्दों का प्रयोग होता है तब वाच्य तथा जब इव आदि का प्रयोग नहीं होता तब प्रतीयमानं उत्प्रेक्षा होती है।

इस महाकाव्य में उत्प्रेक्षालंकार का भी अधिकता से प्रयोग देखने को

---

1. साहित्य दर्पण–10/40–41

मिलता है। इस महाकाव्य के नायक चाहमान वंश के मुकुटमणि **हम्मीरदेव** के कुल के ऐतिहासिक चरित्र का वर्णन करते हुए महाकवि ने निम्नलिखित पद्य में उत्प्रेक्षा का सुन्दरतम प्रयोग किया है।

यज्ञाय[1] पुष्यं क्वचन प्रदेशं द्रष्टुं विद्यातुभ्रंमतः किलादौ।
प्रपेतिवत पुष्करमाशु पाणिपदमात पराभूतमिवास्यमासा।।

सृष्टि के आदि में यज्ञ के लिए पुष्य प्रदेश की तलाश में घूमते हुए ब्रह्मा जी के कमलवत हाथों से कमल गिर पड़ा इस महानायक के करकमल की कान्ति से पराजित होकर इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है।

इस महाकाव्य के द्वितीय सर्ग मे राजा आनल्लदेव के दानवीरता आदि गुणों का विशेष वर्णन करते हुए कवि ने कहा है

प्रोदंच्च पाणिं कनकाद्रिम्नादिदं जगादेव वसुन्दरेयम[2]

इस पृथ्वी ने मानो सुमेरुके बहाने हाथ उठाकर कहा कि इस संसार में आनल्लदेव को छोड़कर मैने दान–विवेक–विनय आदि गुणों से विभूषित किसी दूसरे राजा को नहीं पैदा किया। इसी कारण से यहॉ भी स्पष्ट रूप से उत्प्रेक्षालंकार है।

महाकवि ने पृथ्वी राज के पिता सोमेश्वर का राजरानी कर्पूर देवी के प्रति स्वाभाविक प्रेम का वर्णन करते हुए इस श्लोक में उत्प्रेक्षा का मधुरतर प्रयोग किया है।

इह स्थितोड्सो रमणः कदाचित विलोक्य लुच्छो भविता[3] वतैताः।
इतीव यानो हृदये प्रवेष्टु मेणी दृशामत्यदिताव काशम।।

---

1. हम्मीर महाकाव्य– 1/14
2. हम्मीर महाकाव्य– 2/49
3 हम्मीर महाकाव्य 2/73

मेरा पति मेरे ह्रदय में स्थित हैं कदाचित हो सकता है कि दूसरी सभी को देख कर राजा आकृष्ट हो जाय। किन्तु राजरानी कर्पूर देवी को अपने ह्रदय मे राजा को बन्द कर लिए है अतः अन्य नारियों को ह्रदय में प्रवेश करने का अवकाश ही नहीं है।

दिकशैल द्विपकूर्ममोगि विभवः प्रोद्धृत्य सर्वसहां[1]
तद्भूयो मरमंगुराः परिमुमुक्षन्तोऽपि कम्पच्छलात
दृष्टवा यं प्रतिपन्नसूरमनिशं मूपाल चूडामणि
लज्जाकीलकल्कीलिता इवनताशके त्यजन्तिस्म ते।।

महाराजा पृथ्वीराज को द्वितीय शूर जानकर लज्जा रूपी कील से जड़े हुए के समान समस्त दिशाए तथा पर्वतादि पृथ्वी से अलग ही हो रहे है। यहाँ पर उपमेय पृथ्वीराज का उपमान दिशाएं एवं पर्वतादि में सम्भावना होने से वाच्य उत्प्रेक्ष्य का स्पष्ट उदाहरण है।

पाँचवे सर्ग में वसन्त वर्णन मे भी उत्प्रेक्षा का सुन्दर प्रयोग देखने योग्य है।

कृतवेल्लना[2] मलयदिक पवनै वन पल्लयो रुरुचि रेऽतिराम
उप गृहनानिं चिरकाल भवन मिलनान्मिथः प्रवितरन्त्यइव

बसन्त काल में बहुत दिनो के अनन्तर मिलन की उत्सुक्ता से आलिंगन प्रारम्भ करते हुए दक्षिणानिल के द्वारा कम्पित वन लताएं अत्याधिक सुशोभित हो रही है। इस प्रकार यहाँ उत्प्रेक्षा स्पष्ट रूप से रसिक जनो के मन को आच्छादित कर रहा है।

बसन्त समय में स्वाभाविक रूप से कोयल की बारबार मधुर ध्वनि गूज

---

1 हम्मीर महाकाव्य 2/85।

2. हम्मीर महाकाव्य 5/28

रही है। उसके सुन्दर आवाज को सुनकर कवि कल्पना करता है कि मानो मृगनयनी नायिका अपने स्वर में यह निवेदित कर रही है कि अभिमान को छोड़कर अपने हृदयेश के साथ सुखभोग करो क्योकि गया हुआ समय पुनः नही आता। इसी आशय को उत्प्रेक्षालंकार में अलंकृत कर निम्नलिखित रूप मे कवि ने प्रकाशित किया है।

हृदयेश्वरं[1] मजत मानममुं त्यजाशु नैति समयो हिगतः।
इतिबोधयन्निव कुरङ्गदृशो रुचिरं चुकूज परिपुष्ट युवा।।

चकवा पक्षी सूर्ययस्त तक अपनी प्रियतमा चकवी के साथ निवास करती है किन्तु रात्रि में वह उससे अलग हो जाता है यह कवि ससार मे प्रसिद्ध है। इसी प्रसंग में कवि कहता है रात्रि मे अपनी प्रियतमा से वियुक्त चकवा पक्षी के मुख में स्थित कमलनाल यह सूचित करता है कि मानो यह कमलनाल प्रियतमा के वियोग से प्राण कही निकल न जाये इसके लिए सीकड़ का काम कर रहे है।

निशि वियोगवतः पततः स्थिता विसलता[2] चलचंचुपुटे स्थिता
असुगणं वनिता विरहात विर्निजिगमिषु विनिरोद्धु मिवार्गल।।

यहाँ पर कवि ने चकवा के चोंच में स्थित कमलनाल को लक्ष्य कर अर्गला (सीकड़) की सम्भावना किया है अतएव उत्प्रेक्षा का यह चमत्कार अतीव हृदयाकर्षक है।

वर्षाऋृतु के वर्णन प्रसंङ्ग में कविवर नयचन्द्र ने **उत्प्रेक्षालंकार** द्वारा निम्नलिखित पद्य में विस्मयोत्पादक चमत्कार प्रदर्शित किया है।

मेघ वर्षा के समय कभी-कभी बिजली चमक जाती है। वह क्यो

---

1 हम्मीर महाकाव्य 5/30

2 हम्मीर महाकाव्य 7/13

चमकती है इस विषय में कवि कल्पना करता है कि मानो मेघ और विद्युत यह देखने के लिए चमकते है कि पृथ्वी का कौन–कौन सा अङ्ग सीचा जा चुका है और कौन अङ्ग सीचना है। इस प्रकार की मधुर कल्पना उत्प्रेक्षालंकार द्वारा रसिको को आनन्दित कर रही है।

इस प्रकार हम देखते है कि इस महाकाव्य में कवि ने **उत्प्रेक्षालंकार** का बहुत से पद्यो में सुन्दरतम प्रयोग करके अपूर्व सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया है।

हम्मीर महाकाव्य में रूपकलंङ्कार के प्रयोग मे भी कवि ने अपनी प्रतिभा का विलक्षण चमत्कार का प्रदर्शन किया है। चाहमान वंश के आदि नरेश श्री वासुदेव के प्रयोग का वर्णन करते हुए कवि कहता है

प्रतापवर्हिनः ज्वलितो[1] यदीयः स्थाने यदन्यायवन न्याद्याक्षीत।
जगज्जनाश्चर्य करं तदोद वैरिणां कम्पमरं ततान।।

वासुदेव से सम्बद्ध प्रताप रूपी अग्नि ने अन्याय रूप वनो का जला डाला। इस श्लोक के पूर्वद्ध में रूपकालंङ्कार का अतिसुन्दर प्रयोग दिखलायी पड़ता।

रूपकङ्कार का लक्षण क्या है इस विषय में **आचार्य विश्वनाथ** कहते है।

रूपक[2] रूपितोरोपाद विषये निरपहन्वे।
तत्परम्परितं साङ्ग निरङ्ग मिति च त्रिद्या।।

अर्थात निषेध रहित विषय उपमेय में रूपित उपमान का आरोप होने से **रूपकलंङ्कार** होता है। और वह रूपक भी पारम्परित, साङ्ग तथा निरंग भेद

---

1 हम्मीर महाकाव्य 1/35

2 हम्मीर महाकाव्य 10/28

से तीन प्रकार होता है।

महाकवि नयचन्द्र ने इस महाकाव्य में जयपाल नामक महीमहेन्द्र के यशवर्णन में रूपकलंङ्कार का हृदयकारी प्रयोग किया है।

तस्मादशो निष्ट महिष्ठ धामा[1]

महीमहेन्द्रो जयपालनामा।

मुवदिनर रिपुकामिनीनाम

यशरतरू पल्लवितो यदीयः।।

यहाँ जयपाल नामक राजा का यश तस्रूप से आरोपित है। इसलिए इस पद्य में रूपक अलंङ्कार है।

इसी प्रकार से महाराज पृथ्वीराज के प्रताप का वर्णन महाकवि ने निम्नलिखित पद्य में सूर्य से किया है। इसलिए यहाँ रूपक का चमत्कार सुशोभित हो रहा है।

प्रतापसूर्योऽभ्युदितेऽदसीये।[2]

सन्ध्यं किमेतेन वतोद्यतेन।।

यहाँ पर पृथ्वीराज का विलक्षण प्रताप शूर रूप में वर्णन के रूपकलङ्कार चमत्कार स्पष्ट प्रतीत होता है।

वीरवर महाराज वाग्भट्ट तथा वीरनारायण द्वारा त्यागा गया रणस्तम्भपुर जब शकों से से भर गया उस समय का वर्णन **रूपकलङ्कार** में जिस सुन्दरता से कवि ने किया वह निश्चय ही दर्शनीय है।

ततो[3] वाग्मटभूपाल सूर्येन्दु परिवर्जितम् ।

रणस्तम्भपुर व्योम व्यानशे शकतारकै ।।

---

1 हम्मीर महाकाव्य 2/60

2. हम्मीर महाकाव्य 3/20

3 हम्मीर महाकाव्य 4/106

इस पद्य में वाग्मट तथा वीरनारायण पर क्रमशः सूर्य और चन्द्रमा का आरोप करने से तथा रणस्तम्भपुर पर आकाश का तथा शको पर तारा समूह आरोप किया गया है। इसी कारण से यहाँ परम्पारिक रूपकालंकार है। इसका लक्षण आचार्य **मम्मट** ने इस प्रकार किया है।

नियतारोपणोपाय[1] स्यादारोपः परस्य यः।

तत्परम्परितं श्लिष्टे वाचके भेदमाजि वा।।

जो अन्य का आरोप (वर्जनीय होने से) अवश्यापेक्षणीय (नियत अन्य) अर्थ के आरोप का कारण होता है वह परम्परित रूपक होता है। वह भी श्लिष्ट तथा अश्लिष्ट भेद से दो प्रकार का होता है।

उपर्युक्त श्लोक में भूपाल का सूर्य और चन्द्रमा के रूप मे वर्णन, रणस्तम्भपुर का आकाश के रूप में तथा शको का तारा समूह के रूप मे वर्णन किया गया है। अतः यह सुन्दर उदाहरण **अश्लिष्ट परम्परित रूपक का है।**

अपूर्व शौर्यशाली रतिपाल ने जब युद्ध में विलक्षण पराक्रम दिखलाकर अल्लावदीन को अपने वश में ले लिया उस समय हम्मीर ने सादर स्नेह पूर्वक कांचन श्रृंखला प्रदान की और कहा यह मेरा मतवाला गज है।

अथ[2] क्षितीशोरतिपाल शौर्यम

अतीतमाकर्ण्य लसत्प्रमोदः।

मत्तो ममायं गज इत्यमुष्य

पादेऽक्षिपत् काचंन श्रृंखलानि।।

कवि ने इस पद्य में वीर शिरोमणि रतिपाल को मतवाले हाथी के रूप

1. काव्य प्रकाश 10/95
2. हम्मीर महाकाव्य 10/63

मे वर्णन किया है। इसलिए यहाँ रूपकालङ्कार का चमत्कार स्पष्ट रूप से प्रतीत हो रहा है।

इस प्रकार इस महाकाव्य में रूपकाङ्कार का अनेक स्थानों में चमत्कारी प्रयोग देखा जा सकता है।

अतिशयोक्ति–

अलंङ्कारों में अतिशयोक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रायः सभी कवियो तथा महाकवियों ने अपने काव्य में चमत्कार पैदा करने के लिए नायक आदि के चरित्र चित्रण का प्रयोग किया है। इस अलङ्कार का लक्षण **आचार्य विश्वनाथ** ने इस प्रकार किया है।

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्या तिशयोक्ति निर्गद्यते[1]

जहाँ पर उपमेय के स्वरूप को छिपाकर उपमान का अभेद ज्ञान होता है वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है। वह अतिश्योक्ति पॉच प्रकार की होती है।

भेदेऽप्यभेदः सम्बन्धेऽप्यसम्बन्धस्त्र द्विपर्ययौ।[2]
पौर्वापर्यात्ययः कार्य हेत्योः सा पञ्चधाततः।।

अतिशयोक्ति अलङ्कार का प्रयोग भी हम्मीर महाकाव्य मे बहुत स्थानो पर दिखलायी पड़ता है । जिस प्रकार नायक हम्मीर देव के सत्वगुण की अतिशय विवेचना के कारण निम्नलिखित पद्य में अतिशयोक्ति अलङ्कार है।

सत्वैक वृत्तेः[3] **किल यस्य राज्य**
श्रियो विलासा आदि जीवितं च।

---

1 साहित्य दर्पण 10/46
2 साहित्य दर्पण 10/47
3. हम्मीर महाकाव्य 1/9

शकाय पुत्री शरणागतांश्य

प्रयच्छतः कि तृणमप्यभूवन ।।

हम्मीर देव के विचित्र चरित्र की कीर्ति को सुनकर पृथ्वी के विनाश के भय से शेषनाग ने अपने शिरो को नहीं कपाया जिससे उसने बहुत कष्ट प्राप्त किया। इस प्रकार उसने अधिक शौर्य का वर्णन करते हुए कवि ने निम्नलिखित पद्य में अतिशयोक्ति अलंङ्कार का सुन्दर प्रयोग किया है।

निशम्य[1] सुप्रीतमना यदीयां कीर्ति विचित्रोरुचरित्ररम्याम।

महीतल ध्वंस मिया शिरः स्वकम्पयंस्तापकवाप शेषः।।

चाहमानवंश के राजा जयपाल के ओज निर्माण मे ब्रह्म के शरीर से जो पसीना निकला उसी से समुद्र का जल भी खारा हो गया। यहाँ पर निश्चय ही अतिशयोक्ति अलंङ्कार दर्शनीय है।

काम[2] यदोजः सृजि वेद्यसोऽपिस्वेदोदयः कोऽपि स आविशासीत।

प्रसर्पता येन नदीवदम्बुराशेरपि क्षारमकारि आदि।।

भुजंगराज जिस भूभार को हजारों शिरो से धारण करते है। उसी भूभार को सोमेश्वर राजा एक भुजा से धारण करते है। इसका वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है।

अनेन[3] राज्ञा सममेकभावं

कथं समायातु भुजंगराजः।

अघात सहस्त्रेण सगा शिरोमि

रयं पुनरस्ता भुजयेकयैव।।

इस प्रकार इस महाकाव्य में बहुत से पद्यों[4] में अतिशयोक्ति कि अलंङ्कार

---

1 हम्मीर महाकाव्य 1/22

2 हम्मीर महाकाव्य 1/51

3 हम्मीर महाकाव्य 2/71

4 हम्मीर महाकाव्य 2/88

का वर्णन देखा जा सकता है।

दीपकम–

अलङ्कारों में प्रसिद्ध **दीपकालङ्कार** का लक्षण **साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ** ने इस प्रकार कहा है

अप्रस्तुत प्रस्तुतयोर्दीपक तु निगद्यते[1]
अथ कारकमेकं स्याद्नेकासु क्रियासुचेत।।

जहाँ प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत पदार्थो का एक धर्मामि सम्बन्ध कहा जाता है वहाँ दीपक अलंकार होता है। यह दीपक का प्रथम भेद है। जहाँ अनेक क्रियाओं में एक ही कारण होता है वह दीपक का दूसरा भेद कहा जाता है। **हम्मीर महाकाव्य** में भी दीपकालंकार का सुन्दर उदाहरण दृष्टिगोचर होता है चाहमान वंशीय राजा पृथ्वीराज का शकेश्वर साहवदीन के साथ युद्ध के अवसर पर कवि ने इस पद में क्रियादीपक का मनोहारी वर्णन किया है।

प्राग रणजलानि ततः करेणु कुम्भ प्रमत् षटपझंकृतानि[2]
तत्तोभटानां स्फुट सिंह नादाः सैन्य यस्याप्यमिलंस्तदानीम्

कविवर नयचन्द्र ने महाराज पृथ्वीराज के दिशा व्यापी यश के वर्णन में निम्नलिखित श्लोक में भ्रान्तिमत अलङ्कार के साथ दीपक अलङ्कार का नीरक्षीर न्याय के अनुसार मधुर तथा कमनीय सम्मिश्रण प्रदर्शित किया है।[3]

[3]वाग्देवी चिकुरे शशङ्कमुकरे शम्भुं गले तदृषं
प्रोद्याग्रे वलमम्वरे भदकलं एवं कुम्भिनं कुम्भयो
जग्राहस्य यशोभ्रमणे भुवने भ्राम्मद द्विषां दुर्यशो
छिगवैरस्य दुरन्ततां स्फुरति या तत्सन्तता वप्यहो।।

---

1 साहित्य दर्पण 10/48
2 हम्मीर महाकाव्य 3/25
3 हम्मीर महाकाव्य 2/83

यहाँ पर वर्णित राजा का यश भुवन में घूमने के कारण दुश्मनो का काली अपकीर्ति सरस्वती के बालो में चन्द्रमा के कलंक के रूप मे भगवान शंकर के गले में, नन्द की गाय के नासाग्र में, बलभद्र के वस्त्र मे, ऐरावत के नाथ को ग्रहण कर लिया। जहाँ **क्रिया दीपक** का मनोरम सौन्दर्य सदृश्यो को अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है।

तुल्योगिता–

तुल्ययोगिता का सुन्दर प्रयोग **हम्मीर महाकाव्य** में दिखलाई पड़ता है। इस प्रकार कहा है–

पदार्थानां प्रस्तुतनामन्येषां वा यदा भवेत[1]
एक धर्मा मि सबन्ध स्यात्तदा तुल्य योगिता।।

जहाँ प्राकरणिक अथवा अप्राकरणिक पदार्थो का गुण क्रिया रूप मे एक ही धर्म में अभिसम्बन्ध होता है वहाँ तुल्य योगितालङ्कार होता है।

उदाहरण के रूप में—

वियोगिनीनां नेत्राणि व्योम्न्यभ्रपटलान च।[2]
मिथः स्पधी दधन्तीव वर्षन्ति स्माधिकाधिकम।।

इस पद्य में वियोगिनी नायिकाओं का और आकाश में मेघ समूहो जैसे प्रस्तुत पदार्थो का वर्षन्ति इस क्रिया के साथ एक धर्माभि होने से सम्बन्ध तुल्ययोगितालङ्कार है। इस अलंङ्कार का कवि नयचन्द्र ने अति अल्प प्रयोग किया है।

---

1 साहित्य दर्पण 10/47।

2. हम्मीर महाकाव्य 13/57

दृष्टान्त

दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुना प्रतिविम्वनम्''[1]

इस अलंङ्कार का प्रयोग **हम्मीर महाकाव्य** में अनेक स्थानो पर दिखलाई पड़ता है। हम्मीर महाकाव्य के तृतीय सर्ग में पृथ्वीराज की सेना के साथ युद्ध करते हुए तुरुष्क सैनिकों का वर्णन काकदृष्टान्त के साथ प्रदर्शित कर कवि ने दृष्टान्तालङ्कार का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

अशोद भटैश्चार भटैश् तुरुष्का
श्चण्डासिदण्डै रमिताड्यमाना
नेशुः समन्ताल्लगुड प्रपाते
यथा कुलान्येक विलो चनानायम[2]

इसी प्रकार से निम्न लिखित पद्य में भी दृष्टान्तालङ्कार का सुन्दर प्रयोग दृष्टिगत होता है।

नाकलोकम्पृणे मुष्मिन्नम्लासीत तत्परिच्छदः[3]
अस्तंगते जगदद्वीप स्मेरः किं कमलंकरः।।

राजा हरिराज जब स्वर्गवासी हो गये तो उनका सारा परिवार अत्यधिक दुखी हो गया। जिस प्रकार भगवान सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल विकसित नहीं होता अपितु मलिन मुख हो जाता है। यहाँ पर भी हरिराज का परिवार तथा कमल का आपस में भिन्नता होने पर भी बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से एवं मालिन्य धर्म से समान्ता प्रतिपादित होने से यहॉ दृष्टान्तालङ्कार है।

सौन्दर्येण जितायस्य रतिस्तामेव भेजुषी[4]
जगदे बन्हिदग्धस्य शरणं वनहिरेण वा।।

---

1 साहित्य दर्पण 10/50
2 हम्मीर महाकाव्य 3/37
3 हम्मीर महाकाव्य 4/20
4 हम्मीर महाकाव्य 4/139

नृपश्रेष्ठ श्री जैत्र सिंह की महारानी हम्मीर देव की माता हीरा देवी का यह वर्णन है। यहाँ पर कवि हीरादेवी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि हीरादेवी के अधिक सौन्दर्य से जीती गई काम की पत्नी रति हीरादेवी की सेवा करने लगी। क्योंकि अग्नि से जले हुए व्यक्ति का अग्नि ही शरण होता है यहाँ पर श्लेष दृष्टान्तालङ्कारों का मिश्रण है।

कविवर नयचन्द्र ने बतलाया कि सर्वनाश उत्पन्न होने पर भी अपस मे विरोध नहीं करना चाहिए। इसके उदाहरण मे उन्होने कहा कि कुल के साथ विरोध करने पर सुयोधन शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस प्रकार आगे के पद्य में दृष्टान्तालङ्कार का समुचित उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

[1]सर्वनाशेड्पि कुले विरोधो द्वोधं सुधीर्नोविदधीत कश्चित।
कुले विरोधोरचितो निनाय सुयोधनं किं निधनं न सेद्यः।।

राजाओं को कर ग्रहण के विषय में विचार करते हुए नयचन्द्र ने कहा है कि बुद्धिमान राजा को चाहिए कि प्रजाओं से उतना ही कर ले जिससे उनको कष्ट न हो जिस प्रकार पुष्प तोड़ने वाला माली लताओ को पीड़ित करके पुष्पों को नहीं चुनता। जैसे कि :-

[2]यथा न पीड़ा भवति प्रजानां ग्राहस्तथा धीधनतत्परोऽपि।
किं नाम पुष्पणि चिनोति पुष्लावी लतानां जनयन विवाधम्।

इस प्रकार प्रजा से कर ग्रहण तथा लताओ से पुष्प ग्रहण मे पीड़ा का अभाव रूप समान धर्म होने के कारण बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से दृष्टान्त नामक अलंकार सहृदयों को आनन्दित करता है।

अल्लावदीन से प्रभावित रतिपाल उसकी तरफ से हम्मीर के प्रति

---

1 हम्मीर महाकाव्य 8/90
2. हम्मीर महाकाव्य 8/87

बोलाः—

कि जातं पद्यगुवीरा मूयांसोऽ्पि परासुताम।[1]
किं द्वित्रिपदमंगेऽपि खर्जुरो याति खंजताम।।

यहाँ पर शकेन्द्र सेना का खजूर के साथ भंग रूप समान धर्म के कारण बिम्ब प्रतिबिम्बभाव से **दृष्टान्तलङ्कार** है। इसी प्रकार निम्न लिखित श्लोक मे भी दृष्टन्त का चमत्कार निश्चित ही सदृश्य द्वारा जानने योग्य है।

किं जातं नीयते कोशो यदि निःकोशतां व्ययैः।[2]
कि शुष्यति समुद्रऽपि वारिभिः वारिदाहृतैः।।

अर्थान्तर न्यास—

अर्थालङ्कारों में यह अलंङ्कार सुप्रसिद्ध है। क्योकि कवि गण प्रायः इसी अलङ्कार के द्वारा सूक्तिों का प्रयोग सरलता से करने मे समर्थ होते है। **हम्मीर महाकाव्य** में भी अर्थान्तन्यास[3] का प्रति सर्ग मे अधिकता से प्रयोग देखा जा सकता है। इस विषय में कवि ने यह पद्य कहा है।

स्वदान जन्मोरूयशो जिति[4] श्री

दैत्यराज बलि श्री चाहमान वंश के अधिक दान शीलता को देखकर लज्जा से पाताल लोक में चला गया। क्योंकि लज्जाशील व्यक्ति सदा नीचे ही रहते है। अन्य गति नहीं होती।

---

1 हम्मीर महाकाव्य 13/85
2 हम्मीर महाकाव्य 13/86
3 सामान्य वा विशेषण विशेषस्तेन वा यदि
कार्य च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।।
साधर्म्येणेत्तरेणार्थान्तर न्यासोष्टधा ततः।
साहित्य दर्पण— 10/61—62

4 हम्मीर महाकाव्य 1/19

उनकी अन्यगति नहीं होती यह तात्पर्य है। इस श्लोक के तीन चरणो मे कहे गये अर्थ का चौथे चरण में समर्थन किया गया है। अतः यहॉं पर अर्थन्तरन्यास है।

बह्ने द्विषन्नम्बिति यत् प्रतापग्निमम्य वर्षन्नरियोषियोऽतैः।[1]
हृविवेदेमिवृथो सकामं वामे विद्यों वाममशेषमेव॥

इस पद्य के तीन चरणों में कह गये अर्थ का समर्थन चतुर्थ चरण मे होता है। इसीलिये यहाँ भी अर्थान्तरन्यास ही शोभायमान है।

वीरेन्द्रष्वथ दत्तदृष्टिषु धारापीठे हिया स्त्राक्सताम्
सान्द्राश्रु सुति सिक्तशोकलतिका कन्देषु वृन्देषु च
आनीयेष नृपं तमगंतरूद दुर्गान्तरेऽचीचयत[2]
कार्या कार्य विचारणन्धवाधिरा हा, हाऽधमाः सर्वतः॥

शोक से व्याकुल आखों में आँसू भरे लोगो पर तथा सज्जनों के ऊपर भी रक्षार्थ सतर्क दृष्टि लगाये रहने पर भी राजाओ के वह अधम कपटीशकराज सहावदीन महाराज पृथ्वीराज के दुर्ग मे प्रविष्ट होगा। अधम जन प्रायः कार्याकार्य विचार शून्य होते हैं। यहाँ पर तीन चरणो मे वर्णित अर्थ का चतुर्थ चरण में समर्थन किया गया है। अतः यहाँ **अर्थान्तर न्यास** अलंङ्कार का चमत्कार स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

हम्मीर महाकाव्य के पाँचवे सर्ग में बसन्त वर्णन के अवसर पर भी अर्थान्तरन्यास का सौन्दर्य दिखलाई पड़ता है।

अधिकाधिक तनुक्लिप विद्यौ प्रमदा मिराद्रियत वह्निशिरवम।[3]
उपकारकार सुचिरोपनतं सहसैव हेयमिह वस्तु कथम् ॥

---

1 हम्मीर महाकाव्य 2/70

2 हम्मीर महाकाव्य 3/71

3. हम्मीर महाकाव्य 5/35

स्त्रियो द्वारा अंगलेपन विधि में कुमकुम का अधिक प्रयोग किया जाता है। इसीकारण प्राचीन काल से उपकार करने वाली वस्तु अचानक शीघ्र ही परित्याग नही किया जा सकता। यही इस पद्य का तात्पर्य है। यहाँ पर कवि ने पूर्वान्ह का उत्तरार्द्ध द्वारा समर्थन करते हुए विशेष चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। अतः अर्थात न्यास का सुललित प्रयोग स्पष्ट प्रतीत होता है।

छठे सर्ग में हम्मीर देव के जल क्रीडा प्रसंग मे कहे गये निम्नलिखित पद्य में भी **अर्थान्तरन्यास** का विलक्षण चमत्कार दृष्टिगोचर होता है।

आजनेरवि वितीर्ण मरन्दान्यम्बुजानि मधुपाः प्रविहाय[1]
मेजिरे मृगदृश्य वदनानि स्यात् कुतो ह्रि मलिनेषु विवेकः।।

भवरो ने मकरन्द से मरे हुए कमलो को छोड़कर मृगनयनी स्त्रियों के मुखो का मुग्ध होकर सेवन किया। क्योंकि मलिन स्वभाववाले प्राणियों में क्या उचित है और क्या अनुचित है ऐसा विवेक नही रहता। इस पद्य मे भी तीन चरणों में वर्णित विषय का चतुर्थ चरण द्वारा सूक्ति के माध्यम से समर्थन किया गया है। अतः यहाँ भी अर्थान्तरन्यास का चमत्कार रोका नही जा सकता ।

योषितां जल विहार वतीनां नूपुराणि रजितानि न चक्रुः।[2]
कः सदाचरणमाग् जलमध्ये स्वं तनोति यदि वामहिमानम्।।

जल क्रीड़ा के अवसर पर जल बिहार में डूबी स्त्रियो के नूपुर शब्द नही कर रहे है। यहाँ पर कवि कल्पना करता है कि जलमध्ये अर्थात जड़ो के बीच स्थित किसी भी सज्जन पुरूष को मौन धारण कर लेना ही श्रेयष्कर है। इस पद्य में भी कवि ने पूर्वाद्ध द्वारा उतर्राद्ध का समर्थन किया गया है। अतः

---

1 हम्मीर महाकाव्य 6/19।

2 हम्मीर महाकाव्य 6/41

यहाँ भी अर्थान्तरन्यास का सौदर्य प्रभावित होता है।

इसी प्रकार से छठे सर्ग के 32, 37, 42[1] पद्यो मे सातवे सर्ग के न्यास का सुन्दर प्रयोग दिखलाई पड़ता है।

सन्देह–

सन्देहलङ्कार का लक्षण आचार्य विश्वनाथ ने इस प्रकार कहा है

सन्देह प्रकृतेऽन्स्य शंसयः प्रतिमोत्थितः[2]

उपमेय में कवि की प्रतिभा से उठा हुआ उपमान का संशय ही जहां पर चमत्कार उत्पन्न करता है वहाँ सन्देहालङ्कार होता है और वह शुद्ध, निश्चयगर्म तथा निश्चयान्त भेद से तीन प्रकार का होता है। **साहित्य दर्पण** में कहा गया है।

शुद्धो निश्चयगर्मोऽसौ निश्चयान्त इति भिद्या।[3]

हम्मीर महाकाव्य में सन्देहालङ्कार का भी मनोरम उदाहरण मिलता है

जैसे किः–

यः संगरे संगर रंगवेदी क्षात्रं क्षणात वेश्म नयनयमस्य[4]
कि भार्गवो यं पुनरेव जात इत्याकुलैवीर्र कुले व्यतर्कि।।

यहाँ पर शकराज सहाबदीन के प्रताप का प्रकष वर्णन करते हुए चन्द्रराज पृथ्वीराज के प्राप्त कहते हैं कि युद्ध में युद्ध कला मर्मज्ञ वे जब क्षत्रीय वीर सैनिको यमलोक भेजते है तब हमारा वीर कुल यह शंका करने लगता है कि–

---

1 हम्मीर महाकाव्य

2 साहित्य दर्पण– 10/35

3 साहित्य दर्पण–10/36

4. हम्मीर महाकाव्य– 3/10

ये पुनः उत्पन्न हुए भार्गव ही है क्या? यहाँ पर सहाबदीन मे भार्गव के सशय वर्णन से चमत्कार वश सन्देहलङ्कार है।

जन्म वर्णन नामक सर्ग मे वीर हम्मीरदेव के सौन्दर्य को देखकर स्त्रियों के मन मे जो विविध कल्पना उत्पन्न हुई और जिन जिन पदार्थो मे उसकी समानता से संशय उत्पन्न हुआ उसी का वर्णन अगले पद्य किया गया है।

विन्ध्ये सिन्धुर वद् धने विधनवत्[1] जाति प्रसूनेऽलिवत
त्यागे याचकवद् गुणे सगुणवन्न्याये महीपालवत्।
माकन्दे पिकवच्छु विदुरवत पाथो रूहे हंसवत
तस्मिन संसृजाति स्म वाग विषयां प्रीति मनो योषिताम्।।

ये हमीर देव स्त्रियों में काम के समान याचकों में काव्य वृक्ष के समान सत्यं प्रतिज्ञा में भीष्म के समान, तत्वज्ञान में ब्रह्म के समान, वीरो मे जयन्त के समान, शत्रु राजाओं में यम के समान जाने गये। यहॉ पर उपमा और सन्देहलङ्कार का मिश्रण है।

इसी प्रकार इस महाकाव्य में[2] द्वितीय सर्ग के 48वें पद्य मे तथा पॉचवे सर्ग के तेरहवें तथा 17वें पद्य में भी सन्देहालङ्कार का चमत्कार सदृश्यो को बलपूर्वक आनन्दित करता है।

भ्रान्तिमान–

विश्वनाथ के मत में इस अलंङ्कार का यह लक्षण है साम्यादतस्मितद बुद्धि भ्रान्तिमान प्रतिमोत्थितः[3]।

---

1 हम्मीर महाकाव्य 4/156

2 हम्मीर महाकाव्य के द्वितीय पंचम तेरहवे सत्रहवे सर्ग मे।

3 साहित्य दर्पण 10/36

दो भिन्न पदार्थों के कारण कवि की प्रतिभा से किसी अन्य वस्तु मे भ्रमवश वह बुद्धि हो जाय तो उस चमत्कार विशेष को **भ्रान्तिमान अलङ्कार** कहते हैं। कवि नयचन्द्र ने इस अलङ्कार का सुललित प्रयोग अपने महाकाव्य मे किया है। जैसे—

दयितस्य वृक्षमधिरुढवतः पदमाशु पल्लव धिया विधृतम्[1]
न चकर्ष नै व च मुमोच पर तदवाप्ति जात पुलक प्रसरा।।

यह पद्य पाँचवें सर्ग के वसन्त वर्णन से लिया गया। यहाँ पर वृक्ष पर चढ़े प्रियतम के कोमल पैर नायिका इस पल्लव की भ्रान्ति से ग्रहण किया जाने का वर्णन कवि ने किया है। अतः यहाँ पर भ्रान्तिमान अलङ्कार है।

प्रविहाय कानन सुमान्य मितो[2]
नियतद् निरम्बुज धिया वदने।
भृशमुन्मदिष्णु मधुकृत निकरैः
रुदवेजि काचन सरोजमुखी।।

इस प्रकार इस पद्य में मधुकरों ने वन के फूलों को छोड़कर फूल की समानता की भ्रान्ति से कमलवत मुख वाली नायिका के मुख मण्डल को चूमे जाने का वर्णन कवि ने किया है। अतः यहाँ भ्रान्तिमान अलङ्कार सुशोभित किया है।

नृपोरः स्थेन्द्रनीलाश्मदाम यत्स्पटिकाश्मसु।[3]
निरीक्ष्य विम्बितं सर्वभ्रान्त्या लोकाश्चकम्पिरे।।

नृपश्रेष्ठ हम्मीरदेव के वक्षस्थल में विराजमान, स्फटिकमणि में पिरोयी गई इन्द्र नील श्यामला को देखकर लोग साँप समझ कर काँप उठे।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—5/57
2 हम्मीर महाकाव्य—5/52
3 हम्मीर महाकाव्य—13/9

यहाँ माला मे साँप की भ्रान्ति को कवि ने अपनी विलक्षण प्रतिभा के द्वारा वर्णन किया है। इस वर्णन में अधिक चमत्कार के कारण भ्रान्तिमान अलङ्कार शीघ्र ही रसिकों के हृदय में अपूर्व आनन्द पैदा करता है। इस प्रकार **हम्मीर महाकाव्य** में कवि ने भ्रान्तिमान अलङ्कार का सुन्दर प्रयोग किया है।

विरोधाभास—वास्तव में विरोधाभाव मे भी कवि ने अपनी प्रतिभा से कही-कही ऐसा वर्णन किया है जिससे दो पदार्थों के विरोध की प्रतीति हो जाती है। इस प्रकार के वर्णन मे भी किसी विलक्षण चमत्कार का अनुभव होता है। विरोध व अलङ्कार के स्वरूप के विषय मे **आचार्य विश्वनाथ** ने इस प्रकार कहा है—

विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ दशाकृतिः[1]

जहाँ वास्तव में विरोध न होने पर भी विरुद्ध रूप से वर्णन करना विरोधाभाव नामक अलङ्कार होता है और वह दस प्रकार का होता है। जैसा कि कहा गया है—

जातिश्चतुर्भिजात्याधैः गुणो गुणादिभिरित्रभिः[2]
क्रिया क्रियाद्रव्याम्यां यद् द्रव्यं द्रव्येण वा मिथः॥

कवीन्द्र नयचन्द्र ने यथावसर इस अलङ्कार का भी सुन्दर प्रयोग किया है। चाहमान वंश में उत्पन्न राजा चन्द्रराज के प्रताप का ओजस्वी वर्णन करते हुए कवि ने विरोधाभास का इस प्रकार प्रयोग किया है—

यस्य प्रताप ज्वलनस्य किंचित्दपूर्वमेवाजनि वस्तुरूपम्।
जज्वाल रात्रौ सरसे प्रकामं यन्नीरसेऽस्मिन प्रशशाम सद्यः॥

---

1 साहित्य दर्पण—10/68
2. साहित्य दर्पण—10/67

इस राजा के प्रताप रूपी अग्नि से कोई अपूर्व ही पदार्थ तत्व उत्पन्न हुआ। क्योकि यह प्रताप रूपी अग्नि सरस धनी शत्रु के ऊपर अच्छी प्रकार जलती थी। नीरसे = निर्धन शत्रु पर तुरन्त शान्त हो जाती थी। अन्य अग्नि सरस अर्थात् गीली वस्तु पर शान्त हो जाती है। और नीरस अर्थात् सूखी वस्तु पर तेज जलने लगती है किन्तु ये राजा वैसा नही है अविरोध मे भी विरोध प्रतीति होने से विरोधालङ्कार है।

इसी प्रकार प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक मे राजा श्री चन्द्रराज के वर्णन मे पुनः **विरोधाभास का चमत्कार** सहृदयों को अपनी तरफ खींच लेता है।

यस्य क्षितीशस्य चयन्मासेरन्योन्यमासीत् सुमहान विरोधः।[1]
एको विरागः सममूत्परेषां दारेषु चान्यो यदमूत रागः।।

इस वर्णनीय राजा का उसके तलवार का आपसी कार्य मे महान विरोध था। क्योंकि राजा चन्द्रराज का शत्रुओं की स्त्रियो मे वैराग था किन्तु उनका तलवार शत्रुओं को फाड़ने में अनुरक्त था। इस प्रकार दोनो का विरोध ही यहाँ श्लेष और विरोध का संकर है।

चाहमान राजाओं में प्रसिद्ध पृथ्वीराज के गुणो के वर्णन के अवसर पर कवि नयचन्द्र ने सुन्दर विरोधाभास के प्रयोग का वर्णन किया है। जैसे कि—

गुणामिधातं प्रसमं प्रकुर्वन्नप्येष चक्रे न गुणाभिधातम्।[2]
अपि प्रतन्वन् परलोक वाधां न च प्रतेने परलोकवाधम्।।

राजा पृथ्वीराज गुणों को पीड़ित करते हुए भी गुणो को पीड़ित नही

1 हम्मीर महाकाव्य—1/40

2 हम्मीर महाकाव्य—2/79

किया। यहॉ विरोध है। गुण कौर्वी (धनुष की डोर) का टङ्कार करते हुए भी उदारता आदि गुणोका पीड़न नहीं करते थे यह परिहार है। इसी प्रकार श्लोक के उत्तरार्द्ध मे भी परलोक बाधा = शत्रुओं को बाधा पहुँचाते हुए भी विरोध के परिहार में स्वर्ग लोक में जाने मे कोई बाधा नही हुई। इस प्रकार अविरोध होने पर भी विरोध की प्रतीति से उसका परिहार द्वारा चमत्कार के कारण विरोधाभास अलङ्कार।

इसी प्रकार से अगले श्लोक में भी विरोधाभास की अपूर्व शोभा देखने योग्य है :

'निवेषकाजोऽप्यसितां सवृत्तिं नैवासितां वृत्तिमुपादितैषः।
तेनेति तेने परलोक पीड़ा न तेने तेने परलोक पीड़ा।।

राजा पृथ्वीराज खड्ग रूप वृत्ति को धारण करते हुए भी पापाचार रूपी वृत्ति को नही ग्रहण किया। परलोक पीड़ा तेने = शत्रुओं को पीड़ित किया। परिहार पक्षे = दूसरे संसार में जाने की बाधा नही प्राप्त किया। इस प्रकार यहॉ भी स्पष्ट रूप से विरोधाभास परिलक्षित होता है।

इसके अतिरिक्त भी **हम्मीर महाकाव्य** मे विरोधाभास का प्रयोग दिखाई पड़ता है। इस प्रयोग में भी कवि निश्चय ही अति प्रशंसनीय हैं। इसके अभाव में कवि ने यथावसर सहोक्ति, विनोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा, समासोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, विषम्, काव्य लिङ्ग, विभावना, विशेषोक्ति उल्लेख, आक्षेप आदि अलङ्कारों का भी प्रयोग अपनी प्रतिभा और पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। अलङ्कार मिश्रण स्थलों में संसृष्टि संकर आदि भी दिखलाई पड़ते हैं। इसलिए अलंकारों के समुचित प्रयोग मे भी कविवर ने निश्चय ही सफलता प्राप्त किया है। इसमे जरा भी सन्देह नहीं है।

छन्द

वेदो मे भी छन्दो की गणना सम्मान पूर्वक की जाती है। "छन्दः पादौ[1] तु वेदस्य" इस कथन के अनुष्ट छन्द वेद के चरण है। जिस प्रकार चरण हीन कोई भी प्राणी इधर-उधर आने जाने में समर्थ नही होता, उसी प्रकार छन्द के बिना वेद अथवा कोई भी काव्य ग्रन्थ गतिमान नही हो सकता। वेदो के छः अगो मे छन्द की भी गणना होने से इसकी प्राचीनता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है। वेदों में सब जगह त्रिष्टुप, जगती, विराट स्थान आदि छन्दो का प्रयोग दिखलाई पड़ता है। यजुर्वेद के गद्य स्थलो को छोड़कर वेदो के सहिता भागो मे अधिकांश छन्द स्वयं ही प्राप्त होते है। जिस प्रकार **व्याकरण शास्त्र** के सूत्र **पाणिनि** ने, **प्रातिशाख्यसूत्र शौनक** आदि ने, **कल्प सूत्र आपस्तम्ब, पारस्कर, बोधायन** आदि ने लिखे है। जिस प्रकार **कामशास्त्र** के सूत्र **वात्स्यायन** ने लिखे हैं उसी तरह महर्षि **पिंगल** ने **छन्द शास्त्र** के सूत्र बनाये हैं। इसी कारण से **छन्द शास्त्र** को लक्षण से **पिंगल शास्त्र** भी कहा जाता है।

आचार्य भरत मुनि निश्चय ही भारतीय काव्यशास्त्र मे प्राचीन अलंकारिक हैं। ऐसा इतिहासज्ञों का विचार है। उन्होंने 36 अध्यायों से युक्त **नाट्यशास्त्र** लिखकर संस्कृत साहित्य का महान उपकार किया है। नाट्यशास्त्र के अट्ठारहवें अध्याय में छन्दों के[2] अध्याय विषय मे ग्रन्थकार ने महत्वपूर्ण

---

1 छन्दः पादौ तु देवस्य हस्तौ कल्पौ व पठ्यत।
ज्योतिषामणन चक्षुर्निरुक्तं श्रौत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राण तु वेदस्य मुखं व्याकरण स्मृतम्।
तस्मात् सागमधीत्यैव ब्रह्मलोकं महीयते।।

पाणिनीय शिक्षा—41-42

2 नाट्यशास्त्र—14 अध्याय

विवरण उपस्थित किया है। उनके मतानुसार काव्य वन्धः Composition दो प्रकार का होता है।

1. नियताक्षरवन्धः, 2. अनियताक्षरबन्ध।

अनियताक्षर बन्ध को गद्य ऐसा कहते हैं।

नियताक्षरबन्ध–

इस प्रकार की रचना पद्य कहलाती है। निश्चित अक्षर है जिस बन्ध मे उस बन्ध को नियताक्षर बन्ध कहते हैं। इस विषय मे **भरत मुनि** ने **नाट्यशास्त्र**[1] मे इस प्रकार से कहा है—

निवद्धाक्षर संयुक्तं यतिच्छेदसमन्वितम्।
निबद्धं तु पदं ज्ञेयं प्रमाण नियतात्मकम्।।

जबकि अक्षर सुनिश्चित एक क्रम मेंहोते हैं उनकी संख्या सुव्यवस्थित होती है तब रचना में भली प्रकार से लय तथा संगीतात्मकता प्रवाहित होती है। छन्द के महत्व को प्रतिपादित करते हुए भरत मुनि ने कहा है—

छन्दोहीनो[2] न शब्दोऽस्ति न छन्द शब्द वर्जितम्।
तस्मातृन् मयसंयोगो नाट्यस्योद्योतकः स्मृतः।।

नियताक्षर बन्ध पद्यों की रचना के लिए छन्द शास्त्र का ज्ञान अत्यावश्यक है। छन्द ज्ञान के बिना वेद का अध्ययन, यज्ञ प्रक्रिया का सम्पादन अथवा वेदो का पढ़ाना निन्दनीय होता है। उक्तञ्च यो हवा अविदितार्षेच्छन्दो दैवत विनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्याययति वा स स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पद्यते प्रमीयते वा पादीयान भवति या तया मान्यस्य च्छन्दानि भवन्ति इति

---

1. नाट्यशास्त्र—14/43
2 नाट्यशास्त्र—14/47

जिस प्रकार से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में विष्णु से व्याप्त है। उसी तरह साहित्य भी लघु गुरु वर्णो से मगण्-यगण्-तगण्, रगण्-जगण्-मगण्-नगण-सगण् से अच्छी तरह व्याप्त होता है।[1]

छन्दशास्त्र में त्रिवर्ण समूह रूप आठ गण होते हैं। जैसा कि कहा गया है वृत्तरत्नाकर में—

सर्व गुर्मो मुखान्तर्लौ यरावन्तगलौ सतौ।
ग्मध्यादो ज्यौ त्रिलौ नोष्टौ भवन्त्यत्र गणास्त्रिकाः।।[2]

लौकिक छन्द मात्रा और वर्ण भेद से दो तरह का होता है। वे दोनो भी पुनः तीन प्रकार के है—समम्-अर्द्ध समम्-विषम। काव्य मे प्रति पद्य चार चरण होते हैं। जहाँ पर चारों चरण समान होते हैं वह वृत्त सम कहलाता है जहॉ पर प्रथम और तृतीय, द्वितीय और चतुर्थ चरण सम हो वह अर्हर सम और जहाँ पर चारों चरण आपस में असमान होते हैं वह वृत्त विषम कहलाता है।

संस्कृत साहित्य में प्रायःकवियो ने सम वृत्तों का ही प्रयोग अपनी रचना मे किया है। **हम्मीर महाकाव्य** में भी कविराज **नयचन्द्र** ने छन्द नियमों का पूर्णतया पालन किया है। छन्द के कारण अर्थ की पूर्णता तथा संगीतात्मकता की सिद्धि होती है। काव्य की अभिव्यक्ति में संगीतात्मकता प्राण तुल्य होती है। गद्य की अपेक्षा पद्य काव्यों में प्रभावोत्पादकता अधिक होती है। महाकाव्यो मे विविध छन्दों के प्रयोग से रागात्मक प्रवृत्तियाँ उद्वेलितहोती हैं। छन्दो की स्थिति सौन्दर्य बोध में भी सहायता प्रदान करती है। इसीलिए महाकाव्यो मे

---

1 म्यरस्तजम्नगैर्लान्तैरेमिर्दशमिरक्षरैः।
समस्त वाङ्मय व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना।।

वृत्तरत्नाकर—1/6

2 वृत्तरत्नाकर—1/7

विविध छन्दो का प्रयोग परमावश्यक होता है।

हम्मीर महाकाव्य में अनेक प्रकार के छन्दो का प्रयोग कवि ने सुन्दरता के साथ किया है। महाकाव्य के लक्षणानुसार[1] प्रति सर्ग में एक प्रमुख छन्द का तथा सर्ग के अन्त में उससे भिन्न छन्द का प्रयोग होता है। इस पर हमें विचारना है कि किस सर्ग में किन-किन छन्दों का प्रयोग कवि ने किया है।

प्रथम सर्ग

हम्मीर महाकाव्य के प्रथम सर्ग में प्रधान छन्द उपजाति है।[2] प्रथम सर्ग के ८5, 86 पद्यों में है। शार्दूल विक्रीडित छन्द का प्रयोग 84, 90, 92, 93, 96 से 104 पद्यों में दिखलाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त 87, 89 पद्यो मे स्वागतवृत्त छन्द 88, 94 पद्यों में वसन्त तिलका स्रग्धरा का 91 शिखरणी छन्द का प्रयोग किया गया है।

द्वितीय सर्ग

इस सर्ग मे मुख्यतः 1 से 80 पद्यो मे उपजाति छन्द का प्रयोग दिखलाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त वसन्ततिलका का 81, स्रग्धरा का 89, शार्दूलविक्रीत का 82 से 88 तथा 90 श्लोकों मे प्रयोग प्राप्त होता है।

तृतीय सर्ग

यहाँ भी प्रधान छन्द उपजाति है। इसके अतिरिक्त[3] मालिनी छन्द 65, 78, त्रोटक 66 तथा मन्दाक्रान्त छन्द का प्रयोग 68, शार्दूल विक्रीडित का

---

1 साहित्य दर्पण—6/320-321

2 अनन्त रोदीरितलक्ष्मभाजौपादौ यदीयावुपजातयस्ताः।

छन्दोमंजरी

3 ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः। छन्दोमजरी

71, 72 79 से 82 तक वसन्ततिलका का 73, 75 से 77 पद्यो मे, प्रमिताक्षरा का 74, इन्द्र वशा का 67 पद्य मे प्रयोग मिलता है।

चतुर्थ सर्ग

यहाँ मुख्यतः अनुष्टुप छन्द सुशोभित होता है। इसके अतिरिक्त उपजाति, शार्दुल विक्रीडित का प्रयोग दिखलाई पड़ता है।

पंचम सर्ग

यहॉ पर प्रमिताक्षरा[1] का अधिकता से प्रयोग किया गया है। सर्ग के अन्त मे मालिनि का प्रयोग प्राप्त होता है। मध्य मे शार्दुल विक्रीडित, का उपजाति और द्रुत विलम्बित छन्द का प्रयोग किया गया है। सर्ग के अन्त मे मालिनी छन्द का प्रयोग हुआ है।

षष्ठ सर्ग

इस सर्ग में स्वागता[2] वसन्ततलिका[3], शार्दूल विक्रीडित, मालिनी, स्रधरा। प्रमिताक्षरा, उपजाति, छन्द का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। सर्ग के अन्त में उपजाति छन्द है।

सप्तम सर्ग

इस सर्ग मे मुख्यतः द्रुत विलम्बित[4] का प्रयोग प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त शर्दूल विक्रीडित, भुजंग प्रयात, वसन्ततिलका, शिखरिणी, और

1 प्रमिताक्षरा सजससैः कथिता। छन्दोमंजरी

2 स्वागतेति सभाद्गुरुयुग्मम्। वृत्तरत्नाकर

3 उक्तमा वसन्ततिलका तभजा जगौ गः वृत्तरत्नाकर

4 द्रुतबिम्बिमाहनभौ भरौ। छन्दोमंजरी

मजुभाषिणी छन्द का प्रयोग मिलता है। सर्ग के अन्त मे स्त्रग्धरा छन्द है।

अष्टम सर्ग

यहाँ प्रधान रूप से उपजाति छन्द है। इसके अतिरिक्त वसन्ततिलका, शिखरिणी[1] शार्दूल विक्रीडित छन्दो का प्रयोग किया गया है। कवि ने सर्ग के अन्त मे वसन्त तिलका का प्रयोग किया है।

नव सर्ग

यहाँ मुख्यतः अनुष्टुप छन्द मिलता है। इसके अतिरिक्त वसन्त तिलका, शार्दूल विक्रीडित, छन्द का प्रयोग दिखलाई पड़ता है। सर्ग के अन्त में कवि ने वसन्त तिलका का प्रयोग किया है।

दशम सर्ग

प्रमुख[2] रूप से यहाँ वियोगिनी छन्द का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त मजुभाषिणी[3], शलिनी[4], उपेन्द्र वज्रा, स्वगता, स्त्रग्धरा छन्दों का भी प्रयोग किया गया है।

एकादश सर्ग

यहाँ मुख्य छन्द उपजाति है। इसके अतिरिक्त द्रुत विलम्बित, मन्दाक्रान्ता[5], स्त्रग्धरा छन्द भी प्रयुक्त है।

---

1 रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी। छन्दोमजरी

2 विषये यदि सौ जगः समेसभरास्यात्तु तदावियोगिनी। वृत्त रत्नाकर

3 मालौ गौ चेच्छालिनी वेदलौकैः। छंदोमजरी

4 म्रम्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्त्राग्धराकीर्तितेयम्। छन्दोमंजरी

5 मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ न तो तद् गुरु चेत्। वृत्त रत्नाकर

द्वादश सर्ग

इस सर्गका प्रधान छन्द वियोगिनी है। इसके अतिरिक्त द्रुत विलम्बित, अनुष्टुप, वसन्त तिलका, शार्दूल विक्रीडित छन्दो का प्रयोग हुआ है।

त्रयोदश सर्ग

यहाँ मुख्यतः अनुष्टुप छन्द का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त स्त्रग्धरा, शार्दूल विक्रीत छन्दों का प्रयोग मिलता है।

चतुर्दश सर्ग

इस सर्ग में शार्दूल विक्रीडित[1] छन्द की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त स्त्रग्धरा, आर्या, मालिनी, पृथिवी[2], उपजाति, वसन्त तिलका, अनुष्टुप छन्द प्रयुक्त है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचना से प्रतीत होता है कि कवि नयचन्द्र ने इस महाकाव्य मे उपजाति, शार्दूल विक्रीडित, स्त्रग्धरा तथा वसन्त तिलका आदि छन्दो का अधिकता से प्रयोग किया गया है। इसकी अपेक्षा वियोगिनी, द्रुत विलम्बित, मालिनी, शिखरणी, अनुष्टुप छन्दो का प्रयोग कम ही किया गया है। आर्या, त्रोटक[3], पृथ्वी, इन्द्रवंशा, भुजंगप्रयात्, शालिनी, प्रमिताक्षरा, मजुभाषिणी[1] छन्दो का प्रयोग कहीं-कहीं दिखलाई पड़ता है।

निश्चय ही छन्द कवि के अनुभूति को प्रकाशित करने मे तथा भावनाओं को निर्यमित करने में उत्तम साधन होता है। छन्द की सीमा मे बंधा हुआ

---

1 सूर्याश्वैर्मसजस्तता. सगुरवः शार्दूल विक्रीडितम्। छन्दोमंजरी

2 जसौ जसयालावसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरु·। छन्दोमंजरी

3 वद तोतकमब्धिसकारयुतम्। छन्दोमजरी

4 भुजगप्रयात भवेद यैश्चतुर्भिः। वृत्तरत्नाकर

कवि अपने मनोभावों को मनोरम रीति से प्रकाशित करके सहृदयो को तुरन्त अपनी तरफ आकर्षित कर लेता है। छन्दोबद्ध रचना हृदय हारी प्रसन्नता उत्पन्न करती है जो सहृदयों के मन को छू लेती है। वाह्य चित्रण के विशद वर्णन के लिए तथा भावों की प्रवीणता मे कवि ने प्रायः उप जाति तथा वसन्त तिलका का प्रयोग किया है। युद्ध प्रसंगो में भयानक वीभत्स आदि ओज प्रधान रसो के वर्णन में उसके अनुकूल ही स्रग्धरा, शार्दूल विक्रीडित जैसे दीर्घकाय छन्दो का प्रयोग कवि ने किया है। कथावस्तु के संक्षिप्त वर्णन मे प्रायः अनुष्टुप छन्द का प्रयोग दिखलाई पड़ता है।

ऋतुओं के वर्णन में प्रायः सरसता की अधिकता श्रृगार का बाहुल्य दिखलाई पडता है। जल क्रीड़ा आदि के वर्णन मे भी इसी का साम्राज्य होता है। अत ऐसे वर्णनों में उपेन्द्र वज्रा, उपजाति छन्द का चयन महाकवि ने किया है। शार्दूल विक्रीडित छन्द का प्रयोग प्रायः सर्ग के अन्त मे दिखलाई पडता है। त्रोटक छन्द इन्द्र वज्रा[1], पृथ्वी तथा मंजभाषिणी छन्दो का प्रयोग एक या दो स्थानो पर प्राप्त होता है। प्रमिताक्षरा का भी प्रयोग बडी कठिनाई से प्राप्त होता है। भाव वर्णन विषय के अनुकूल सोच-विचार करके मन्दाक्रान्ता तथा शिखरणी छन्द का प्रयोग **हम्मीर महाकाव्य** मे किया गया है।

कविवर **क्षेमेन्द्र** ने कहा कि काव्य में रस वर्ण तथा गुणो के अनुसार सभी छन्दो का विनियोग करना चाहिए—

काव्ये रसानुसारेण वर्णानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्तानां विनियोगं विभागवित्।।

यह सब मन में सोचकर कविवर नयचन्द्र ने इस महाकाव्य मे सब जगह छन्दो के औचित्य का पूर्णतया निर्वाह किया। वास्तव मे वह ही कवि

1 तच्चेन्द्रवशा प्रथमाक्षरे गुरौ। छन्दोमंजरी

सुकवि तथा महाकवि होता है जो अच्छी तरहसे छन्दो के यति एवं गति का विचार करके काव्य की प्रतिमा से काव्य निर्माण का विचार करता है। इस महाकाव्य के रचयिता भाषा में ही नही अपितु छन्दों के प्रयोग में भी अत्यधिक निपुण कलाकार है। इस प्रकार छन्द विधान दृष्टि से भी **हम्मीर महाकाव्य** की श्रेष्ठता निःसन्देह उच्च कोटि की है।

हम्मीर महाकाव्य में प्रयोग की गई सूक्तियाँ

संस्कृत भाषा का साहित्य जिस प्रकार अन्य भाषाओं के साहित्य की अपेक्षा अत्यधिक समृद्ध तथा सन्तुलित है उसी प्रकार जीवनोपयोगी विविध सूक्तियो के प्रयोग में भी असाधारण विशेषता को धारण करता है। संस्कृत साहित्य मे **भास, कालिदास, माघ, भारवि** तथा **श्री हर्ष** आदि सभी सुकवियो ने सूक्ति रत्नों से अपने-अपने काव्य सागर को मर रखा है। इसीलिए उन महाकवियों के महाकाव्य सूक्ति रत्नो के कारण संसार मे आदर पूर्वक याद किये जाते हैं। ऐतिहासिक महाकाव्यों मे जैसे **नवसाहसाङ्कचरित्र** में और जैसे विल्हण के **विक्रमाङ्कदेवचरित** मे लोकोपयोगी सूक्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं उसी प्रकार **हम्मीर महाकाव्य** मे भी गम्भीर अर्थ को प्रकाशित करने में समर्थ तथा लोक शिक्षण मे उपयोगी सूक्तियाँ पाई जाती हैं।

सुन्दर किसी उद्यान में यदि सुगन्ध से परिपूर्णसुमन विकसित होते तो उसके सौन्दर्याभिक्य से मन प्रफुल्लित होता है तथा उसकी लोकोपयोगिता भी बढ जाती है। जिस प्रकार स्वर्ण से बने हुए मुकुट में शुद्ध हीरे अथवा मोती के योग से उसकी सुन्दरता और उसकी महानता अवर्णनीय वृद्धि को प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार रस आदि से सुशोभित साहित्य मे लोकोपयोगी सूक्तियो का समुचित प्रयोग किसी अवर्णनीय सुन्दरता को उत्पन्न कर देता है।

वास्तव में सूक्तियाँ रससिद्ध कवियों के चिन्तन एवं प्रतिभा के परिणाम होती है। इसीलिए उन सूक्तियों के प्रभाव से दुर्जन भी सज्जन, कठोर हृदय भी सहृदय साधारण जन भी असाधारण हो जाते हैं। पहले किसी राजा के आपत्ति के निवारण में समर्थ महाकवि की सूक्तियो को संसार में कौन नहीं

जानता।

सहसाविदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्
वृष्णुते हि विमृश्य कारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।

सूक्तियाँ ऐसी निर्मल मणि के दीपक की शिखा के समान होती हैं जो लोगो के हृदय में स्थित संशय कालिमा का विनाश करके विलक्षण ज्ञान युक्त प्रकाश का विस्तार करती हैं। ये सूक्तियाँ संसार के लोगो को कुमार्ग से हटा कर सन्मार्ग में ले चलती हैं तथा कर्तव्याकर्तव्य का बोध कराती है। इसीलिए न केवल साक्षर व्यक्ति ही अपितु निरक्षर लोग भी सज्जन पुरुषो की बहुमूल्य सूक्तियों का सहारा लेकर अपने जीवन को सफल बना लेते हैं। सूक्तियॉ निश्चय ही सज्जनों एवं महापुरुषों की साधना का सर्वस्व होती है। सुकवि के नवीन कल्पना का निचोड़ है। लोकनायक के सुन्दर नीति का मक्खन सदृश होती है। इसीलिए सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक इन सूक्तियों को सुनते है, पढ़ते हैं तथा ग्रहण करते हैं।

कोई व्यक्ति जिस बात को अनेक घंटो के प्रयास के बाद भी किसी व्यक्ति को समझाने में समर्थ नही होता उसी बात को सहृदय सुकवि सूक्ति द्वारा थोड़े समय मे तुरन्त समझा देता है। सूक्तियों में वास्तविकता, व्यावहारिकता का, दूरदर्शिता का तथा समुचित निर्देशों का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। इसीलिए सूक्तियों का मानव हृदय पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है। सूक्तियों के द्वारा ही वादी पुण्यात्मा हो जाता है, देशद्रोही देशभक्त हो जाता है, कृपण दानवीर तथा कायर बहादुर बन जाता है।

इस महाकाव्य में **कविवर नयचन्द्र** ने वर्णनीय विषयो के अनुसार रसो, गुणो एवं अलङ्कारों के प्रयोग मे जिस प्रकार विद्वत्ता को प्रदर्शित किया है उसी प्रकार उन्होंने सूक्ति रूपी रत्नों के समायोजन में विलक्षण कुशलता

का प्रदर्शन किया है। यहाँ उनके कुछ प्रमुख सूक्तियों के विषय में विचार किया जाता है—

शत्रुर्न मित्रतां गच्छच्छतशः सेवितोऽपि सन्।[1]

यह सूक्ति हम्मीर महाकाव्य के चौथे सर्ग मे वाग्भट्ट के मुख से वक्ष स्थल पुर नरेश विग्रहराज के प्रति कही गयी है। वाग्भट्ट शकराज के प्रति गमनोत्सुक विग्रहराज को उपदेश देता है कि हे राजन् विग्रह! अनेक प्रकार से सेवा किया गया भी शत्रु अपनी शत्रुता नही छोड़ता। आपके द्वारा पुनः-पुनः सेवा किया गया भी शकेन्द्र अन्त में तुम्हारा अनिष्ट ही करेगा मित्रता पूर्ण कार्य वह कभी नहीं करेगा। तेल से पूर्ण तथा भीगा हुआ भी दीपक कभी ठंडा नहीं होता। अतः तुम्हें भी यह सब विचार कर उस क्रूर स्वभाव वाले, छली, परम शत्रु शकराज के पास नही जाना चाहिए। संसार में प्रतिदिन हम लोग देखते हैं कि यदि किसी के साथ पुरानी शत्रुता पक्की हो जाय तो बहुत कोशिश के बाद भी स्वाभाविक मित्रता की भावना उदित नहीं होती। जीवन पर्यन्त उसके साथ शत्रुता ही बनी रहती है। यदि कोई भी व्यक्ति शत्रु पर विश्वास कर लेता है तो वह शत्रु द्वारा ठगा जाता है और कष्ट का अनुभव करता है। अतः कभी भी ऐसी भावना मन मे नही लानी चाहिए कि शत्रु पुनः सेवा से प्रसन्न होकर मित्र के समान व्यवहार करने लगेगा। यहसूक्ति सभी लोगों को सरल भाषा के द्वारा अत्यधिक महत्वपूर्ण जीवनोपयोगी रहस्य का उपदेश देती है।

उपायस्तध्ये[2] खलु कार्य वन्धे न विक्रमनीति विदो वदन्ति।

यह सूक्ति प्रस्तुत महाकाव्य के ग्यारहवे सर्ग से ली गई है। यहाँ पर

---

1 हम्मीर महाकाव्य—4/95

2. हम्मीर महाकाव्य—11/2

कपट प्रिय उल्लूखान अपने भाई निसुरत खान के प्रति हम्मीर के ऊपर आक्रमण की अनिच्छा से इस प्रकार कहता है। वह सोचता है कि रण स्तम्भपुर का राजा हम्मीर बलवान है। अतः वह बल से नहीं जीता जा सकता है। अतः वहकपट के द्वारा अपने वश में लाया जा सकता है। वास्तव मे नीति जानने वाले राजाओं को पराक्रम का प्रदर्शन तब करना चाहिए जब शत्रु को पराजित करने का कोई उपाय शेष न रह जाय। यदि कार्य कपट आदि उपायों से सिद्ध हो जाय तो पहले युद्ध नही करना चाहिए अपितु जिस किसी उपाय से शत्रु को अपने पक्ष में कर लेना चाहिए।

नीति जानने वालों के लिए यह उक्ति अत्यधिक उपकारिणी है। राजा लोग प्रायः इसी सूक्ति का अनुसरण करके जीवन मे बड़ी सफलताएं प्राप्त करते हैं।

इसी प्रकार से निम्नांकित सूक्तियों को याद करना चाहिए, पढ़नी चाहिए तथा अनुकरण करने योग्य है।

वीर मन्या[1] सहन्ते रिपु जन जनितं क्वापि कि वा निकारम्।

आयोधनाद[2] परमत्र दोषमतां नो वांछितं ततः।

स्व कुलाचार विध्वंसो धिङ् नृणां जीवितं ततः।[3]

प्रायानपि मुमुक्षामो वयमात्माक्षितेः कृते।[4]

क्षत्रियाणामयं धर्मो न युगान्तेऽदि नश्वरः।।

स एव क्षत्रियः प्रायन्तेपि यो हुंकृतौ क्षमः।[5]

1 हम्मीर महाकाव्य—11/103

2 हम्मीर महाकाव्य—12/6

3 हम्मीर महाकाव्य—13/124

4 हम्मीर महाकाव्य—13/149

5 हम्मीर महाकाव्य—13/150

सर्वः कोऽपि परस्य पश्यति जनो दोषं न च स्वस्य तम्।[1]

क्वाऽप्यकृत्यं प्रकुर्वन्तः पाया मुह्यन्ति हन्त किम्।[2]

मूले छिन्ने हि सुग्राहं कलाद्युच्चैसतरोरपि।[3]

वलवता हि वलं न सहोचितम्।[4]

निवासिता येन स एव वेत्ति प्रायः प्रजाना सुख दुःख भावम्।[5]

वन्ध्या विजानाति किमंग गर्म प्रपोषणं वा वहन क्लमं वा।।

वेश्यानां च नृपाणां च द्रव्य दो हि सदा प्रियः।[6]

मूलाद्विनष्टे कार्ये हि किं कुर्याद् बलवानपि।[7]

कुर्वन्नपि हितं मूर्खो हितायैव प्रगल्मते।[8]

नृपहृदि कोप हुतार्शे घृताहुतिर्मोजमणि तिर्मूत।[9]

ततोऽतिमोहाद् भुजयैकमैव

मुग्धस्तितीर्षामि महासमुद्रम्।[10]

सुतापराधे जनकस्य दण्डः।[11]

1 हम्मीर महाकाव्य—1/103
2 हम्मीर महाकाव्य—4/104
3 हम्मीर महाकाव्य—4/105
4 हम्मीर महाकाव्य—7/42
5 हममीर महाकाव्य—8/88
6 हम्मीर महाकाव्य—9/169
7 हम्मीर महाकाव्य—9/177
8 हम्मीर महाकाव्य—13/138
9 हम्मीर महाकाव्य—10/78
10. हम्मीर महाकाव्य—1/11
11 हम्मीर महाकाव्य—1/24

त्यजेदेकं कुस्यार्थे नीतिरित्याह वाक्पतिः।[1]

मातुमावर्धित क्ष्मां मां ददतस्तव का क्षत्रिः।।

वलिः स पाताल विलं सिषेवे भयातुराणांमपरा गतिः का?[2]

कः क्रमः स्फुरति हन्त जडानाम्।[3]

न स्वतो दि गुणवान सुखहेयः किं पुनर्यदि स जीवनलीलः।[4]

कः सदाचरणभाग् जलमध्ये स्वं तनोति यदि वा महिमानम्।[5]

क्वश्रियां सुमनसो न पदं स्युः।[6]

स्वभावरम्यस्य जनस्य यदा विभूषणं मंगलमात्रदायि।[7]

उचितमेव नवं नवमिच्छतां परिचिते रिपुता हिमहीयसी।[8]

तव तदास्तु पुनः स कृतः करे परिचिताः परुषाहिन कस्यचित्।[9]

परुषता रचिता हि हृदीश्वरे फलति केवलमात्मनि मूढ़ताम्।[10]

स्वयमापसरदेव तदुंशुकं किमुचिताचरणे गुणिनो वुधाः।[11]

---

1 हम्मीर महाकाव्य13/113
2 हम्मीर महाकाव्य—1/19
3 हम्मीर महाकाव्य—6/17
4 हम्मीर महाकाव्य—6/37
5 हम्मीर महाकाव्य—6/41
6 हम्मीर महाकाव्य—6/42
7 हम्मीर महाकाव्य—6/42
8 हम्मीर महाकाव्य—7/27
9 हम्मीर महाकाव्य—7/54
10 हम्मीर महाकाव्य—7/55
11 हम्मीर महाकाव्य—7/80

विषसहते समुदीरित मन्मथो नखलु कंचन काल विलम्बनम्।[1]

उपकार कारि सुचिरोपतनं सहसै व हेयमिह वस्तुकथम्।[2]

कार्याकार्य विचारणान्धवधिरां ह हा धमाःसर्वतः।।[3]

वामे विथौ वाममशेषमेव।[4]

---

1 हम्मीर महाकाव्य7/81

2 हम्मीर महाकाव्य—3/81

3 हम्मीर महाकाव्य—3/71

4 हम्मीर महाकाव्य—2/70

सप्तम अध्याय

पात्रों का चरित्र-चित्रण व तात्कालिक सामाजिक चित्रण

पात्रों का चरित्र-चित्रण

काव्य की आत्मा तो रस है। रस का अच्छी प्रकार से प्रकाशन ही उत्तम काव्य का परम उद्देश्य होता है। कवि वर्णन योग्य इतिहास का आश्रय लेकर उससे सम्बन्धित पात्रों का कलात्मक ढंग से परिचय कराता है। पात्रो के वचनो द्वारा तथा कार्यो द्वारा वह अपने अभिप्राय को प्रकाशित करता है। महाकाव्य की सारी घटनायें आदर्श तथा कल्पनाये उन पात्रो के साथ सम्बद्ध होती है। महाकाव्य के पात्रों का आश्रय लेकर सारा इतिवृत्त आगे बढ़ता है तथा विविध मनोवृत्तियाँ विकसित होती हैं।

विशिष्ट पात्रों के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बहुत से कवि काव्य रचना में प्रवृतत हुए यह परम्परा प्राचीन काल से ही दिखलाई पड़ती है। सामन्त युग मे वीर पुरुषों के चरित्र का गान करना ही कवियों का मुख्य उद्देश्य होता था। इसका तात्पर्य यह है कि बहुत समय से कवियो ने मानवो को लक्ष्य कर मानवो के लिए साहित्य का निर्माण किया। अतः साहित्य का मूलाधार मानव ही है।

प्रस्तुत **हम्मीर महाकाव्य** एक वीर चरित प्रधान महाकाव्य है। इस महाकाव्य मे भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले पात्रो का चरित्र-चित्रण के माध्यम से कवि ने मानव मन के अनेक प्रकार के हृदयाकर्षक चित्र को चित्रित किया है। सस्कृत महाकाव्यों में पात्रों का चरित्र अपनी विशेषता रखता है। **भरत मुनि** इत्यादि प्राचीन आचार्यो ने अपने ग्रन्थों में नायक प्रतिनायको का स्वरूप निर्धारित किया है। संस्कृत भाषा के कविगण उसी के अनुसार पात्रों का चरित्र-चित्रण करते हुए दिखलाई पड़ते हैं। कविवर नयचन्द्र ने भी उसी के अनुसार पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है।

हम्मीरदेव

हम्मीरदेव महाकाव्य के नायक रणस्तम्भपुर के शासक हैं। प्रजापालक, वीराग्रणी तथाचाहमान वंश के प्रदीप स्वयं हम्मीरदेव हैं। इसीलिए उनके नाम से ही **नयचन्द्र** ने इस महाकाव्य का नाम **हम्मीर महाकाव्य** रखा। हम्मीर देव के चरित्र का विस्तार से विवेचना है। इस महाकाव्य का प्रमुख उद्देश्य है। नायक हम्मीर कोई काल्पनिक मनुष्य अथवा देव नही है अपितु जनप्रिय, मातृभक्त, स्वाभिमानी ऐतिहासिक महामानव एवं निपुण शासक है। मनुष्यो में अनेक प्रकार की त्रुटियो की सम्भावना स्वाभाविक है अतएव कवि गण उनके चरित्र-चित्रण में कठिनता का अनुभव करते है। महाकवि **नयचन्द्र** ने हम्मीर के चरित्र चित्रण में विलक्षण चतुरता दिखलाई है। नायक के प्रमुख चार भेद[1] होते हैं उनमें **हम्मीर देव** धीरोदात्त नायक है। धीरोदात्त नायक का लक्षण **साहित्य दर्पण** में इस प्रकार कहा गया है—

अविकत्थनः क्षमावानति गम्भीरो महासत्वः।[2]
स्थेयान्निगूढ़मानो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः कथितः।।

दशरूपककार **धनंजय** ने धीरोदात्त नायक का लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहा है—

नेता[3] विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तो लोके शुचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरोयुवा।।
बुद्धयुत्साह स्मृति प्रज्ञा कलामान समन्वितः।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्र चक्षुश्च धार्मिकः।।

---

1 साहित्य दर्पण—3/31

2 साहित्य दर्पण—3/30

3 दशरूपक—2/1-2

राजा हम्मीर देव के चरित्र में ये सभी गुण दिखलाई पड़ते हैं।

विनीत

अद्‌भुत वीर होते हुए भी हम्मीर स्वभाव से विनम्र है। अपने छोटे भाई वीरमदेव द्वारा रतिपाल की दुष्टता को जान कर भी वह अपयश के भय से मृत्यु दण्ड न देकर छोड़ देते हैं।[1] जब अल्लावदीन के आदेश से उड्डान सिह ने धारा देवी नामक नर्तकी को मारा तब ऐसा करने की अनुमति नहीं[2] दी। इससे उसकी विनम्रता स्पष्ट प्रतीत होती है।

त्यागी

क्षत्रियो में कुल परम्परा के अनुसार पिता के साम्राज्य का अधिकारी बड़ा पुत्र होता है। राजकुमार **हम्मीर** के पिता राजा **जैत्रसिंह** अपने बड़े पुत्र के स्थान पर जब हम्मीर का राज देने की इच्छा करते है तब नीति के विरुद्ध मानकर हम्मीर ऐसा करने को तैयार नही हुए। वे तभी राजा स्वीकार करते है जब उनके पिता ने उन्हें स्वप्न में दिये गये भगवान विष्णु के आदेश को सुनाते हैं। इस संसार में प्रायः सभी राजकुमार राज्य के लिए आपस मे लड़ने वाले सुने जाते हैं किन्तु विचित्र है हम्मीर की त्यागशीलता जिसके प्रभाव से वे स्वयं पिता द्वारा आदर पूर्वक स्वयं पिता द्वारा दिये गये साम्राज्य को नीति विरुद्ध मानकर स्वीकार नहीं करते। इसी से उनकी त्यागशीलता की पराकाष्ठा स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है।

दक्ष

हम्मीर देव शासन करने की कला में बहुत निपुण थे। अपने लोगों के

1 हम्मीर महाकाव्य—13/90-104

2 हम्मीर महाकाव्य—13/1-38

साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए अनुचरो एवं बहादुरों के साथ कैसा आचरण करना चाहिए वे अच्छी तरह जानते थे।

अविकत्थन

यद्यपि हम्मीर देव वीरता के अवतार थे। युद्ध में उनको क्रोधित देखकर संसार में प्रसिद्ध अधिक सैन्य बलों से युक्त राजाओं का भी धैर्य छूट जाता था। स्वयं अल्लावदीन भी उनके विलक्षण पराक्रम को देख कर अनेक बार उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगता था। भोज ने भी छाती पीट कर उसके वीरता की महिमा का वर्णन किया है। इसी लिए उनके ऊपर अपना प्रभाव निस्तेज समझ कर शकेन्द्र ने भी सन्धि करने का विचार किया। इतना बलवान होते हुए भी हम्मीर ने अपनी प्रशंसा नही की और न ही उसने निर्बलो को कभी भी पीड़ित किया। इसीलिए वे एक आदर्श नायक थे।

शरणागत वत्सल

हम्मीर शरणागत की रक्षा करने वाले हैं। इसीलिए अपने शरण में आये हुए महिमासाहि की निरन्तर प्राण पण से रक्षा करते हैं। उसकी रक्षा के लिए अल्लावदीन के साथ युद्ध करते हैं। अनेक बाधाओं को सहते हैं किन्तु महिमा साहि को असहाय अवस्था में कदापि नही छोड़ते। उसकी रक्षा में अपनी स्त्री, पुत्री तथा परिजनों की भी परवाह नही करते थे। अन्तिम युद्ध केसमय पूर्ण रूप से विजय का अवसर न देख कर स्वयं महिमा साहि को सुरक्षार्थ अन्यत्र भेज देना चाहते हैं।

शूर

हम्मीर बचपन से ही बहादुर थे। अल्लावदीन पहली बार जब सब

उपाय करके उसे वश में करने में असमर्थ हो गया तो स्वयं वह **रणस्तम्भपुर** मे आकर प्रसन्न होकर हम्मीर से बोला हे महापराक्रमशाली मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ, अतः जो चाहो मांग लो। वह सुनकर वीर हम्मीर ने कहा मैं तुम्हारे साथ दो दिनों तक युद्ध करना चाहता हूँ। युद्ध के लिए आमन्त्रण देने से उनकी वीरता सिद्ध हो जाती है। हम्मीर से तिरस्कृत भोज का सम्मान करके शकराज अल्लावदीन ने जब हम्मीर को हराने का उपाय पूछा तब भोज ने कहा कि जो वीर हम्मीर के साथ अंग देश, बंग देश तथा काश्मीर आदि देशो को राजा भी युद्ध करने के लिए तैयार नही होते। उसके आगे भय के कारण सभी राजाओं के कण्ठ सूख जाते हैं। कुछ भी कहने मे समर्थ नहीं होते। ऐसा वीर हम्मीर किसी के द्वारा जीता[1] नही जा सकता। इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि हम्मीर देव बहादुरो में अग्रणी थे। वे केवल युद्ध में ही नहीं अपितु धर्म करने और दान[2] आदि करने मे अत्यधिक प्रशंसनीय थे।

धर्म परायण

हम्मीर एक धार्मिक शासक है। उनको धार्मिक क्रियाओं मे पूर्ण विश्वास है। दिग्विजय काल में मार्ग में पड़ने वाले जिन-जिन स्थानों को तथा मन्दिरो को देखा उन-उन स्थानो में जाकर वहाँ के देवताओं का पूजन किया। वे अवन्ति मे जाकर भगवान महाकाल का अर्बुद पर्वत पर पहुँचकर अचलेश्वर का पुष्कर क्षेत्र में आदिवराह का पूजन किया।[3] उन्होने अपनी पुत्री देवल देवी को उपदेश देते हुए कहा कि दुर्लभ मनुष्य जन्म

---

1. हम्मीर महाकाव्य—10/19-24
2. हम्मीर महाकाव्य—13/109, 125
3. हम्मीर महाकाव्य

पाकर[1] निश्चय ही धर्म करना चाहिए। इसी से उनकी धर्म प्रियता स्पष्ट होती है।

धर्म सहिष्णु

हम्मीर के चरित्र में धर्म सहिष्णुता तथा श्रद्धा के भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। वे अन्य धर्मों का ही समादर करते थे। इसीलिए वे अर्बुद पर्वत पर भगवान ऋषभदेव की स्तुति करते हैं। कवि ने उनकी धार्मिक सहिष्णुता का वर्णन करते हुए कहा, "नोत्त्मानां[2] हि चित्ते स्वपरकल्पना इति" दिग्विजय से आकर हम्मीर यज्ञ करते हैं। उसी अवसर पर वे ब्राह्मण आदि को अधिक धन समर्पित करते हैं। एक महीने तक कठिन मुनि व्रत का पालन करते हैं।

शीलवान पितृभक्त

हम्मीर बाल्यकाल से अपने पिता राजा जैत्रसिह पर अपरमित श्रद्धा रखते है। वे राज्य लाभ की अपेक्षा पिता की सेवा में अधिक रुचि रखते थे।[3]

स्वाभिमानी

वीर हम्मीर दिग्विजय के अवसर पर विलक्षण शौर्य प्रदर्शित करके सब जगह प्रशंसा प्राप्त करते हैं। दुरभिमानी शकराज ने जब सन्देश भेजा कि हे हम्मीर यदि तुम कल्याण चाहते हो अपनी पुत्री को सम्मान सहित मुझे दे दो और शरण में आये हुए महिमा साहि को लौटा दो ऐसा सुनकर स्वाभिमानी

---

1 दुर्लभं नृभव प्राप्य द्वयमेवार्जयेत् सुधीः।
कीर्ति धर्म च तौ सम्यक् कुलाचार प्रपालनात्।।

हम्मीर महाकाव्य—13/125

2 हम्मीर महाकाव्य

3. हम्मीर महाकाव्य—8/36-42

हम्मीर सिह के समान गर्जते हुए उस शकराज के ऊपर अत्यधिक नाराज हो जाते हैं। अपने खानदान तथा मातृभूमि के लिए वे नाना प्रकार के कष्टो को सहर्ष सहते हैं परन्तु स्वाभिमान को बेचकर राज वैभव का भोग नहीं करना चाहते। राजपात्रियों के अनुशासन से प्रेरित पुत्री देवल्ल देवी कहती है—

हा हा तात्[1] मदर्थं किं राज्यं विप्लावयस्यदः।
किं कीलिकार्थं प्रासादं प्रपातयति कश्चन॥

तब उसके स्वाभिमानी पिता हम्मीर डराते हुए कहते हैं—

शिक्षयित्वा पापिन्या त्वमिह प्रेषिता मया।
छिनदिम रसनां तस्या विमेमि स्त्री वधान्न च॥
त्वद् दानेन यदीप्स्येत प्राज्यराज्यसुखासिका।
तत् किं न जीवितव्याशा पुत्रकालेयमक्षणे॥
त्याज्य एकः कुलस्यार्थे तस्माद्धीनतरः स चेत्।
अहि दष्टो यथाऽगुष्ठः छेद्यो जिह्वाऽपि किं तथा॥[2]

इस प्रकार से उसने स्वाभिमान की रक्षा प्राणों की बाजी लगाकर की। वह तेजस्वी क्षत्रिय है। वह क्षात्र धर्म को अच्छी तरह जानता है। जीवन पर्यन्त उसकी रक्षा भी करता है। इसीलिए वह देश-विदेश में सब जगह स्वाभिमानियो में वीरों मे सम्मान पूर्वक याद किये जाते हैं। उनके विषय मे स्वय अल्लावदीन भी कहता है—

हम्मीरनामा तत्सूनुरधुना खर्व गर्ववान।
दण्ड दूरत एवास्तु न वाक्यमपि यच्छति॥[3]

---

1 हम्मीर महाकाव्य—13/107

2 हम्मीर महाकाव्य—13/117-118, 120

3. हम्मीर महाकाव्य—13/149

देशभक्त

हम्मीर क्षत्रियों के अति उत्तम कुल में जन्म लेकर अपने को गौरव युक्त समझता है। वह अपने कुल की परम्परा की रक्षा करने में अति सावधान दिखलाई पड़ता है। वह जानता है कि दुराचारी अल्लावदीन जिस किसी उपाय से मेरे राज्य को छीनना चाहता है। हम सभी लोगों को वश में कर की पीड़ित करना चाहता है।

अपने मातृभूमि के प्रतिष्ठा की रक्षा करना निश्चय ही क्षत्रियों अविनाशी छम है। अतः वह अपनी मातृभूमि की रक्षा में प्राणो का परित्याग कर सकता है किन्तु दुष्ट शत्रु की पराधीनता कभी भी स्वीकार नही कर सकता है। इसीलिए वह हुंकार पूर्वक कहता है—

प्राणानापि मुमुक्षामो वयमात्मक्षितेः कृते[1]

क्षत्रियाणमयं धर्मो नत्युजान्तेऽपि नश्वरः॥

स एव क्षत्रियः प्राणान्तेऽपि यो हुंकृतीक्षमः।[2]

इस प्रकार वह अपनी मातृभूमि के रक्षा के लिए उस बलि वेदी पर अपने परिवार के साथ प्रसन्नतापूर्वक प्राण त्यागने में भी पीछे नहीं जाता।

दृढ़व्रत

दृढ़व्रती हम्मीर जो कुछ भी सोचता है उसके अनुरूप ही आचरण करता है। वह जैसा मन में वैसे वाणी में और जैसा वाणी मे वैसा व्यवहार मे इस प्रकार महात्माओं के लक्षण का अच्छी प्रकार पालन करता है। वह कभी भी झूठ नहीं बोलता। जो कुछ कहता है उसके पालन में निरन्तर अपने

---

1 हम्मीर महाकाव्य—13/149

2. हम्मीर महाकाव्य—13/150

को लगा देता है। दिग्विजय यज्ञ के अन्त मे मौन व्रत में स्थित हम्मीर को देख कर दुष्ट शकेन्द्र सेना के साथ युद्ध करने के लिए उल्लू खान को भेजा। उसके मन मे विश्वास था कि व्रत में स्थित हम्मीर उसका खण्डन नही करेगा। जैसा कि कवि ने कहा है—

ज्ञातभूप स्वरूपेण तदातेन स्वसोदरः।[1]
उल्लूखानाख्यया ख्यातो जगदे जगदेकजित्॥

शरण में आये हुए महिमासाहि की रक्षा वह अपने कथनानुसार प्राणो की बाजी लगाकर करता है।

सुन्दर युवा

हम्मीर केवल अन्य बहुत से गुणों से ही सम्पन्न नहीं थे अपितु सौन्दर्य मे भी अद्वितीय थे। इसी कारण से उसको देख कर स्वाभाविकरूप से मृगनयनियाँ चंचल हो उठती है। सहसा उसके आधीन हो जाती हैं। अधिक क्या कमनियाँ उसे अपना पति बनाने के लिए अत्यधिक उत्सुक हो जाती हैं।

अथा भंगुर श्रृंगार जीवन यौवन श्रितः।
कासां मृगीदृशां निन्ये वशं हग्मनसी न सः॥[2]

अपि च—

दृग्द्वन्द्वपोय सौन्दर्य श्रीणामेकं तमास्पदम्।
दृष्ट्वा वाञ्छन पतीकर्तु कामिन्यः कान मानसे॥[3]

अल्लावदीन के दूत रूप में रणस्तम्भपुर मे आया हुआ मोल्हण सभा के बीच मे विराजमान हम्मीरदेव को देखकर विचार करता है।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—9/101
2 हम्मीर महाकाव्य—4/152
3 हम्मीर महाकाव्य—4/153

किमेष माको नयतोऽनङ्ग किमेषदस्त्रौ न यद् द्वितीयः।[1]
किमेष विष्णुर्न यतो द्विबाहुः किमेषवज्रीनयतो द्विनेत्रः॥

इससे प्रतीत होता है कि हम्मीर मदन के समान सुन्दर, विष्णु के समान प्रजाओं के पालन में निपुण, वज्रधारी इन्द्र के समान शत्रुओं के विनाश मे विलक्षण सामर्थ धारण करता है। इस प्रकार कविवर नयचन्द्र ने नवें सर्गके सात पद्यों में हम्मीर के सौन्दर्य[2] का मनोरम वर्णन किया है।

आदर्श सेनानायक

हम्मीर बहादुर तथा अद्वितीय उत्साहयुक्त सेनानायक था। वह भयंकर परिस्थिति में भी शत्रुओं के साथ युद्ध करने में जरा भी भय अनुभव नही करता था तथा एक पग भी विचलित नहीं होता था। अल्लावदीन के विशाल सैन्य बल को जानकर भी वह इतने कौशल से, पराक्रम से तथा साहस से छोटी सेना लेकर युद्ध करता था कि प्रबलतर शकराज के सारे प्रयास विफल हो जाते थे। फलस्वरूप शकराज अल्लावदीन उसके साथ सन्धि करने के लिए उद्यत हो जाता है। उसने अपनी सेना मे अति योग्य कार्यकर्ता तथा विश्वसनीय वीर सैनिकों को नियुक्त कर रखा था। इसीलिए उसके मौन व्रत में स्थित रहने पर भीम सिंह तथा धर्म सिंह के युद्ध कौशल तथा पराक्रम से पीड़ित होकर उल्लूखान निराश दिल्ली की तरफ भागा।[3]

गुणज्ञ

हम्मीर गुणगानों का आदर करता है क्योंकि वह गुणों के महत्व को भली प्रकार जानता है। वह समय-समय पर पुरस्कार आदि द्वारा वीरों को

1. हम्मीर महाकाव्य—1152
2 हम्मीर महाकाव्य—4/152-158
3. हम्मीर महाकाव्य—9/110-143

सम्मानित करता है। एक बार जब उल्लू खान के साथ युद्ध करता हुए रतिपाल ने शकेन्द्र के वीरों को घोड़ों तथा हाथियों को विनष्ट किया तो उसकी वीरता से प्रसन्न हम्मीर देव ने कहा, "यह मेरा मतवाला हाथी है, ऐसा कहकर उसके पैरों में सोने की जंजीर डाल दिया। जैसा कवि ने कहा है—

अथक्षितीशोरतिपालशौर्य मतीम माकर्ण्य लसत् प्रमोदः।[1]
मत्तो ममायं गज इत्यभुष्य पादे क्षिपत् कांचन श्रृंखलानि।।

राजनीतिज्ञ

इतिहास जानने वाले कहते हैं कि हम्मीर ने महिमासाहि को तथा उनके पीछे चलने वाले मुद्गलों को शरण में रख कर महान अपराध किया। लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि वास्तव में उसने मुद्गलों को अपने पक्ष में लाने के लिए ऐसा कार्य किया। मुद्गल सैनिक युद्ध कला मे चतुर तथा वीर थे। उनसे दिल्ली के प्रशासक व्याकुल रहते थे। कुछ मुद्गल अल्लावदीन के समय में भारत वर्ष मे निवास करते थे इसीलिए नये यवन कहलाते थे। इसलिए हम्मीर ने उनको अपने पक्ष मे करके यवन शक्ति का विभाजन कर दिया। राजपुत्र की अपेक्षा मुद्गलो के साथ महिमासाहि जैसे भारत भक्त वीरों को अपने साथ लाकर हम्मीर सिहने अल्लावदीन के बल में न्यूनता लायी।

हिन्दू धर्म के रक्षक

शाकम्भरी चाहमान वंशी राजाओं के कार्यो की समीक्षा के बाद यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि उन्होंने समय-समय पर हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए

---
1 हम्मीर महाकाव्य—10/63

अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। प्रायः सभी राजाओं ने यवन शासको के साथ भयङ्कर युद्ध करके हिन्दू धर्म की रक्षा की। उसी क्रम मे उन्होंने हिन्दू मन्दिरों का निर्माण कराया। वीरवर हम्मीर भी हिन्दू धर्म का रक्षक और उपासक था। उसने अपने धर्म की रक्षा के लिए परिवार के साथ प्राणों को त्याग दिया। अपने दिग्विजय यात्राओं में उसने श्रद्धापूर्वक अचलेश्वर, अर्बुदेश्वर, शाकम्भरी देवी तथा महाकालेश्वर आदि देवों का पूजन किया तथा पूजकों को अतुल धन देकर सम्मानित किया।[1] **रणस्तम्भपुर** में हम्मीर ने पुष्पक नामक महल का निर्माण कराया यह भी उस शिलालेख में वर्जित है।

विद्वानों का प्रिय तथा कला प्रेमी

जिस प्रकार हम्मीर के पूर्वज राजागण कवियों, विद्वानों तथा कलाविदों को सम्मान प्रदान करने में प्रसिद्ध थे वैसे हम्मीर भी हमेशा मन और कर्म से विद्वानों तथा कवियों का दान और सम्मान द्वारा रक्षा करने में उस समय अति प्रसिद्ध था। **वैजादित्य** नामक प्रसिद्ध कवि हम्मीर देव की राजसभा में आभूषण था। **राघव देव** उसके पूज्य गुरु थे। जैन मुनि **कविवर नयचन्द्र** ने कहा है कि वह ब्राह्मणों का आदर करने वाला, भारतीय दर्शनों का उससे सम्बन्धित जैन विद्यालयों का संरक्षक था। उसके शासन काल मे विद्वानों एवं कवियों ने अनेक रचनाएँ लिखी हैं।

हम्मीर के चरित्र की दुर्बलता

हम्मीर देव के चरित्र में कुछ कमियाँ भी दिखलाई पड़ती हैं। वे इस प्रकार हैं—

अति क्रुद्ध स्वभाव वाला

वह स्वभाव से अति कुपित प्रकृति का प्रतीत होता है। युद्ध मे साधारण

---

1. हम्मीर महाकाव्य

मध्य अपराध को देख कर अति कुपित हो जाता था। इसी कारण से वह भीम सिह को युद्ध में पराजित कर आये धर्म सिह को देख कर अतिशय कोपावेश में आकर बार-बार उसकी उलाहना करते हुए उसे नपुंसक तथा नेत्रहीन करवा दिया।[1]

अविवेकी

हम्मीर के कार्यों में कहीं-कही मूर्खता के भी दर्शन होते हैं। धर्म सिह को पूर्ण अन्धा बनाकर राज्य से बाहर निकाल कर बाद में पुनः उसे प्राचीन पद प्रदान करके हम्मीर ने अपने लोभ भावना को प्रकट करक दिया।[2] लोभ के वशीभूत वह यह भी नहीं सोचता कि धर्म सिह न्याय से धन कमाता है कि नहीं। इसी कारण लोभान्ध होकर वह प्रच्छन्न शत्रु धर्म सिह के पूर्णतया वश में हो जाता है। अन्धे धर्म सिंह के अत्याचार से पीड़ित स्वामिभक्त भोजदेव जब उसके दोषों को राजा से कहता है[3] तब उसके कथन पर अन्धविश्वास के कारण वह विश्वास ही नही करता अपितु धर्म सिह के स्थान पर उसे ही धमकाता है तथा अन्योक्ति द्वारा संकोच छोड़कर स्पष्ट रूप में निन्दा करता है—

सन्त्येवात्र पदे पदेऽपि वहवः क्षुद्राः निकामं खगाः।[4]
ना कुत्रापि समोऽस्ति गर्ह्य इतर काकात् वराकात् परम्।
क्राधाविष्टपहिष्ठधूक निकरस्याग्रोत्थकोटिक्षतो।
स्त्रुप्यत्पक्षचयोऽपि यस्तरूतटं नापत्रपः प्रोज्झति।।

स्वामिभक्त भोजराज के प्रति राजा का ऐसा व्यवहार उसकी अविवेकिता

1. हम्मीर महाकाव्य—9/151-153
2. हम्मीर महाकाव्य—9/161-167
3 हम्मीर महाकाव्य—9/172-173
4. हम्मीर महाकाव्य—9/172-173

को प्रगट करता है।

जब भोज काशी यात्रा के लिए निवेदन करते हैं उस समय भी उसके प्रति राजा का व्यवहार अत्यधिक निन्दनीय है।[1]

जगाद भूपतिर्यासि परतं पुरतो न किम्।
विना भवन्तमप्येवं पुरं संशोभते पुरा।

राजनीति में अकुशल

हम्मीर राजनीति में पूर्ण रूप से कुशल नहीं प्रतीत होता। कूटनीति के कुचक्र से अपरिचित वह विश्वासघाती रतिपाल पर विश्वास कर लेता है। धन लोभी रतिपाल उसे अपने कुचक्र में फंसा लेता है। रतिपाल उसके मन में विश्वास पैदा करता है कि रणमल्ल उससे नाराज है।

वह हम्मीर को रणमल्ल के पास भेज कर अपनी कूटनीति को सफल करता है। हम्मीर अपने छोटे भाई वीर से यथार्थ जानकर भी रतिपाल को दण्डित नही करता और न ही उससे सावधान ही होता है। केवल यह ही कहता है—

विरम्यतां तदेतस्माद् भाव्यमस्ति यदस्तु तत्।[2]
रावणादि मिरप्युगैर्न माव्यं रुरुधे यतः।।

कूटनीति से अपरिचित हम्मीर न तो स्वामिभक्त भोज को जानने मे समर्थ हुआ और न ही धर्मसिंह, रतिपाल अथवा जाहड को। जब हम्मीर के विश्वासपात्रो ने समय-समय पर उचित व्यवहार करने की प्रार्थना की तो उसने उनकी प्रार्थना को भी अनसुनी कर दी। इसी कारण से वह असमय

---

1. हम्मीर महाकाव्य—9/186
2. हम्मीर महाकाव्य—13/104

मे ही मातृभूमि को छोड़ कर स्वर्ग चला गया। इस प्रकार वह कूटनीति से अनभिज्ञ कोई वीरता का अवतार क्षत्रिय शासक था ऐसा कहा जा सकता है।

हम्मीर न तो स्वयं ही धन के विषय में सावधान था और न ही उसके विषय मे विशेष जानकार ही था। उसने यह भी नही विचारा कि धर्मसिह पुनः मन्त्री पद पर आकर प्रजा को पीड़ित कर बलपूर्वक धन कमा रहा है। उसके इस व्यवहार से जनता बहुत नाराज होती है। माना जाता है इसीलिए अन्त में हम्मीर की लोकप्रियता में थोड़ी कमी आ गई।

दुराग्रहप्रिय

हम्मीर का दुराग्रह भी संसार में प्रसिद्ध है।

"तिरिया तेल हम्मीर हठ चढ़े न दूजो वार"

इस प्रकार की उक्ति सब जगह हठवादी लोगो के विषय में प्रचलित है। हठवादिता के ही कारण उसने अल्लावदीन को छोड़कर आये मुदगल सैनिक पुनः-पुनः शकेन्द्र की प्रार्थना को सुनकर भी नहीं लौटे। इसका अत्यन्त कटु फल उसने अपने जीवन में अनुभव किया। राजनीतिक दृष्टि से यह उसकी अदूरदर्शिता का फल था इसमें सन्देह नहीं।

परन्तु इतने पर भी सूक्ष्म दृष्टि से परीक्षा करने के बाद यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि जो कुछ भी दोष उनके चरित्र में दिखलाई पड़ते हैं वे भी हम्मीर के गुणो के आगे ठहर नही पाते। हम्मीर को वीरतापूर्ण युद्ध, सदाचार, शरणागत के प्रति स्नेहवंश की प्रतिष्ठा की रक्षा मे प्राणो को अर्पित कर देना, मातृभूमि के प्रति भक्ति, दया-दान-धर्म-वीरता तथा जनता के प्रति वात्सल्य भाव आदि बहुत गुणो को देखकर उसके अत्यल्प दोष पूर्ण रूप से छिप जाते हैं। दिखलाई नही पड़ते।

अल्लावदीन

अल्लावदीन प्रस्तुत महाकाव्य का प्रतिनायक है। यह दिल्ली का राजा तथा शक राज है। उसके अति पराक्रम से भयभीत हम्मीर देव के पिता महाराज **जैत्रसिंह** भी उसे सादर कर दिया करते थे। किन्तु जब हम्मीर ने उसे कर नहीं दिया तब शकराज अल्लावदीन उन्हे वश मे लाने का उपाय सोचने लगा।[1]

वह समय के महत्व को अच्छी तरह जान कर कार्य करता था। शत्रु की दुर्बलता में वह अपने इष्ट साधन में अत्यन्त निपुण था। यज्ञ में व्रत ग्रहण के कारण हम्मीर युद्ध करने नहीं आयेगा ऐसा अच्छी तरह विचार कर ही अल्लावदीन अचानक **हम्मीर** पर आक्रमण कर देता है।[2] उसने यहसोचा कि रणस्तम्भपुर को अपने वश में लाने का यह सुन्दर अवसर है। वह जानता है कि देश के नष्ट हो जाने पर राजा भी निश्चय ही दुर्बल हो जायेगा। इसी लिए वह अपने भाई **उलूगखान** को युद्ध के लिए **रणस्तम्भपुर** प्रस्थान करते समय कहता है—

स महोजस्तया शक्यो जेतुं नामू दियाच्चिरम्।
व्रते स्थितधीतये दानीं लीलयैव विजीयते॥
तद्गत्वाऽस्य रणस्तम्भतलं देशं विनाशय।
ध्वस्ते देशे स संस्थातुं सा सहि कतिवासरान॥[3]

वह धूर्तता में निपुण है तथा कूटनीतिज्ञ भी है। वह कपट पूर्ण आचरण से ही अपने शत्रु हम्मीर देव के प्रमुख जनों को अपने पक्ष मे लाने के लिए पूर्णतया प्रयत्न करता है। इस कार्य मे उसे सफलता भी मिल जाती है।

1 हम्मीर महाकाव्य—9/100

2 हम्मीर महाकाव्य—9/101-103

3. हम्मीर महाकाव्य—9/104-105

हम्मीर देव के विश्वासपात्र भोज के आने का समाचार मिलने पर वह बहुत प्रसन्न होता है। जगरा नगरी उसे देकर बहुत प्रकार से सम्मानित करता है। इस कारण भोज उसके आधीन हो जाता है। हम्मीर के दण्डनायक रतिपाल को अपने अनुकूल करने के लिए वह इस प्रकार सन्देश भेजता है—

एतदराज्यं तवैवास्तु जयेच्छ केवलं त्वहम्।[1]

इतना ही नहीं अपितु रतिपाल को अपने अन्तःपुर मे लाकर बड़े सम्मान के साथ भोजन कराता है। वह रतिपाल में विश्वास पैदा करने के लिए उसके समीप अपनी बहन को मद्य दिलाने के लिए आदर पूर्वक भेजता है।[2]

इस प्रकार वह रतिपाल को वश में करके हम्मीर के विनाश के लिए उपाय सोचने लगा। वह रतिपाल के माध्यम से रणमल्ल जाहड को अपने पक्ष में लाने में सफल हो जाता है।[3] किन्तु इतने पर भी वह जानता है कि जो अपने स्वामी का विश्वासघाती है वह दूसरे का पूर्ण रूप से स्वप्न में भी विश्वासपात्र नही हो सकता। इसी कारण से उसके माध्यम से अपने बड़े कार्यो को पूर्ण करके अन्त में रतिपाल के मुख में खल्ल परदान कर राज्य से बाहर निकाल दिया।[4]

इस प्रकार संक्षेप में हम्मीर महाकाव्य के आधार पर शकराज अल्लावदीन के विषय में कहा जा सकता है कि वह वीर है किन्तु स्वभाव से क्रूर, धूर्त,

---

1 हम्मीर महाकाव्य—13/77

2. अन्तरन्तः पुरं नीत्वा शकेशस्तमभोजयत्।
अपीत्यत् तद्भगिन्या च प्रतीत्यै मदिरामपि।।
हम्मीर महाकाव्य—13/81

3. हम्मीर महाकाव्य—13/131-140

4. हम्मीर महाकाव्य—14/21

कूटनीतिज्ञ था। उसका यह सिद्धान्त था कि अपने कार्य की सिद्धि यदि अनुचित साधनों से होती हो तो अनुचित उपाय करने में थोड़ा भी संकोच नही करना चाहिए। इसी सिद्धान्त से वह जैसे-तैसे हम्मीर देव के विश्वासपात्रों रतिपाल आदि को धन तथा स्त्री आदि से सम्मानित कर अपने प्रबलत शत्रु हम्मीर को पराजित कर दिया।

यद्यपि वह इस युद्ध में विजयी हुआ किन्तु जिस उपाय से उसको विजय मिला उससे उसकी अपकीर्ति सारे संसार में फैल गई। भारत के इतिहास में उसका नाम आदर्श राजाओं में नही लिया जाता अपितु अत्याचारी तथा धूर्त राजाओं में उसकी गणना होती है।

भीम सिंह

यह वीर **हम्मीर देव** का वीर सेनापति था। उसके वर्णन के अवसर पर कविवर **नयचन्द्र** ने कहा है—

अथो अमावात्तनुजस्य भीमं भ्रान्तेयमात्मीय पदे निवेश्य।
कृतारिषड्वर्गजयःस सिंह राजो हरे र्धाम जगाम नाम॥
तद्राज्यमासाद्य स भीमदेवः सद्यस्तथा विक्रममाततान्।
न वास्तवी क्वापि यथा धरायां वभूवुषीशत्रुरिति प्रवृत्तिः॥

वह उल्लू खान सेनापतित्व में आये हुए शक सेना को अपने पराक्रम से विनष्ट कर देता है। किन्तु दुर्भाग्य से एक मूर्खता पूर्ण कार्य करके वह अपने को ही विनष्ट कर लेता है। वह शत्रु की सेना को पराजित कर पर्वत की गुफा में जाता है। वहाँ वह शकों से बलपूर्वक छीनेगये विजय स्मृति सूचक वाद्य यन्त्रों को बजाता है। इसी के परिणामस्वरूप शक सैनिक बाजे की ध्वनि सुनकर अपना विजय मानकर वहाँ एकत्रित होने लगे। उल्लूगखान ने पुनः युद्ध आरम्भ कर दिया। उस युद्ध में अपनी सेना से रहित भीम सिंह

मार डाला जाता है।

धर्म सिंह

धर्मसिह इस महाकाव्य में **हम्मीर देव** के प्रधानमंत्री के रूप मे वर्णित है। उलूगखान के साथ हुए प्रथम युद्ध में जहाँ भीमसिह की मृत्यु हुई थी वहाँ चाहमान वीरों के पराजय का कलंक, भीमसिह तथा धर्मसिह के मूर्खतापूर्ण कार्य का ही दुष्परिणाम थी।

इन दोनों सेनानायकों के बीच भीमसिंह तो युद्ध भूमि में मारा गया किन्तु धर्म सिंह पराजित होकर लौट जाता है। हम्मीर उसका आलस्य सहन नहीं करता। सेनापति को मार्ग में छोड़कर आने के कारण नाराज उसको उलाहना देते हुए उसके दोनों नेत्रों को निकाल लेने का आदेश देता है। हम्मीर ने धर्म सिह को भी महामंत्रीपद से हटा दिया। इस अपमान से दुःखी वह कूटनीतिज्ञ प्रतिदिन **धारा** नाम की नर्तकी को नृत्य के बहाने राज्य परिषद में भेजकर राज्य भवन के सम्पूर्ण घटनाक्रम को जानने का प्रयत्न करता रहा।

वह नर्तकी के मुख से वेध रोग के कारण बहुत से घोड़ों के मर जाने से चिन्तित राज हम्मीर की दशा को जान कर अपने अपमान का बदला लेने का उचित अवसर है ऐसा मान लेता है। अतः वह धारा देवी को राजा के समीप प्रार्थना के लिए भेजता है। नर्तकी धारा वहाँ जाकर प्रार्थना करती है कि महाराज यदि धर्म सिंह पुनः मन्त्री पद पर आ जावे तो वहमरे हुए घोड़ों के स्थान पर दूने घोड़े ला सकता है। इसी के अनुसार पुनः धर्म सिंह का प्रधान मन्त्री पद पर नियुक्ति हो जाती है।

प्रधानमंत्री के पद पर पुनः आकर धर्मसिह ने हम्मीर के राज्य के

विनाश के लिए प्रजाओं पर बहुत प्रकार से कर लगाकर उनको पीड़ा पहुँचाने लगा। किन्तु कोश में अधिक धन इकट्ठा हो जाने से वह राजा का प्रिय पात्र हो जाता है। भोज सदृश स्वामिभक्त भी उसी के कुचक्र से देश को छोड़कर शत्रु के समीप चला जाता है। वह भोज से भी विगत वर्ष का आय-व्यय का हिसाब पूछता है। धर्म सिंह का हम्मीर सिहके ऊपर इतना प्रभाव है कि जब भोज राजा से उसके दुर्व्यवहार के विषय मे कहता है तब स्वयं राजा भोज को फटकारते हुए कहते हैं—

निजगाद नृपो यस्य मयि भक्तिरनीश्वरी।
न लुप्यते म केनापि धर्म सिंहस्य शासनम्।

अन्धा धर्मसिंह जनता की सहानुभूति से हम्मीर को वंचित कर रहा है। हम्मीर की अजेयता को कया दिया है। उसने मित्रों को भी अपने दुर्व्यवहार से शत्रु बना दिया है। अल्लावदीन के प्रति भोज द्वारा कहे गये इस वचन मे धर्म सिह का सारा चरित्र देखा जा सकता है।

दीपस्येव समीरणः सरसिजश्रेणे दिवाम्मोधरः
सूर्यस्येव दिनात्ययो यतिवरस्येवैभदृक् संगमः।
दहस्येव[1] गदोदयो गुणगणस्येवाति लोकाश्रय
स्वद्राज्यस्य विनाश हेतु रघुनैकोऽन्धः परं दीव्यति।।

भोजदेव

भोजदेव हम्मीर देव का जातिगत बन्धु है तथा राज्य का दण्डनायक है। महाकवि ने इसे शुभचिन्तक भाई के रूप मे याद किया है। यह स्वभाव से अत्यन्त दयालु है। जब हम्मीर नाराज होकर धर्म सिह को देश से निकाले देता है तब भोज ही उनको ऐसे कार्यो से रोकता है।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—10/28

'तं च निर्वासयन् देशादमुनैव न्यपि ध्यत्'[1]

कुछ समय के बाद उसके पद को जरतिपाल को दे दिया जाता है तब भी वह कुछ नहीं कहता किन्तु जब धर्म सिंहवैर भाव से पूर्व वर्षो का आय व्यय का हिसाब मांगता है तब इस अपमान को वह सहन करने में समर्थ नहीं होता। वह विनम्रता केसाथ इस विषय में राजा से निवेदन करता है—

देवस्य यदि मे प्राणै कर्य गृह्णातु तर्हि तान।
न सेहे परमन्धस्य वाक्यतोऽथ कदर्थनाम्।।

किन्तु उसके दुर्भाग्य से राजा द्वारा धर्म सिह का ही पक्ष लिये जाने पर वह अपना सब कुछ धर्म सिंह को समर्पित कर देता है। यदि उसके स्थान पर कोई दूसरा होता तो उस अवस्था में राजा का शत्रु हो जाता किन्तु धन्य है वह स्वामिभक्त जो अपमान सहकर भी, निर्धन होकर भी राजा का निरन्तर मन, वचन और कर्म से सेवा करता है। कहा भी है कवि ने—

तथाप्ये षो मिजातत्वाद जहत् स्वामिभक्तिताम्।
योगीव परमं ब्रह्म भोजो भूपमसेवत्।।[2]

किन्तु हम्मीर उसे फटकारता है—

सन्त्येवात्रपदे पदेऽपि वहवः क्षुद्रा निकामं खगाः
नो कुत्रापि समोऽस्ति गर्हयतरः क काद् वराकात् परम्।
क्राधाविष्टपटिष्ठधूक निकरस्याग्रोत्थकोटेक्षतै
स्त्रुस्यत्पक्षचयोऽपि यस्तरु तटं नापत्र प्रोञ्झति।।[3]

ऐसे अप्रस्तुत प्रशंसा वचनों से जब निन्दा करता है तब उसका क्षात्र तेज सहन करने योग्य नहीं रह जाता। वह अपने भाई से दुर्दशा युक्त इन

---

1 हम्मीर महाकाव्य—9/155

2 हम्मीर महाकाव्य—9/178

3 हम्मीर महाकाव्य—9/180

दिनो को शान्ति से बिताने का निश्चय करता है—

यात्राव्याजेन तद् यामो दिनानि कति चिद् वहिः
कालक्षेपो शुमे श्रेयान नीति विद्र्जगे यतः।[1]

जब वह देश से प्रस्थान के समय राज से अनुमति मांगने के लिए जाते हैं उस समय भी हम्मीर देव का व्यवहार उसके साथ अति निन्दनीय प्रतीत होता है। हम्मीर सामान्य शिष्टाचार को भी नहीं विचारता अपितु व्यङ्ग्योक्ति द्वारा पीड़ित करते हुए कहता है—

जगाद भूपतिर्याऽसि परतः परतो न किम्।
विना भवन्तमत्येवं पुरं संशोभते पुरा[2]

राजा हम्मीर देव द्वारा बार-बार किये गये अपमान को सोचकर भोजदेव के मन मे राजद्रोह की जो भावना उत्पन्न हुई उसके लिए उसका किसी भी प्रकार का दोष नहीं स्वीकार किया जा सकता है। इसमे हम्मीरदेव ही प्रमुखतया दोषभागी है। स्वयं कवि ने भी स्वीकार किया है—

अपमानपरेऽपि यो नरे शममेव प्रयतोऽवलम्बते।[3]
अपि शूकशिखा ततो वरं व्यधिमसौ तदाह ता॥

हम्मीर द्वारा तिरस्कृत होकर भोजदेव शकराज अल्लावदीन के पास गये। कूटनीतिज्ञ अल्लावदीन उनका आदर सत्कार करके जगरा राज्य को प्रदान किया। महाकवि ने यहाँ भोज के दोष को नही प्रदर्शित किया है क्योंकि वह एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन था। कहा है—

तादृकं कुलीनोऽपि स भोजदेवो
ऽधुना ही कृतवान् यदेवम्।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—9/184

2 हम्मीर महाकाव्य—9/186

3 हम्मीर महाकाव्य—10/4

तन्म्लेच्छभूश्रम्भितमेव तस्मात्

सतां न तदभूरपि वासयोग्या[1]

भोजदेव हम्मीर द्वारा बार-बार तिरस्कृत होने पर भी हम्मीर के ऊपर क्रोध नहीं किये। क्योंकि वे जानते थे कि अन्धे धर्मसिह के कुचक्र मे फंसकर स्वामी हम्मीर देव पथभ्रष्ट हो गये हैं।

अतएव अल्लावदीन के सामने भीमदेव हम्मीर की प्रशंसा करता है—

सर्वैश्रेष्ठगुणैरधिष्ठित तनुर्हम्मीर वीरः परम्।

अपि च

स श्री हम्मीर समर मुनि कथं जीयते लीलयैव।[2]

किन्तु फिर भी हम्मीर के ऊपर आक्रमण करने के लिए अल्लावदीन को परामर्श देना उसके उदात्त चरित्र के अनुकूल नहीं है। वीर महिमासाहि जब जगरा राज्य को ग्रहण कर लिया तब उसका अल्लावदीन के सामने दीन की तरह लौटना तथा विलाप करना यह सब क्षत्रियोचित प्रतीत नही होता। इसीलिए कवि उस विषय में कहता है—

विस्तार्य सिचयमग्रे गतःसरस्तद्द्मुतमतीनाम्।

कटुकं विरहस्तदुपरि सुतरां विजुलोठ भूतयान्त इव।

तत् किं करोमि कं वाश्रयामि यामि क्ववा किमु वदामि।

हृदयं वातान्दोलित तुलां कलय तीरमनुवेलम्।।[3]

इस प्रकार भोज के चरित्र में पूर्वार्द्ध में जैसी उदात्तता दिखलाई पड़ती है वैसी उसके जीवन के उत्तरार्द्ध में नहीं प्राप्त होती। दुर्भाग्य युक्त व्यक्ति के जीवन में ऐसा परिवर्तन निश्चय रूप से स्वाभाविक होता है।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—10/9।।
2. हम्मीर महाकाव्य
3. हम्मीर महाकाव्य—10/72, 76

रति पाल

वह भोजदेव के स्थान पर दण्डनायक पर नियुक्त होता है। वह वीरों मे श्रेष्ठ है। दूसरी बार स्तम्भपुर के ऊपर उल्लूगखान के आक्रमण के समय हम्मीर ने किले के तोपखाने के रक्षा का भार रतिपाल को ही दिया था। इस युद्ध में वह अपूर्व पराक्रम दिखलाता है। परिणामस्वरूप अति प्रसन्न हम्मीर उसके चरणों को सोने के कंगनों से विभूषित करता है।

रतिपाल के स्वामी हम्मीर का विश्वासपात्र है। किन्तु कुछ समय बाद वह राज्य लोक के कारण विश्वासघाती हो जाता है। शकराज अल्लावदीन जब कहा कि, "यह राज्य तो तुम्हारा होगा मैं तो केवल जय की इच्छा चाहता हूँ" इस कथन से राज्य लोप उत्पन्न हो जाता है। वह अल्लावदीन के बहन के हाथ से शराब पीकर उसके आधीन हो जाता है। अल्लावदीन के कूटनीति से रतिपाल रणमल्ल के भी मन मे हम्मीर के प्रति विद्रोह की भावना उत्पन्न करने में समर्थ हो जाता है।

विश्वासघाती रतिपाल युद्ध स्थल में गिरे हुए हम्मीरदेव के सिर को पैरों के नीचे दिखलाता है। यह देख कर अल्लावदीन के भी हृदय मे कष्ट उत्पन्न हो जाता है। वह सोचने लगता है कि जो व्यक्ति पूर्व में हम्मीर देव का सर्वाधिक विश्वासपात्र था वह ही इस समय राज्य के लोभ के कारण इतना कृतघ्न हो जाता है। जो अपने स्वामी हम्मीर के प्रति इस प्रकार दुर्व्यवहार करता है तो वह मेरे साथ आगे चल कर किस प्रकार मित्रता की रक्षा कर सकेगा। इस कारण शकराज ने उसके मुख में खल बांध कर राज्य से बाहर भेज देता है।

रतिपाल हम्मीरदेव के प्रति किये गये दुर्व्यवहार को न सह सकते हुए

कविवर नयचन्द्र भी उसकी दुर्दशा का सहर्ष वर्णन करते हैं—

आजौ पाद तलेन दर्शितवतो हम्मीर भूमृच्छिरः,
पृष्ठस्तेन तदर्पिताश्च गदतस्तांस्तान् प्रसादानपि।
खल्लं ते रतिपल यच्छकपतिर्निष्कासमाभासिवान्
तद्युक्तं त्वनिवान्यथा कति पुनर्द्रुह्यन्ति न स्वामिनम्।।

वस्तुतः किसी विश्वासघाती की ऐसी दुर्दशा तो होनी ही चाहिए। इसी बात को कविवर नयनचन्द्र ने ठीक ही दिखलाया है।

रणमल्ल

रणमल्ल भी स्वभाव से वीर है। स्वामी हम्मीर का विश्वासपात्र है। उसकी वीरता इसी से सिद्ध होती है कि खुद हम्मीरदेव उसे नाराज जानकर उसे मनाने जाते हैं।[1]

रणमल्ल के चरित्र में यद्यपि दोष नही दिखलाई पड़ता किन्तु वहरतिपाल के कूटनीति के कुचक्र में आकर अन्त में हम्मीर को छोड़कर अल्लावदीन के निकट चला जाता है। इसीलिए कवि उसके देशद्रोह से अप्रसन्न होकर उसकी निन्दा करता है—

''द्राग्[2] वक्त्रं रणमल्लः कृष्णाय निजं पापिंस्त्वमप्युच्चकैः
जाजो महिमासाहिश्च''

ये दोनों वीर स्वामीभक्त हैं। अन्तिम युद्ध के अवसर पर जाज अपनी आठ स्त्रियों के एक पुत्र के सिर को काटकर हम्मीरदेव के समीप लाता है

---

1 विशके रणमल्लो सौ रुष्टः केनापि हेतुना।
तेना ज्ञापि ध्रुव येन दृढ़ां प्रौढिं वहत्यसौ।।
हम्मीर महाकाव्य—13/88

2. हम्मीर महाकाव्य—14/16

स्वयं भी इसके लिए प्राणों को छोड़ने की इच्छा प्रकट करता है—

किम तदिति राज्ञोक्ते सोऽवक् राजन यथा पुरा।
रावणः शम्भुमानर्च तथात्वामर्चयाम्हम्॥
तच्छिसि नवैतानि रक्षा हस्तपदे पुनः।
शिरोममेदमित्युक्त्वा स स्व शीर्षमदीदृशत्॥[1]

इस प्रकार वीरों में श्रेष्ठ, स्वामिभक्त जाजदेव के अतीव संक्षिप्त अति उज्ज्वल चरित्र को प्रदर्शित किया है। महाकवि नयचन्द्र ने।

महिमासहि

यह कम्बोज कुल में पैदा हुआ वीर है। जाज के समान वह भी प्रशंसनीय चरित्र वाला है। यद्यपि वह विदेशीय है किन्तु हम्मीर देव के शरण में आ गया है। अपनी भक्ति और कर्म से स्वामी का विश्वासपात्र है। जब दूसरी बार शकराज अल्लावदीन रणस्तम्भपुर पर आक्रमण करता है तब हम्मीर के आदेश से आत्मीयता के कारण महिमासाहि किले के अति महत्वपूर्ण पश्चिम भाग की रक्षा का भार ग्रहण करता है। स्वभाव से वीर वह हम्मीरदेव की आज्ञा से जगरा के ऊपर आक्रमण करके भोज के भाई प्रिथम को वह घायल अवस्था में पकड़ लेता है। वह युद्ध मे निपुण धनुर्धर है। इसी कारण से दुर्ग पर से ही अल्लावदीन के धनुर्धर उड्डान सिह को बाण से मार देता है।

महिमासाहि के स्वामिभक्ति का सबसे उत्तम उदाहरण तब दिखलाई पड़ता है जब हम्मीर उसे विदेशी जान कर सपरिवार उसको अन्यत्र भेजना चाहता है। महाराज हम्मीर के इस कथन को सुनकर उसके हृदय मे महान

---

1 हम्मीर महाकाव्य—13/188-189

कष्ट होता है। इसी कारण से वह घर जाकर अपने परिवार के सभी सदस्यों को तलवार से मारकर अपनी उज्ज्वल और दृढ़ भक्ति को प्रदर्शित करता है। जिसका आश्रय पाकर नाना प्रकार के सुखों का अनुभव किया विपत्ति काल में उसी महापुरुष का परित्याग कैसे किया जा सकता है। स्वप्न में भी ऐसा सम्भव नहीं है। हम्मीर के प्रति उसकीभक्ति अटल एवं कपट रहित है।

हम्मीर देव के स्वर्गारोहण के बाद जब वह जीवित ही पकड़कर अल्लावदीन के सामने लाया जाता है तब शकेन्द्र अल्लावदीन को अपने पैर का तलवा ही दिखलाता है। अल्लावदीन के द्वारा यह पूछे जाने पर कि यदि तुम जीवित ही छोड़ दिये जाय तो क्या करोगे? महिमा साहि ने बिना भय के उत्तर दिया कि जैसा तुमने हम्मीर देव के साथ किया वैसा मैं भी तुम्हारे साथ करूँगा। कवि ने कहा भी है—

नैवं[1] त्वं स्वेन हन्यादितिकुलचरितं कालमयो गृहीतो,
जीवन् म्लेच्छाधिपाग्रे सदसि पादतलं दर्शयंश्च प्रविष्टः।
कर्ता त्वं जीवितः किं मथि च तदुदितः प्रोक्तवान यह हम्मीरे,
कार्षीस्त्वं तेन साम्यं कलपति महिमा साहिना कोऽत्रवीरः॥

इस कथन से महिमासाहि की वीरता, निर्भीकता का, निश्छलता तथा भक्ति का दर्शन होता है।

अन्य पात्र

अन्य पुरुष पात्रों में उल्लूगखान, निसुरत खान, जैत्रसिह और वीरमदेव इत्यादि की गणना होती है। उल्लूगखान दिल्ली के राजा अल्लावदीन का अनुज तथा सेनानायक है। निसुरत खान भी शकेन्द्र अल्लावदीन का भाई

---

1. हम्मीर महाकाव्य—14/20

है। स्वभाव से बहादुर जैत्र सिंह वीर शिरोमणि हम्मीर सिंह के पिता हैं। इस महाकाव्य में इन चरित्रों के विकास में लगता है कवि ने कथानक वृद्धि के भय से भली प्रकार ध्यान नहीं दिया।

स्त्री पात्रों में हम्मीर देव की पुत्री **देवल देवी** का चरित्र अति संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है फिर भी उसका महत्व अत्यधिक है। अपने पिता और म्रातृ भूमि के कल्याण के[1] लिए न चाहते हुए भी वह दिल्ली पति के आदेश का पालन करने को उत्सुक है किन्तु स्वाभिमानी, वीरों में अग्रणी अपने पिता **हम्मीर देव** की आज्ञा को शिरोधार्य करके ऐसा नही करती। वह भी अपनी माता तथा अन्य राजरानियों केसाथ अग्नि की चिता मे प्रवेश[2] कर गई। अग्नि में प्रवेश करने से पूर्व उसके पिता हम्मीर देव दोनों भुजाओं से पुत्री का आलिङ्गन करके बोले कि अगले जन्म मे भी यदि पुत्री हो तो तुम जैसी ही हो जैसे गौरी के पिता परम उन्नति को प्राप्त हुए।[3]

महाकवि ने पिता और पुत्री के पारस्परिक निर्मह स्नेह का तथा कुल गौरव की रक्षा में स्नेह की मूर्ति बालिका के बलिदान का अतीव उज्ज्वल हृदयहारी चित्रण किया है इसमें कोई सन्देह नही।

यद्यपि आरंग देवी इत्यादि राजरानियो ने राजा और मातृभूमि के कल्याण की भावना से पुत्री देवल्लदेवी को दिल्ली भेजने के लिए यत्न करने लगीं परन्तु अन्त में स्वामी की आज्ञा प्राप्त करके शीघ्र ही सहर्ष दिव्य

---

1 हम्मीर महाकाव्य—13/107-114

2 हम्मीर महाकाव्य—13/185

3 पुत्री देवल्लदेवी च दोर्भ्याझलि निर्भरम्।
नितरा निःश्वसन् क्रन्दन कर्ष्टन महता जतौ।।
ऊचे च चेद् भवेत् पुत्री भूयात् तर्हि भवादृशी।
परां कोटि यया नायि गौर्येव जनको निजः।।

हम्मीर महाकाव्य—13/182-183

आभूषणो को धारण करके अग्नि में प्रविष्ट हो गई। अति संक्षेप में चित्रित किया गया उनका चित्रण भी बलपूर्वक हृदयों को आकर्षित कर लेता है।

इस प्रकार अनेक प्रवृत्तियों से युक्त पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी कविवर '**नयचन्द्र**' ने महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त किया है। इसकी लेखनी-तूलिका द्वारा लघु पात्रों का भी चरित्र रेखा अतीव स्पष्ट रूप से तथा कलात्मक रीति से खींची गई है। स्वामिभक्त वीर **महिमाशाही अन्ध धर्मसिंह** गणिका **धारा** अपने मित्र का द्रोही **रतिपाल, खड्ग ग्राही भोज** विलासप्रिय **हरिराज येसब नयचन्द्र** की लेखनी से प्राणवान हो गये हैं। जहाँ पर महाकवि ने महाकाव्य के नायक **हम्मीर देव** के गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किया है वहीं उनके दोषों को भी प्रदर्शित किया है। कोष की अधिकता से, प्रजाओं से अनुचित कर ग्रहण करने से राज्य मे बढ़े हुए आक्रोश के कारण तथा पारस्परिक वैर के कारण वीरवर हम्मीर का राज्य विनष्ट हो गया।

उन दुर्गुणों के प्रदर्शन से कवि ने संकेत दिया है कि सुयोग्य जननायक राजा द्वारा यथाशक्ति ऐसे दोषों का परित्याग किया जाना चाहिए। आदर्श राजा को महिमासाहि सदृश स्वामिभक्त विश्वसनीय का सदा सम्मान करना चाहिए एवम् रतिपाल जाहड सदृश कृतघ्नों की अच्छी तरह परीक्षा करके ही राज्य के उच्च पदों पर रखना चाहिए। विश्वसनीय अधिकारियो के भी कार्य समय-समय पर स्वयं देखना चाहिए एवं समीक्षा करनी चाहिए। अन्यथा महाबलवान गुणवान तथा मातृभूमि भक्त राजा के भी साम्राज्य का विनाश रोका नहीं जा सकता।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि कविवर नयचन्द्र न केवल महान चरित्रवाले राजाओं के चरित्र-चित्रण में ही निपुण हैं प्रत्युत सामान्य सैनिकों '**धारा**' जैसी नर्तकियों के चरित्रांकन में विलक्षण

कलाकार भी हैं। उन्होंने अपने विलक्षण प्रतिभा से पुरुषों के चरित्र-चित्रण मे जिस प्रकार सफलता प्राप्त किया उसी प्रकार स्त्रियो के **देवल देवी, कर्पूर देवी,** सदृश वीरांगनाओं के महत्वपूर्ण विशेषताओं के प्रदर्शन में भी निश्चय ही प्रशंसनीय कार्य किया। इस कार्य में कविवर ने जिस प्रकार सफलता प्राप्त किया है इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

सामाजिक चित्रण

किसी भी कवि में तत्कालीन समाज का प्रभाव अवश्य होता है। वह जो कुछ भी लिखता है उसमें उस समय का समाज स्वयमेव प्रतिबिम्बित होता है। अतः **हम्मीर महाकाव्य** में भी उस समय के समाज का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

राजकुलों में राज्य के प्रति लालच

राज्य निश्चय ही राजाओं का सब कुछ होता है। इसी कारण से राज्य के लिए बाल्यकाल से राजकुमार आदि प्रयत्न करते हैं, झगड़ा करते हैं तथा युद्ध करते हैं। कूटनीतिज्ञ राजा लोग प्रबल शत्रु को दुर्बल बनाने के लिए उनके विश्वस्त लोगों में परस्पर भेद पैदा करते हैं। भेद पैदा करने के लिए अनेक प्रकार का लोभ दिखलाते हैं। शकराज अल्लाउद्दीन के द्वारा हम्मीर को पराजित करने के लिए जब दूसरे यत्न विफल हो गये तब अल्लाउदीन ने हम्मीर के विश्वस्त जनों में भेद उत्पन्न करने के लिए सोचा। उसने गुप्तचरों के द्वारा पता लगाया कि **हम्मीर** का विश्वासपात्र **रतिपाल** इस समय कुछ असन्तुष्ट है। इसी कारण से **अल्लाउद्दीन** ने शत्रु पक्ष के रतिपाल के मन में राज्य का लोभ उत्पन्न कर उसको अपने वश में ले लिया।

इस भेद नीति से वह हम्मीर को पराजित करने में समर्थ हो गया।[1]

योग प्रथा

हिन्दू राजाओं में यज्ञ सम्पादन की परम्परा चिर काल से सुनी जाती है। हम्मीरदेव भी दिग्विजय करके जब अपने साम्राज्य में लौटते हैं तब पुरोहित के कहने से 'कोटि होमयाग' करते हैं तथा तीन शुद्धि का व्रत भी करते हैं।[2] इससे ज्ञात होता है कि उस समय भी राजाओं में यज्ञ परम्परा प्रचलित थी।

दैवाज्ञा का समाज में स्थान

हम्मीरदेव के समय में ज्योतिषियों का महत्वपूर्ण स्थान है। केवल साधारण लोग ही नहीं अपितु राजागण भी उनका आदर करते थे। उनके द्वारा बताये गये शुभ मुहूर्त में ही मंगल कार्य किये जाते थे।

शुभ लग्न में श्रद्धा भावना

उस समय मुहूर्त तथा शुभ लग्न में लोगो की बड़ी श्रद्धा थी। ऐसा महाकाव्य के पढ़ने से पता चलता है।[3] सुप्रसिद्ध राजा **पृथ्वीराज** शुभ लग्न तथा **शुभ योग** में ही विजय की इच्छा से युद्ध के लिए प्रस्थान करते थे। **कविवर नयचन्द्र** ने कहा भी है—

ततस्तश्री शुभकारि सर्वग्रहे विलग्ने विजये च योगे।[4]
चचाल चंचत्प्रतिपन्थिमाथ चिकीषर्याव्याकुल चिन्तवृत्तिः।।

इसी प्रकार से स्वयं वीर हम्मीरदेव ने भी शत्रुओं को जीतने के लिए

---

1 हम्मीर महाकाव्य—तेरहवां सर्ग—69-89 श्लोक तक

2. हम्मीर महाकाव्य—9/77-89

3. हम्मीर महाकाव्य—3/16

4 हम्मीर महाकाव्य—9/2

शुभ लग्न तथा सिद्धि देने वाले मुहूर्त में प्रस्थान किया। कहा भी है—

ततो देवड़ा विज्ञातलग्ने लग्नेद्धरुग्ग्रहे।
वन्द्यामिर्गोमवृद्धा मिः कृतयात्रिक मंगलः।।

इतना ही नहीं स्वयं हम्मीर देव का राज्याभिषेक का शुभ कार्य भी पूर्ण रूप से पुरोहितों एवं ज्योतिषियों के परामर्श के अनुसार ही सुनिश्चित शुभ लग्न और मुहूर्त में सम्पन्न हुआ था।

ततश्च सर्वन्नववहिन वह्नि मूहायने। वि0 सं0 1391 माघ, कृष्ण पक्षमे
पौष्यां तिथौ हेलिदिने सुपुष्ये देवज्ञ निर्दिष्ट वले लिलग्ने।।
पुरा पुरोधास्तदनु क्षितीदुर्मूपास्ततोऽन्ये सचिवास्ततश्चट।
ततो महेम्यस्तदनु प्रजाश्च तस्याभिषेकं रचयांवभूव।।[1]

उस समय भी कार्य की सिद्धि के लिए और मंगल के लिए दूव और अक्षत प्रक्षेपण किया जाता था। यही कारण है कि हम्मीर के दिग्विजय यात्रा के पुण्य अवसर पर पुरवासिनी स्त्रियों द्वारा अक्षत और दुर्वादल फेंके गये।[2]

कपट नीति

उस समय की राजनीति में भी कपटपूर्ण व्यवहार का दर्शन होता है। यवन शासक सहाबदीन अल्लाउदीन आदि उचित तथा अनुचित का विचार किये बगैर जिस किसी उपाय से शत्रु के विनाश के लिए यत्न करते थे तथा अपने साम्राज्य के वृद्धि की इच्छा करते थे। यवन शासक कपट प्रधान राजनीति का सहारा लेकर उस समय सदा शत्रुओं को पराजित करने की इच्छा करते तथा उनके लिए वैसा ही आचरण करते थे। इसीलिए निसुरत

---

1. हम्मीर महाकाव्य—8/56-57
2. हम्मीर महाकाव्य—9/2

खान तथा उल्लूग खान हम्मीर के साथ सन्धि वार्ता आरम्भ करके राजपुत्रों के ठगने में सफल हो गये। अपनी सेना को पर्वत की घाटी में सुरक्षित रख कर युद्ध की प्रतीक्षा[1] करने लगते हैं।

राजपुत्रों का स्वभाव

राजपुत्र बहादुर तो अवश्य है किन्तु स्वभाव से सरल राजनीति के कपट पूर्ण व्यवहार से अनभिज्ञ दिखलाई पड़ते हैं। धर्म की रक्षा के लिए अपना उत्सर्ग राजपुत्रों के जीवन का चर्म लक्ष्य होता है। इसीलिए वे प्रसन्नता पूर्वक एक मंगलदायी मृत्यु की प्रतीक्षा करते हैं। राजपुत्रों का यह धर्म क्षत्रिय धर्म होता है। क्षत्रिय का सदा स्वाभिमान के साथ माता तथा मातृभूमि एवं शरणागत की रक्षा के लिए मुख्य रूप से जीवित रहते हैं। क्षत्रिय हमेशा अपने प्राणों को हथेली पर रखकर दुराचारियों को दण्डित करते हैं। हम्मीर देव भी अल्लावदीन के साथ भीषण युद्ध करके इसी परम उत्कृष्ट इच्छा को पूरा किया।

मनोरञ्जन प्रियता

जबकि साधारण व्यक्ति भी मनोरञ्जन प्रिय होता है तो सम्पूर्ण साधनो से सम्पनन राजा गण क्यों नहीं प्रवृत्त होंगे। हम्मीर देव की सभा का मनोरजन करने के लिए राज्य की मुख्य नर्तकी धारा देवी के नृत्य का आयोजन विजय को लक्ष्य करके किले के बीच में **रणस्तम्भपुर** में किया जाता है। **वीणा, वंशी** और **मृदंग** आदि बाजे कुशल कला प्रेमियो के संगीत के साथ **धारा देवी** अपने अद्‌भुत नृत्य कला द्वारा सभा के मनोरंजन में सफल होती थी।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—11/9-103

नारियों की वेशभूषा

उस समय स्त्रियाँ कानों में कुण्डल[1], पैरों में पायजेब[2] और मध्य भाग मे कर्धनी[3] धारण करती थीं। स्त्रियाँ अपने बालों को सुशोभित करने के लिए कवरी[4] का भी प्रयोग करती थी।

पुरुषों की वेशभूषा

पुरुषों के वेशभूषा के विषय में विविधता दिखलाई पड़ती है। वे उस समय सिर पर पगड़ी धारण करते थे।[5] वे घुटनों तक लम्बे वस्त्र भी पहनते थे जो चीवर[6] नाम से प्रसिद्ध था।

मनोरंजन के साधन

पुरुषों के मनोरञ्जन का मुख्य साधन शिकार था। लोग विभिन्न यन्त्रों के बजाने में निपुण थे। उन बाजों में मृदङ्ग,[7] भेरी[8], परह[9], वीणा[10] तथा वंशी आदि मुख्य थे।

जाति

यद्यपि हम्मीर महाकाव्य में वर्ण व्यवस्था के विषय मे अथवा जाति के

---

1 हम्मीर महाकाव्य—6/4
2. हम्मीर महाकाव्य—6/33, 41, 13/80
3. हम्मीर महाकाव्य—13/81
4. हम्मीर महाकाव्य—13/81
5. हम्मीर महाकाव्य—3/33
6 हम्मीर महाकाव्य—4/49
7 हम्मीर महाकाव्य—3/59, 8/7, 11/43
8 हम्मीर महाकाव्य—3/59
9 हम्मीर महाकाव्य—3/59
10 हम्मीर महाकाव्य—13/13

विषय में विशेष उल्लेख नहीं मिलता तो भी लोग अपने कार्य के साथ विविध जातियों के साथ सम्बद्ध थे।

समाज में स्त्रियों की स्थिति

उस समय भारत में विदेशियों का आक्रमण प्रायः होता रहता था। इसीलिए स्त्रियों की स्थिति विषम ही थी। वे अपने सम्मान की रक्षा में आत्मदाह के लिए भी तत्पर रहती थी। उस समय अग्निदाह की प्रथा थी। सती प्रथा प्रचलित थी। अग्नि में न केवल प्रौढ़ स्त्रियाँ ही नहीं बालिका तथा राजकुमारियाँ भी अपने सम्मान की रक्षा के लिए शत्रुओं के हाथ मे जाने की अपेक्षा अग्नि में जलकर मरना श्रेष्ठ मानती थी। **रणस्तम्भपुर** का विनाश अति समीप देख कर अपने स्वामी **हम्मीर देव** के आदेश का पालन करती हुई **आरङ्गदेवी** आदि मुख्य राजरानियाँ[1] तथा कुमारी **देवल्लदेवी** सभी रानियाँ अग्नि में कूद पड़ीं।[2]

शिक्षा

समाज के उच्च वर्ग में बाल्यकाल से ही शास्त्रो के अध्ययन तथा प्रशिक्षण की परम्परा प्रचलित थी। उस समय योग शास्त्रका भी अभ्यास किया जाता था। कहा जाता है कि राजा सोमेश्वर ने योग द्वारा ही शरीर त्याग दिया था। यह सत्य है कि इस प्रकार का अभ्यास शारीरिक कष्टों को सहने योग्य बना देता है। मृतक केसम्बन्धी पुत्र तथा पौत्र उसके अन्त्येष्टि काल में उत्सव का आयोजन करते थे। राजा पृथ्वीराज शस्त्रों एवं शास्त्रों में निपुण थे।[3] हम्मीरदेव भी थोड़े से ही दिनो में सभी शस्त्रो और शास्त्रों के

---

1 हम्मीर महाकाव्य—13/173

2. हम्मीर महाकाव्य—13/174-185

3 हम्मीर महाकाव्य—2/77

रहस्यों को अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा जान लिया था।[1]

राजनीतिक स्थिति

राजा का पद वंश परम्परा के अनुसार होता था। पिता की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र राज्य सिंहासन का अधिकारी होता था। यदि संयोगवश किसी राजा के पुत्र नहीं होता था तब उसके राज्य का अधिकारी उसका दत्तक पुत्र होता था। सामान्य रूप से राजपुत्र राजाओं का शासक पद पर नियुक्ति होती थी। हम्मीर महाकाव्य के अध्ययन करने से मालूम होता हैकि उस समय हम्मीर केसमान जो राजा किन्हीं नगरों के शासक थे वे सभी दिल्ली के शासक प्रधान राजा को कर दिया करते थे। स्वयम् हमईर के पिता श्री जैत्रसिह भी अल्लावदीन को कर देते थे ऐसा उनके कथन से स्पष्ट होता है—

रणस्तम्भपुराधीशो जैत्र सिंहोऽभवत् पुरा।
प्रददौ सः सदा दण्डं मम चण्डौ जसो भयात्।।
हम्मीर नाम तत् सूनुरघुना खर्वगर्ववान्।
दण्डं दूरत एवास्तु न वाक्यमपि यच्छति।।[2]

सेना को अच्छी तरह प्रशिक्षित करते थे। उस समय सेना चार भागों मेंबंटी थी। पैदल सेना, अश्व सेना, रथ सेना तथा निषादी। सेना का मुखिया सेनापति कहा जाता था।

इस समय वाक्य से यह घोषणा पूर्वक कहा जा सकता है कि वीर हम्मीर ही इतना प्रतापी राजा था जो बड़ी सेना वाले भी शकराज अल्लावदीन को कर नहीं देता था। यह ही उसके साहस और वीरता का अपूर्व उदाहरण

1 हम्मीर महाकाव्य—4/150-151

2. हम्मीर महाकाव्य—9/102-103

है।

सेना के अस्त्र-शस्त्र

उस काल में युद्ध में राजा तथा उसके सैनिक विविध प्रकार के शस्त्रो का प्रयोग किया करते थे। सेना में प्रचलित शस्त्रों में निम्नलिखित थे—धनुष[1], दण्ड[2], निषङ्ग, गोला, टैंक, गोली[3], तरकस, मुकदर, डण्डा, तलवार[4] बन्दूक[5], भाला[6] , टिंकुलि[7], पंचटेक, नालीक वाण तथा गोलकास्त्र[8] आदि। आक्रमण के समय शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए रास्ते में खाई भी खोदी जाती थी। बहुत ऊंचे-ऊँचे किले भी जला[9] दिये जाते थे। इस प्रकार इस महाकाव्य के पढ़ने से उस समय के समाज की विविध परिस्थितियों का अच्छी प्रकार ज्ञान होता था।

---

1 हम्मीर महाकाव्य—3/24

2 हम्मीर महाकाव्य—4/118

3 हम्मीर महाकाव्य—5/20

4 केचित्कृपाणांलगुडाश्च केचिच्चापान् परे केचन् मुदगराश्च।
आक्रम्यमाणा नृपवीरवारैस्तदा शकेन्द्रा जुगृहुर्जयेन।।

हम्मीर महाकाव्य—10/43

5. हम्मीर महाकाव्य—11/80

6. हम्मीर महाकाव्य—11/87

7. हम्मीर महाकाव्य—11/89

8 हम्मीर महाकाव्य—11/100

9 हम्मीर महाकाव्य—10/41

अष्टम अध्याय

प्रकृति चित्रण

प्रकृति चित्रण

प्रकृति कोई दैवी विभूति होती है। इसका सौन्दर्य नवनवोन्मेषशालिनी होती है। मनुष्य सबसे पहले जब नेत्रों को खोलता है तो उसके चारों तरफ प्रकृति का वृहद् साम्राज्य ही दृष्टिगोचर होता है। वह मानव शैशव काल से ही उसी के गोद में खेलता हुआ यौवन सुख का अनुभव करता है तथा अन्त मे उसी में ही चिर निद्रा को प्राप्त हो जाता है। प्रकृति मनुष्य की शिक्षिका और सहचरी भी है। कवि भी बाल्यकाल से ही उसके गोद मे खेलता है, बड़ा होता है तथा अनेक प्रकार के सुखो का अनुभव करता है। इसीलिए उसका प्रकृति के प्रति पक्षपात स्वाभाविक ही है। आदि कवि **वाल्मीकि** से लेकर आज तक जितने भी कवि तथा महाकवि हुए हैं उन सभी ने भी अपनी-अपनी रचनाओं में प्रकृति के लिए महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

कवियों ने अपनी प्रतिभा द्वारा प्रकृति का वर्णन अनेक प्रकार से किया है। वह कभी तो मानवी रूप में उसे देखता है और कभी विराट पुरुष के रूप मे प्रकृति प्रगट होती है। प्रकृति प्रेम को छोड़ कर कवि द्वारा किया गया सारा वर्णन नीरस मालूम पड़ता है। इसीलिए प्रायः सभी काव्यों में प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण दिखलायी पडता है। प्रस्तुत महाकाव्य मे भी शास्त्रीय परम्परा का आश्रय लेकर प्रकृति के अनेक प्रकार का सौन्दर्य वर्णन प्राप्त होता है।

ऋतुओं का वर्णन भी प्रकृति का ही एक सुन्दर स्वरूप होता है। **हम्मीर महाकाव्य** में वसन्त ऋतु[1] तथा वर्षा ऋतु वर्णन विस्तार से मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रकृति के अन्य मनोहर दृश्यों का प्रभात, सन्ध्या, सूर्यास्त,

---

1. हम्मीर महाकाव्य—पंचम व द्वादश सर्ग

चन्द्रोदय, रात्रि, नदी पर्वतादि को स्वाभाविक तथा हृदयाकर्षक चित्रण दिखलायी पड़ता है।

वसन्त वर्णन

इस महाकाव्य के पाँचवें सर्ग में **कविवर नयचन्द्र** ने ऋतुराज वसन्त का अनेक प्रकार से सुन्दर वर्णन उपस्थित किया है। महाराज **जैत्र सिंह** के आश्रित राजाओं द्वारा स्वर्ग के समान धरती के सज जाने पर तीन लोक पर विजय प्राप्त करने वाले कामदेव का मित्र वसन्त सब जगह जम्हाई ले रहा था।

अथ जैत्रसिंह नृपतौ धरणिं करणिं दिवः श्रितहरेः सृजति।
उदज्रम्मत प्रिय सुहृत्सुरभिः सुमसामकस्य किल विश्व जितः।।[1]

वसन्त काल[2] में मलयाचल से बहने वाली हवा सभी स्त्रियो के श्वासों को पुष्टी से भर देता है। यदि ऐसा नहीं तो कैसे उसके अन्दर वियोगि जनों को मूर्च्छित करने का सामर्थ आ गया। सूर्य उत्तरायण किस कारण से चला गया इस विषय में कवि ने उत्प्रेक्षा अलङ्कार में कहा है कि ठंड से सूख रहे पत्तो वाली कमलनी को देखकर उसके प्रिय सूर्य मानो ठंड को दूर करने के लिए पर्वत के उत्तर भाग में चला गया। अन्य भी पति पत्नी के दुःख दूर करने के लिए संसार में प्रयत्न करता ही है—

अमुना विवर्णित दलाममितो नलिनीं विलोक्य नलनी दयितः
कुपितः प्रहिंसितु मिवैष हिमोच्चम्यगाद्धिमवतो ककुयम्।।[3]

कोयल ने आम्र तत्व से सुशोभित मञ्जरी कासेवन करके पञ्च स्वर में

---

1. हम्मीर महाकाव्य—5/1
2. हम्मीर महाकाव्य—5/2
3 हम्मीर महाकाव्य—5/7

निपुणता प्राप्त कर लिया। इसीलिए उसने बड़ी सरलता से अपने मधुर स्वर से सम्पूर्ण संसार को कामदेव के हाथ में दे दिया।

सहकार सारतर मंजरिकाग्र सनोल्लासन्नधुरिमां चितया।
परपुष्टया कुसुमकाण्ड करेऽरचि लीलयाप्यखिलनेव जगत॥[1]

अत्यधिक मकरन्द पान करने से शिथिल पड़े भंवरे बन्दूक का अभ्यास करते हुए कामदेव के गोली केसमान पेड़ों पर प्रति वन में सुशोभित होने लगे—

मधुपानतः शिथिलितभ्रमरा भ्रमिरा वमुः प्रति वनं तरुषु।
गुलिकास्त्रकाम्यासनमुन्नयतो गुलिका इव प्रसव चाप विमोः॥[2]

वसन्त काल अत्यधिक उद्दीपक होता है। अतः कोई सखि नायिका से कहती है कि हे सखि यहाँ से वन की ओर चलो वहाँ जाकर हम देखेंगे कि तुम्हारा प्रियतम क्या कर रहा है। इसी बहाने से उसने नायिका को प्रियतम के हवाले कर दिया—

प्रचलालि काननमितः कितनो विरहात् तवांग, स किमातनुते।
प्रविलोकयाव इति कापि मिषादुपनीय तां प्रियतमाय ददौ॥[3]

प्रियतमा को मनाने के लिए उसके पैरो पर गिरे हुए किसी नायक के लिए नायिका की लटकती हुई वेणी तलवार की तरह सुशोभित हुई—

अनुनेत मम्ब जदृशः पादयोः पतिवस्य कस्यचन वेणीरामात्।
इदमीयमानममिपाटयितुं कुसुमायुधस्य तरवारिरिव॥[4]

वसन्त काल में सब जगह कामदेव का साम्राज्य होता है। जब यह

---

1 हम्मीर महाकाव्य—5/10
2. हम्मीर महाकाव्य—5/20
3 हम्मीर महाकाव्य—5/45
4 हम्मीर महाकाव्य—5/46

लताओं और वृक्षों को अत्यधिक प्रभावित कर देता है तो अनेक लौकिक विकारों से युक्त मनुष्यों के विषय में क्या कहना? वसन्त काल में नायक और नायिकाओं के हास परिहास का ढंग भी अद्वितीय होता है—

अपि पश्यतोऽपि कुसुमस्तवकः क्व गतो ममेति कितवोक्त परः।
करसाद विधाय दयितोरसिजं निजगाद् लब्धमिति कोऽपि हसन।।[1]

एक हाथ से प्रियतमा के झुके हुए जड़ शरीर को तथा दूसरे हाथ से कमलनी को पकड़े हुए नायक ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो धनुष बाण लिए हुए साक्षात् कामदेव ही हो—

जड़ गत्र वर्तन पराङ् नमितां दधदेक बाहुलतया दयिताम्।
नलिनं करेण च परेण परः शुशुमे स्मरः सशर चाप इव।।[2]

श्रृंगार सभी प्राणियों को अपने वश में कर लेता है नायक और नायिकाओं के बीच में कैसी-कैसी वाक्युक्ति प्रकाशित करता है इस विषय में यह पद्य अवश्य देखने योग्य है—

शाखाग्रस्थमिदं ददाति कुसुमं चेत् तर्हि यद्याच से,
तत् तेऽहं प्रददे प्रिय ध्रुवमिति प्रोक्तेऽन्यया मुग्धया।
नीत्वा लग्नकतां तदालिमचिरात् दत्वा च पुष्पं छला,
दासीत् यत् हृदये द्वयोरपि तयोधूर्त्तैन तत्प्रस्तुतम्।।[3]

कामदेव भी कोई विशिष्ट राजा है। सुन्दर नेत्रों वाली स्त्रियाँ उसके अपूर्व सैनिक हैं। इस प्रकार सहृदय शिरोमणि कवि नयचन्द्र ने स्वाभाविक और मधुर कल्पना इस पद्य में की है—

---

1. हम्मीर महाकाव्य—5/59
2. हम्मीर महाकाव्य—5/70
3. हम्मीर महाकाव्य—5/72

प्रसवचोलवसंतक कंकण,

स्तवकराजिविराजित विग्रहाः

शुशुमिरे सुदृशो घृत्कण्टका इव भटाः कुसुमापु धमूपतेः।[1]

इस प्रकार वसन्त ऋतु के वर्णन में कवि ने वन शोभा के विविध पक्षों के चित्रण के साथ नाना प्रकार के मानव सुलभ भावनाओं को सरल और सरस वाणी में अत्यन्त सुन्दर पद्धति से सजीव चित्रण किया है। यह सब पढ़कर, सुनकर तथा अनुभव करके रसिक जन श्रृंगार सागर में निमग्न हो जाते हैं।

वर्षा ऋतु का वर्णन

कविवर नयचन्द्र अपनी विलक्षण प्रतिभा से **हम्मीर महाकाव्य**[2] के तेरहवें सर्ग में प्रसंग केअनुसार ही वर्षा ऋतु का वर्णन किया है। शकराज **अल्लावदीन** जब बहुत प्रयत्न करके भी **रणस्तम्भपुर** किले को जीतने में समर्थ नहीं हुआ तब वह दुःख ज्वाला से अत्यधिक पीड़ित होने लगा। इसी के बाद वर्षा काल आ गयी। मानो दील्लीश्वर के हृदय के आग को शान्त करने के लिए ही बड़ी तीव्रता से आकाश मे मेघ मण्डल उठने लगा।

दुर्गा ग्रहण दुःखाग्निप्लुष्टमस्याथ मानसम्।

प्रेसक्तुमिव पाथोदः प्रोन्ननाम् नमोऽङ्गने।।[3]

आकाश में उठे हुए मेघ को देखकर मयूर गला निकालकर बोलने लगे। मानो बहुत दिनों के बाद आये हुए मेघों से मिलने के लिए आवाजकर रहे हों—

---

1 हम्मीर महाकाव्य—5/75

2. हम्मीर महाकाव्य का सर्ग—13

3. हम्मीर महाकाव्य—13/51

वर्हिनो व्यदधन् केका उन्नीयोन्नीय कन्धराम्।[1]
अह्वयन्त इवाम्मोदं मिलितुं चिरमागतम्।।

समुद्र के साथ स्पर्धा करने के लिए स्थान-स्थान पर मानो मेघ ही जल भार के रूप में पृथ्वी पर गिरते हुए सुशोभित हो रहे हैं—

दधत्यम्बुनिधेः स्पर्धां सरांसीह रशजिरे।
त्रुटित्वा वारिमारेणाम्रणीव पतितान्यद्यः।।[2]

वर्षा काल में जब घर पर प्रियतम नहीं होते तब वियोगिनी नायिकाओं को बहुत कष्ट होता है। इसीलिए वे आँसू बहाती हैं। एक तरफ वे नायिकाएं रोकर आंसू छोड़ती हैं तो दूसरी तरफ मानो उनसे स्पर्धा करने के लिए मेघ अच्छी प्रकार जल वर्षा करते हैं—

वियोगिनीनां नेत्राणि व्योम्न्यम्रपटलानि च।
मिथः स्पर्धां दघन्तीव वर्षन्ति स्माधिकाधिकम्।।[3]

बादल द्वारा सीधी हुई भूमि, कान्त और कान्ताओं द्वारा भोगी गई रमणी की तरह सुशोभित होती है। उस समय सब जगह मेघकी गर्जना सुनाई पड़ती है मानो मेघ ग्रीष्म ऋतु को पराजित करके प्रसन्नतापूर्वक विजयोत्सव के रूप मे गर्जना कर रहा हो।

वारिदेन यदा सिक्तारराजे भूरि भूरियम्
कान्ता कान्तोप मुक्तायाच्छायाऽन्यैव मृगीदृशः।।
अम्मोधरस्य ग्रीष्मर्तु निचित्य विशतः सतः।
स्फूर्जद् जिच्छलात् प्रादुरासंस्तूर्यस्वना इव।।[4]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/52
2 हम्मीर महाकाव्य—13/54
3. हम्मीर महाकाव्य—13/57
4 हम्मीर महाकाव्य—13/60-61

जब मेघ अच्छी तरह वर्षता है तब बीच-बीच में बिजली भी चमकती है। इस विषय में कवि द्वारा की गई उत्प्रेक्षा अवश्य दर्शनीय है। कवि कल्पना करता है कि मानो बादल विद्युत प्रकाश द्वारा यह देखना चाहता है कि पृथ्वी का कौन भाग सींचा जा चुका है और अभी नहीं सीचा गया है।

अंगानि कानि सिक्तानि कानि सेच्यानि वा भुवः।
इति विद्युत प्रकाशेन ददर्शेव घनाघनः।।[1]

वर्षाकालीन हवा निश्चय ही लताओं को नृत्य कला सिखाने वाला निपुण आचार्य है।[2] नीचे बाग में पृथ्वी के कीचड़पर गिरती हुई जल धारा को देख कर यवन सैनिक युद्ध से भाग गये।

इलामधः कर्द मिलां धराश्चोणरिपातिनीः।[3]
विलोक्य यवनाः सेवाव्रते वैराग्यमासदन्।।

अधिक वर्षा के कारण दुःखी शकाधिप वर्षा काल को साक्षात् आया हुआ काल जानकर जिस किसी प्रकार सन्ति करना चाहा—

इत्यालोक्याम्बुमुत्कालं साक्षात् कालमिवागतम्।
तथाकथंचित् सन्धानमचिकीषच्छकाधिपाः।।[4]

जैसे-जैसे वीर हम्मीर केसैनिकों ने गर्जना आरम्भ किया वैसे-वैसे विधवा हुई शकराज की स्त्रियाँ भी तेजी से चिल्लाने लगी।

यथा-यथा जर्गजयं स्तनयित्रुस्तथा तथा
प्रियाः शकानां चक्रन्दुर्वाहु जैविधवीकृताः।।[5]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/62
2 हम्मीर महाकाव्य—13/62, 66
3. हम्मीर महाकाव्य—13/66
4. हम्मीर महाकाव्य—13/68
5. हम्मीर महाकाव्य—13/65

जल धाराओं के गिरने से अत्यन्त व्याकुल घोड़े भी रण भूमि को छोड़ने लगे, मत वाले हाथी भी दुबले हो गये, रथ भी कीचड़युक्त भूमि में फंस गये वन मक्षिकाएं भी यवनों को व्याकुल करने लगे।

अमुंचस्तुरगा रंगमगच्छन् कृशतां द्विपाः।
अभ्युवन स्यन्दना छात्रयां जनान् देशाउपद्रवान।।[1]

प्रभात वर्णन

हम्मीर महाकाव्य के आठवें सर्ग में कवि ने प्रथम पद्य सेलेकर पद्यों में प्रभात काल का अनेक नये-नये सुन्दर कल्पनाओं द्वारा वर्णन किया गया है। रात्रि के अन्त में शोभा रहित चन्द्रमुख वाली मलिन वस्त्र धारण किये हुए, कान्ति रहित तारों के साथ रजस्वला स्त्री के समान पश्चिम सागर में मानो स्नान करने के लिए जा रही है—

विच्छायमिन्दुं मुखमावहन्ती विनिम्नतारा कलुषाम्वरेषा।
विभावरी यति रजस्वलेव स्नातुं पयोधौ दिशि पश्चिमायाम्।।[2]

वहाँ पर नियुक्त नारियों के नेत्रपात रूपी उल्लकाओं से चमकते हुए आकाश को छोड़कर चन्द्रमा भी पचिम दिशा कोचला गया। धीरे-धीरे पूर्व दिशा में लाल आभा लिये हुए दिखलाई पड़ने लगा। उसको देख कर कवि कल्पना द्वारा कहता है कि स्वतन्त्रता का विनाशक सूर्य इस दिशा में उदित नहीं होता। इसी कारण क्रोध की वजहसे लाल-लाल नेत्रों वाली कुलटाओं द्वारा पूर्व दिशा लालिमा युक्त कर दी गई है—

स्वतन्त्र्यहन्ता न उदेति भास्वान स्यामिति क्रोधमरारुनिः
द्रष्ट्वे दृग्भिः कुलटाजनेन पुरन्दराशाऽरुणतां जगाम्।।[3]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/67
2. हम्मीर महाकाव्य—13/65
3. हम्मीर महाकाव्य—13/68

स्त्री और पुरुषों के रति क्रीड़ा में सारी रात जागने के लिए गृहों में मन्द-मन्द प्रकाशित दीप मानो प्रातः काल के समय घूर से रहे हों—

जायापतीनां रतकोंतुकेन रात्रिं समग्रामपिजागरित्वां।
घूर्णन्यत्मी विस्फुरित प्रमीला इव प्रदीपा रतमन्दिरेषु।।[1]

प्रातः काल पूर्व दिशा क्यों लालिमा को प्राप्त हो गई इस विषय में कवि की नवीन कल्पना अति हृदय हारी है—

अवाप यस्मामुदयं विहाय तां मामथासावपरां सिषेवे।
इत्यादधानेव रुषं हिमाशौ पुरन्दराशाऽरुणतां जगाम।।[2]

यह चन्द्रमा जिस दिशा में उदित हुआ उस पूर्व दिशा को मुझे छोड़ कर पश्चिम दिशा को ग्रहण कर लिया इसी ईर्ष्या तथा कोप के कारण मानो वह लाल हो गई। समुद्र के बीच में छाया रूप में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को देखकर कैसी सुन्दर तथा नवीन कल्पना की गई है यह निश्चय ही इस पद्य में दर्शनीय है—

अपि द्विजेशः श्रितवारुणीको ध्रुवं भवेन्नाच जडोपयोग्यः
इति प्रबोधं जगतां प्रयच्छन्नध्यास्त मध्यं जलधेः शशाङ्कः।।[3]

वारुणी दिशा का आश्रय लेकर द्विज राज चन्द्रमा संसार में यह वारुणी नीच जनों के उपयोग के लिए ही है ऐसा संसार को बतलाने के लिए समुद्र के बीच में डूब गया।

सूर्योदय के प्रति कवि की यह उत्प्रेक्षा अगले पद्य में ही अतीव हृदयहारी प्रतीत होती है—

---

1 हम्मीर महाकाव्य—8/6

2. हम्मीर महाकाव्य—8/18

3 हम्मीर महाकाव्य—8/15

समूलमुन्मूल्य तमः समूहं लोके प्रवेशं सृजते दिनस्य।
मांगल्य हेतो रवि बिम्बदम्भात् नीराजनामाचरतीव पूर्वा।।[1]

पूर्व दिशा सम्पूर्ण अन्धकार समूहको नष्ट करके संसार में प्रवेश करते हुए दिन के मंगलाचरण के लिए सूर्य बिम्ब के बहाने मानो आरती उतार रही हो।

सन्ध्या वर्णन

सन्ध्या समय होने पर सूर्य लाल रंग काहो जाता है, ऐसा लक्ष्य कर कवि कल्पना करता है कि संसार में पतंग (सूर्य) यह शलभ (टिड्डी) का भी नाम प्रसिद्ध है इसी से लगता है विद्वानों में अधिक क्रोध के कारण सूर्य लाल रंग का हो गया।

जगति नाम पतंग इति स्फुटं ममदघुस्तदयी शलभेषु किम्।
इति वहन्निव सूरिषु कोपिता ग्रहपुषोऽजनि लोहित विग्रहः।।[2]

प्रातः काल से लेकर सायंकाल तक सूर्य लगातार आकाश में घूमने से मानो थक गया अतएव अन्त में जल क्रीड़ा करने के लिए समुद्र में प्रविष्ट हो गया। प्रियतम सूर्य के नयन मार्ग से ओझल हो जाने पर मानो स्नेह वश दिन की शोभा पश्चिम दिशा रूप अग्नि में प्रविष्ट हो गई।[3]

सूर्य के शोचनीय अवस्था केप्राप्त हो जाने पर प्रविष्ट होते हुए भ्रमर समूहो के बहाने मानो कमलिनियों के हृदय में अपार शोक प्रविष्ट हो गया—

गलितमासि हृदेकतमप्रिये व्रजति भास्वति शोच्यदशान्तरम्।
विशदलिब्रजकैतवतोऽविशद्हृदि शोकतमः सरसीरुहाय।[4]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—8/29
2. हम्मीर महाकाव्य—7/3
3. हम्मीर महाकाव्य—7/4, 7
4. हम्मीर महाकाव्य—7/8

सूर्य के डूब जाने पर कमलनी संकुचित हो गई। उस विषय में कवि की रमणीय कल्पना देखने योग्य है—

सितगुरेषु कुरंगकलं कमाग् मलिनहृत् क्षजादाऽस्य वधूरपि।
तदिह ही किमवेक्ष्यत इत्यमूत् कमलिनी विनिमीलसरोहका।।[1]

सूर्यास्त वर्णन

भगवान सूर्य के अस्त हो जाने पर सुधा वर्षाने वाले चन्द्रमा का उदय होता है। सूर्यास्त को लक्ष्य करके कवि ने इस प्रकार कल्पना की हैकि रात्रि समय के आगमन की इच्छा वाली चंचल नेत्रो वाली स्त्रियों के मनोभाव को जानते हुए के समान मानो भगवान सूर्य अस्ताचल को चले गये—

अथ निशासमयागमलालसं चल दृशां प्रविदन्निव मानसम्।
चरममभूमिधराग्रिमचूलिकामहिमरश्मिरभूषयदशुभिः।।[2]

चकवा ने रात्रि के आगमन को देखकर चोच मे लिए हुए कमलनाल को प्रिया वियोग के भय से नहीं खाया इस विषय में कवि की अनुपम कल्पना देखने योग्य है—

निशि वियोगवतः पततः स्थिता विसलता चलचंचुपुटे वमौ।
असुगणं वनिता विरहात् विनिर्जिग मिषुं विनिरोद्धमिवार्गला।।[3]

चकवा के मुख में स्थित कमलनाल मानो प्रिया वियोग के कारण निकलने की इच्छा करने वाले प्राणों के लिए जंजीर है। यहाँ कवि की हृदयहारी वर्णन करने की पद्धति किस रसिक को प्रसन्न नहीं करती?

चन्द्रोदय वर्णन

उदय के समय चन्द्रमा में जो लालिमा दिखलाई पड़ती है उस विषय

1. हम्मीर महाकाव्य—7/10
2. हम्मीर महाकाव्य—7/1
3 हम्मीर महाकाव्य—7/13

पर कवि उत्प्रेक्षाअलंकार द्वारा कहताहै। प्रतिदिन मेरे द्वारा प्रकाश बिखेरते रहने पर भी यह अन्धकार कहाँ से बार-बार मेरे सामने आ रहा है यह विचार करते हुए अत्यधिक क्रोध से भरकर मानो चन्द्रमा अपने सम्पूर्ण शरीर में लालिमा धारण करने उदय हो रहा है—

भृशमपि क्षिपति प्रतिवासरंमपि मुहुर्मुहेति तमः कुतः।
इति रुषेव वहन्नतिलोहितं वपुरगादुदयं रजनीकरः।।[1]

चन्द्रमा अन्धकार को तुरन्त दूर करने के लिए उत्सुक होकर भी जो धीरे-धीरे उदित हुआ तो मानो चन्द्रमा में स्थित भृंग इन्द्राणी द्वारा दिये गये घासो को खाने में तत्पर हो गया इसी कारण से चन्द्रमा का उदय धीरे-धीरे हुआ—

शमयितुं तिमिराणि यदुत्सको ध्यमृतसूरिदियाय शनैः-शनैः।
तदिमंकमृगो मघवप्रिया पिततृणग्रसने खलु लुब्धवान।।[2]

अथवा ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव ने अपने बाण से संसार का भेदन किया उससे उत्पन्न रक्त से मानो चन्द्र मण्डल लाल हो गया।

भुवन भेदन सम्मवशोणितो
पचितमन्मथ मार्गणि घर्षणैः।
अरुणतामिव यच्छशिमण्डलम्
श्रियमदाद् गगनस्य निजस्य च।।[3]

निशा वर्णन

विश्व के प्रायः सभी भाषाओं के साहित्य में रात्रिसुन्दरी नायिका के रूप में और चन्द्रमा उसके नायक के रूप में वर्णित है। इस प्रकार इन दोनों का

1. हम्मीर महाकाव्य—7/19
2 हम्मीर महाकाव्य—7/20
3. हम्मीर महाकाव्य—7/21

मानवीय वर्णन करके प्रकृति केस्वाभाविक और कमनीय पक्षों को महाकवियों ने प्रस्तुत किया है। संस्कृत साहित्य में ऐसे वर्णनों की बहुलता है। कविवर **नयचन्द्र** ने भी अपने महाकाव्य में रात्रि और चन्द्रमा का ऐसा ही चित्रण सरस वाणी में किया है—

हिमकरं दयितं मिलितुं निशा विवसितादभुत भूषणया दधे।
अविरलोदित तारक पेटकच्छलमयी नवमौक्तिक जालिका।।[1]

सुन्दरी रात्रि अपने प्रिय पति चन्द्रमा से मिलने के लिए अनेक अद्‌भुत आभूषणों को धारण किया

बहुत समय के बाद चन्द्रमा ने जिस निर्दयता से निशा का आलिंगन किया जिससे तारों की हार लता टूट गई। इसी कारण आकाश में तारे इधर-उधर गिरे हुए दिखलाई पड़ते हैं। आकाश में चमकते हुए तारों के विषय में कवि द्वारा की गई यह कल्पना निश्चय ही अति सुन्दर है—

चिरमवन्मिलनाद्बुप गूहनम्
द्विजपतावदयं ददति श्रियः।
भुटति तारलता स्म समुत्पतद्
विविध मौक्तिक तारकिताम्बदा।।[2]

पृथ्वीराज अपने पिता द्वारा दिये गये राज्य को प्राप्त करके वैसे ही अत्यधिक सुशोभित हुए जिस प्रकार प्रातःकाल सूर्य द्वारा दिये गये प्रकाश को प्राप्त कर उदयाचल पर्वत अति सुशोभित होता है। इस अग्रिम पद्य में कवि द्वारा प्रकृति के साथ उपमान और उपमेय का प्रयोग किस रसिक का मन नहीं हर लेता—

---

1 हम्मीर महाकाव्य—7/25

2 हम्मीर महाकाव्य—7/26

पित्रा प्रदत्तं समवाप्यकाले राज्यं समूमृन्नितरां चकासे।

अर्हमुखे हर्पतिनोहदयादिर्यथा तमो व्रति विनाशि रोचिः॥[1]

नारी सौन्दर्य वर्णन

कवि स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रिय होता है। वह कभी असुन्दर में भी सुन्दर पदार्थ की कल्पना अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कवि कर लेता है तो स्वाभाविक सौन्दर्य का वर्णन तो अवर्णनीय ही है।

जिस प्रकार दूसरे काव्यों में अधिकता से स्त्रियों के सौन्दर्य वर्णन में ही कवियों की रुचि दिखलाई पड़ती है वैसे ही इस महाकाव्य में भी यथावसर वर्णन देखने में आता है। स्त्रियों में आन्तरिक एवं वाह्य दोनो प्रकार का सौन्दर्य दिखलाई पड़ता है। आन्तरिक सौन्दर्य में सदाचार सज्जनता आदि गिने जाते हैं शारीरिक सौन्दर्य की गणना वाह्य सौन्दर्य में की जाती है। यह महाकाव्य वीर रसप्रधान है। इसलिए यहाँ स्त्रियों के विषय में विस्तार से वर्णन उपलब्ध नहीं होता। फिर भी जहाँ तहाँ स्त्रियों का वर्णन कवि ने किया है वहसब निश्चय ही अत्यधिक कमनीय तथा स्मरणीय है।

नारी सौन्दर्य में कवि ने नर्तकी **धारा देवी** के सौन्दर्य वर्णन में अधिक रुचि दिखलाई है। धारा देवी के नृत्य से हाथ ऐसे हिलते थे जैसे काम रूपी लता के पल्लव रूपी हाथ हिल रहे हो।

तस्या लास्येन वेल्लन्तो रेजिरे पाणि पल्लवाः।

मोहन व्रततेः कामं स्फुरन्तः पल्लवा इव॥[2]

कपूर के परमाणु के बहाने उसके पैरों में लगे युवा पुरुषों के मनो को

---

1. हम्मीर महाकाव्य—2/78
2. हम्मीर महाकाव्य—13/18

नर्तकी धारा देवी मानो नचाती हुई सुशोभित हो रही थी। कर्णाभूषण में घूमते हुए चक्र के बहाने मानो चन्द्रमा नर्तकी **धारा देवी** से कह रहा है कि हे सुन्दरी, विद्वान लोग जो तुम्हारे मुख के साथ मेरा सादृश जो प्रतिपादित करते हैं वास्तव में भ्रम के कारण ही क्योंकि वास्तव में तुम्हारे मुखके समक्ष मैं कुछ भी नहीं हूँ इति इसी कारण विद्वान लोग भ्रमवश ही तुम्हारे मुख के साथ मेरी समानता प्रतिपादित करते हैं।

कर्पूरपरिमाणूनां व्याजाल्लग्नानि पादयोः।
भ्रमिमिभ्रामयन्तीव रेजे यूनां मनांसि च।।[1]
कर्णोपान्त भ्रमच्चक्र व्याजात् स्याहेव तां शशि।
ममोपमा तवास्यस्य भ्रम एव विपश्चिताम्।।[2]

धारा देवी के नृत्य के समय धनुष के समान उसके शरीर के झुक जाने पर कमर तक लटकते हुए उसके केश जीवा रूप में सुशोभित हो रहे थे। इसी का वर्णन रसिक मूर्धन्य कवि ने किया है—

लास्येन धनुषीवास्याः पश्चात् वपुसि सन्नते।
पार्ष्णिसं स्पर्शिनी वेणिर्जीवा भावम् जीजिवत्।।[3]

स्वाभाविक सुन्दरता से युक्त उस नर्तकी के स्तन के अग्र भाग में विराजमान हार लता चकवा पक्षी द्वारा चोंच से पकड़ा गया कमल नाल के समान सुशोभित हुई—

अंगहारतया हरिलता तस्याः स्तनाग्रतः।
रराज विसवल्लीव चक्र चंच्वग्रसं स्थिता।।[4]

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/22
2. हम्मीर महाकाव्य—13/21
3 हम्मीर महाकाव्य—13/25
4. हम्मीर महाकाव्य—13/25

चाहमान वंश के सिंह श्री **जैत्रसिंह** की राजरानी हीरा देवी का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है—

अगण्यपुण्यलावण्य रस प्रसर सारिणिः।
हीरा देवीति तस्यासीत् प्रेयसी श्रयसी गुणैः।।[1]

अग्रगण्य जिसकी गणना न की जा सके पुण्य = अर्थात् पवित्र ऐसा जो सौन्दर्य रस और उस रस की जो सारणि अर्थात् नहर ऐसी जी राजा जैत्रसिंह की राजरानी थी ऐसी महारानी **हीरा देवी** के अपूर्व सौन्दर्य को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि उसके अपूर्व सौन्दर्य से पराजित कामदेव की स्त्री रति उसी के शरण में गई तथा उसी की सेवा करने लगी। कहा भी है कवि ने—

सौन्दर्येण जिता यस्य रतिस्तामेव मेजुषी।
जगदे वह्निदग्धस्य शरणं वह्निरेव वा।।[2]

राज्यस्थान प्रदेश में बहुत काल से पति के युद्ध में मरने के बादप्रायः उसकी पत्नी अच्छी प्रकार से अपने को आभूषण आदि से सजाकर उसी मरे हुए पति के शव के साथ चिता की आग में प्रवेश करती है। उत्साहपूर्वक यह परम्परा संसार में प्रसिद्ध है। कभी-कभी स्वामी के जीते जी अपने सदाचार आदिकी रक्षाके लिए वीराङ्गनाएँ स्वामी के आदेश से स्वयं अग्नि में प्रविष्ट हो जाती थी। **हम्मीर देव** ने युद्ध के अवसर पर जब देखा कि प्रायः सभी विश्वसनीय वीर सैनिक शत्रुदल में चले गये हैं। इसलिए किले की तथा अपनी रक्षा संदिग्ध दिखलाई पड़ती है तब उन्होंने अपनी सबसे प्यारी पत्नी **आरंग देवी** तथा अन्य राज रानियों को अग्नि में प्रवेश का आदेश दे दिया उस समय उन सभी ने आभूषण आदि से अपने को आभूषित किया। उनके सौन्दर्य को कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है—

---

1. हम्मीर महाकाव्य—4/138
2. हम्मीर महाकाव्य—4/139

कस्याश्चित कर्णयोः स्वर्ण कुण्डले रंजतुस्तमाम्

चक्रे इव जगज्जेत्रे रतिकन्दर्प चक्रिणोः

भौ परस्याःकस्तूरी तिलकं कलिका कृतिः

स्मरेण त्रिदिवं जेतुं सहितंधनुषीष्विह॥[1]

कस्याश्चिदुदरसि स्फारा मुक्ता हारलता वभौ।

वितता हास धारेव निर्याता सृक्किणीद्वयात्॥

रेणुसंगभयात् कामस्यन्दनांगमिवाव्रतम्॥

हम्मीर देव की पुत्री राजकुमारी **देवल्ल देवी** निश्चय हीअति सुन्दरी थी। इसी कारण से उसकेसौन्दर्यादि गुणों लोभी हत्यारा शकराज उसी को राजा हम्मीर से मांगा। स्वयं पिता हम्मीरदेव केकथन से भी सिद्ध होता है कि उस समय संसार में **देवल्ल देवी** अपूर्व सौन्दर्य से युक्त राजकुमारी थी। जैसा उसने कहा है—

सत्यामप्यासमुद्रोव्यां कुले सारं त्वमेव नः।

नचेच्छकोऽपि तां हित्वा कथं त्वामेव याचते॥

यहॉ पर हम्मीर अपनी पुत्री से कहता है कि हे पुत्री समुद्र पर्यन्त इस पृथ्वी पर तुम ही हमारे कुल में सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु हो यदि ऐसा न हो स्वयं शकराज भी पृथ्वी को छोड़ कर तुम्हें ही हाथ फैलाकर विनयपूर्वक मांग रहा है।

पुरुष सौन्दर्य वर्णन

हम्मीर महाकाव्य में कवि ने हम्मीर देव का हृदयहारी सौन्दर्य चित्रित किया है। उसके युवा अवस्था के आरम्भ में निकलती हुई दाढ़ी को देखकर

1. हम्मीर महाकाव्य—13/174—176

कवि ने जैसी अनुपम कपना की है वह निश्चय ही बहुत आनन्द देने वाली है। जैसे कि हम्मीर देव के मुख के स्वाभाविक अभूषण के रूप में उत्पन्न दाढ़ी और मोछ नासिका मार्ग से निकले श्रृंगार रस की धारा के समान सुशोभित होते थे। यौवन सम्पन्न नायक हम्मीरका तथा विविध अङ्गनाओं का सौन्दर्य वर्णन करते हुए कवि कहता है—

केशा केलिकलाप कान्ति जयिनो वक्त्रं शशि प्रीति कृत्।
काठ कम्बुरिपुःकपाट पटुतविक्षपि वक्षः स्थलम्।
दोर्दण्डौ परिधाय छात निविडौ पादो कृताव्जापदो।
किं किं रम्यतरं न यौवन पदं प्राप्तस्य तस्याभवत्।[1]

सौन्दर्य धनी हम्मीर का मोरके वालों को जीतने वाले केश समूह है। चन्द्रमा जैसा मुख प्रतीत होता है। शंख सदृश कण्ठ है, बड़े द्वार के समान वक्षस्थल है। सीकड़ केसमान दोनों भुजाएं हैं, कमल केसमान सुन्दर दोनों चरण हैं। इस प्रकार उस वीर का देह सौन्दर्य स्मरण योग्य तथा दर्शनीय है।

जलक्रीड़ा वर्णन

महाकवि नयचन्द्र ने इस महाकाव्य के छठे सर्ग में जल क्रीड़ाके विविध रूपों का अतिशय रुचिकर वर्णन किया है। इस वर्णन के बहाने कवि ने प्रकृति के अनेक सुन्दर रूपों का वर्णन किया है। चंचल नेत्रों वाली स्त्रियाँ अपने विस्तृत नितम्बों द्वारा, आगे बढ़ने की इच्छा करने वाले प्रियतमों को शीघ्र रोकते हुए पूरे जलमार्ग को ही रोक दिया। युवती स्त्रियाँ स्वच्छ जल में अपनी शोभा को देखकर दर्पणों से मनों को खींच लिया।

स्त्रियाँ तालाब में खिले हुए फूलों को फेंक कर मानो कामदेव को पुनः

---

1. हम्मीर महाकाव्य—1/155

जीवित करने केलिए जलमूर्तिमय महेश की स्तुति कर रही है—

उत्तरंगिणि सरोऽम्मसि नार्यश्चिक्षिपुर्विकसितानि सुमनानि।
उज्जिजीविषयव्येव यजन्त्यो मनमथस्य गिरिशं जलमूर्तिम्।।[1]

तालाब में अथाह जल को देख कर भय से काँपती हुई स्त्रियाँ युवा पुरुषों का किसी प्रकार हाथ पकड़ कर जल क्रीड़ा के लिए जल में प्रवेश कर रही हैं—

अत्यगाधजलदर्शन जाता तर्क कम्पित तनूस्तनुमध्याः।
पाणिनाऽथ विनिगृह्य कथंचित् वेशयन्ति सलिलं स्म युवानः।।[2]

कोई चतुर नायक मुग्धा नायिका के प्रति कहता है। हे मुग्धे यहाँ अथाह जल है अतः तुम्हारा इस प्रकार इसमें प्रवेश करना उचित नहीं है। ऐसा कपट पूर्वक कह कर उस मृगनयनी को सीने से लगाकर जल में प्रवेश[3] किया। जल क्रीड़ा के अवसर पर मृगनयनी के बालों से गिरते हुए जल कणों को देख कर ह्रदय हारी वाणी से इस प्रकार कहा—

वल्लभे विकसिताम्बुजमुख्या उन्मदेसपिवति वक्त्ररोजम्।
भ्रश्यदम्बुकणकेशकलापच्छद्मना लिमिररोदिशुचेव।।[4]

जल क्रीड़ा में प्रेमी के उन्मत्त हो जाने पर खिले हुए कमल के सदृश मुख कमल के पान करते रहने पर केशों से गिरतेहुए जल कम के बहाने मानो भ्रमरी गण रोते हुए से प्रतीत होते हैं।

सरोवर[5] में स्त्रियों के पर्वत के समान कठोरस्तन तट से टकरा कर

---

1 हम्मीर महाकाव्य—6/9
2. हम्मीर महाकाव्य—6/12
3. हम्मीर महाकाव्य—6/14
4. हम्मीर महाकाव्य—6/24
5 शैलसारकठिने प्रमादानमम्भसां स्तनतटे स्खलितानाम्।
फेनपक्तिरिव हारलताया दिद्युते सरसि मौक्तिकपंक्तिः।।
हम्मीर महाकाव्य—6/30

गिरने वाला फेनिल जल की पंक्ति हार लता के मोतियों की माला के समान सुशोभित हुई। जलक्रीड़ा के अवसर पर प्रिय द्वारा रमण की जाती हुई प्रियतमा के कटि वस्त्र अपहृत कर लिये जाने पर वस्त्र के सदृश अपने पत्तों को उसे देती हुई कमलिनि निश्चय ही सखी जैसा व्यवहार कर रही है।[1]

जलक्रीड़ा वधुओं के रमण-रस का प्रवेश द्वार था। इसीलिए धम्मिल वन्ध ढीला हो गया, आँखों में लगा हुआ अंजन घुल गया। ओठो मे लगा रंग साफ हो गया। सारे शरीर में रोमाञ्च सा होने लगा; कपोल औरस्तनों पर लगी पत्र लेखायें गिरने लगीं—

धम्मिल वन्धो गलित मखिलमध्यजनं लोचनानां
भ्रष्टो राजो धराणांविरलपुलकैर्व्याप्तभंगं समग्रम्
नष्टं शक्तिः कपोलस्तनतटलिखिता पत्रलेखाप्यपास्ता
वारि क्रीड़ा वधूनामजनि रतिरसस्य प्रवेश ध्रुवेव।।[2]

नयचन्द्र ने इस महाकाव्य के सातवें[3] सर्ग में अति विस्तार से **श्रृंगार संजीवन** नाम से सुरत कामी वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इस महाकाव्य मे विविध नगरों का, नदियों का, आश्रमों का, पर्वतों का, किलों का, तपोवनों का, तालाब एवं वृक्षों तथा झुर्मुटों का यथावसर सुन्दरतम वर्णन विस्तार से उपलब्ध होता है। इसी कारण से उनका वर्णन मैंने अग्रिम अध्याय में पृथक रूप से किया है। महाकवि नयचन्द्र न केवल प्रकृति के स्थूल चित्रण में निपुण हैं अपितु प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म पक्ष के भी विशेषज्ञ हैं। इसीलिए उनके द्वारा किया गया प्रकृति वर्णन अति हृदयहारी तथा बहुज्ञता का प्रकाशक है।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—6/38
2. हम्मीर महाकाव्य—6/55
3. हम्मीर महाकाव्य—सप्तम

नवम् अध्याय

(क) नदियाँ

1. वर्णनाशा 2. शिप्रा नदी

(ख) प्रमुख दुर्ग

1. रणस्तम्भपुर दुर्ग, 2. चित्रकूट दुर्ग, 3. अजयमेरु दुर्ग, 4. माण्डलकृत दुर्ग

(ग) प्रमुख मन्दिर

1. अर्बुदा देवी मन्दिर 2. वस्तुपाल मन्दिर

3. अचलेश्वर मन्दिर 4. विमलवसही मन्दिर

5. महाकालेश्वर मन्दिर 6. शकम्भरी मन्दिर

(घ) प्रमुख नगर

1. काशी काँची, 2. अवन्ती, 3. गोपाचल नगर, 4. वक्षस्थलपुर, 5. कुन्तल देश, 6. मालव देश, 7. काश्मीर देश, 8. खण्डिल्ल, 9. सिरोहीवर्धनपुर

(ङ) प्रमुख पर्वत

1. मलयशैल 2. अर्बुदाचल

(च) प्रमुख आश्रम

1. वशिष्ठ आश्रम 2. श्री आश्रम पत्तन, 3. तीर्थराज पुष्कर

(छ) प्रमुख सरोवर

1. जैत्रसागर सर, 2. पद्मसर 3. पुष्करसर

प्रमुख नदियाँ

वर्णनाशा (वनास)

यह नदी **राजस्थान** में **वनास** नाम से प्रसिद्ध है। यह मुख्य रूप से **सिरोही** राज्य में बहती है। यह दो स्थानों से निकलती है। पूर्व दिशा मे पर्वत श्रेणी से निकल कर जाडोल पर्यन्त पांच को दक्षिण पूर्व दिशा में बहती हुई पालन पुर राज्य में **मालव** के समीप प्रवेश करती है। यह नदी पूरे वर्ष तक बहती है। पश्चिम दिशा से उत्पन्न **वर्णनाशा** सिरोही राज्य में बहती हुई **सूकली** स्थान से रोही पर्वत श्रेणी द्वारा बहती हुई **पालनपुर** मे मिलती है। विशालता तथा उपयोगिता की दृष्टि से यह नदी राजकुलों में अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती है। इसका **चर्मणवती** नदी केसाथ मनोरम संगम होताहै। इसमें बहुत से छोटे-छोटे झरने आकर मिलते हैं।

इसका नाम **अरावली** की वनदेवी नाइडा पौराणिक नाम वनसि इससे भी सम्बद्ध है। कहा जाता है कि यह नदी कोई पवित्र मेषपालिका थी जो एक बार इस प्राकृतिक जल प्रपात में जल क्रीड़ा करते हुए डूब गई थी। वह उस समय ही किसी मनुष्य को वहाँ आते हुए देखकर भयभीत हो गई। वह मनुष्य परिचित **म्यूसीडोरा** का प्रियतम के समान कहा जाता था। जो स्नान पारायण होकर ठहरो प्रेम दृष्टि के बिना कोई तुमको देख नहीं सकता। किन्तु वह लेखन कला से पूर्ण रूप से अपरिचित था। इसी कारण अपने मनोभाव को व्यक्त करने केलिए स्वयं हीप्रत्यक्ष रूप से आ गया। इस कथानक के अनुसार मेषपालिका ने अपने को छिपाने के लिए जल प्रपात के देवता से प्रार्थना किया। उसकी प्रार्थना को स्वीकार करके तुरन्त ही वह जलप्रपात आकरके उसे ढक लिया। वही निर्मल जल वाली नदी वर्णनाशा (वनाति)

रूप में बदल गई।

यह नदी **वनाशा** नाम से भी प्रसिद्ध है क्योंकि प्रस्तर खण्डों से ढके लोगो को जीवन देती है।

नदी के जल प्रपात संगम स्थान तक जाने का मार्ग भी चित्ताकर्षक है। यही नदी नाथ द्वारकानाथ स्थान में भगवान श्री कृष्ण के मन्दिर के समीप बहती हुई दिखलाई पड़ती है।

शिप्रा नदी

इसी नदी के ही तट पर उज्जयिनी नगर स्थित है। इस उद्गम स्थान हिमालय के पश्चिम भाग में स्थित शिप्रा नाम का स्रोत है। यह नदी दक्षिण सागर[1] में गिरती है। इसका वर्णन महाकवि **कालिदास** के मेघदूत में[2] भी प्राप्त होता है। **कालिदास** ने इसे ऐतिहासिक नदी के रूप में अमर कर दिया जिसकेतट पर स्वर्ण नगरी की तरह सुन्दर **उज्जयिनी** नगरी स्थित थी। **रघुवंश महाकाव्य** में भी इसका उल्लेख मिलता है।[3]

यह **शिप्रा नदी गोपाचल** (ग्वालियर की) एक प्रसिद्ध स्थानीय नदी है जो **सितमान** स्थल से थोड़ा आगे **चर्मणवती** नदी में विलीन हो जाती है। यह दो उपनदियों[4] से पूरित रहती है। **हरिवंश**[5] पुराण मे भी इस नदी का वर्णन प्राप्त होता है। पौराणिक सूचना के अनुसार यह पारियात्र पर्वत से निकलती है। **स्कन्द पुराण** के अवन्त्य खण्ड से ज्ञात होता है कि अवन्ति

---

1. कालिकापुराण—अध्याय-19 पृ0 14, 17
2. मेघदूतम्—पूर्वमेघ-श्लोक सं0 27, 29, 31
3. रघुवश—6/35
4 लाहा रिवर्स आफ इण्डिया—पृ0 40
5 हरिवंश पुराण—अध्याय 9509

में **शिप्रा** उत्तर वाहिनी रूप में प्रसिद्ध थी। जब रेवा नदी के जल से पृथ्वी बहने लगी तब विन्ध्य पर्वत ने पृथ्वी की रक्षा की। **रेवा, चर्मण्वती** तथा **क्षाता** नाम वाली तीन नदियाँ विन्ध्य पर्वत के समीप **अमरकण्टक** पर्वत श्रृंखला से उत्पन्न हुई।

विन्ध्य पर्वत को बांटकर क्षाता **रुद्रसरोवर** के समीप शिप्रा के साथ मिलने के लिए **उज्जयिनी** की तरफ प्रवाहित थी। **शिप्राक्षाता** संगम का ही क्षाता संगम कहा जाता है। **स्कन्दपुराण**[1] **वंगवासी संस्करण।** से पता चलता है कि वह संगम एक विशिष्ट तीर्थ स्थान था। जैनियों के आवश्यक चूर्णिका के पृष्ठ 544 पर इस नदी का उल्लेख प्राप्त होता है। **श्री नयचन्द्र** ने **हम्मीर महाकाव्य** में हम्मीरदेव के दिग्विजय यात्रा वर्णन के प्रसंग में शिप्रा नदी में सेना के साथ स्नान करने का वर्णन प्राप्त होता है।[2]

प्रमुख दुर्ग

रणस्तम्भपुर दुर्ग

पश्चिमी रेलमार्ग के दिल्ली मुम्बई मार्ग में जयपुर से कुछ दूर सवायी **माधवपुर** नामक रेल विभाग स्थल है। उसी के समीप **रणस्तम्भपुर** नामक सुप्रसिद्ध तथा **अभेद्य दुर्ग** है। पर्वत मस्तक पर स्थित यह दूर से भगवान शिव केसिर पर स्थित वेल पक्ष के समान प्रतीत होता है।

यह किला सबसे पहले किसने और कब बनवाया यह स्पष्ट ज्ञात नहीं होता किन्तु पृथ्वीराज चाहमान के शासन काल मे यह विद्यमान था यह निश्चित है। उसके पुत्र गोविन्द राज का यही पर राजधानी भी थी।

---

1. स्कन्दपुराण—अध्याय 5666/12 पृ0 2868
2. शिप्रां विप्रांजलित्यवन्तैः सिक्तवप्रां पयः कणै।
   दृष्ट्वा तस्याभवन् सैन्याः सज्जा मञ्जन हेतवे।।

   हम्मीर महाकाव्य—9/20

गोविन्दराज के वंशज श्री जैत्रसिंह के ही वीर पुत्र हम्मीरदेव हैं। हम्मीरदेव के शासन काल में इस दुर्ग की संसार में बहुत प्रसिद्धि थी।

प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से **रणस्तम्भपुर राजस्थान** का सर्वाधिक महत्वपूर्ण दुर्ग है। भयानक वन और पर्वतों के बीच में स्थित यह किला आज भी अति भयङ्कर प्रतीत होता है। यह किला **जयपुर** से 130 किलोमीटर दूर पूर्व और दक्षिण दिशा में स्थित है। यह बारहवी शताब्दी के अन्त में दिल्ली के शासक **कुतुबुद्दीन** तथा **इल्तुतमिश** के अधिकार में था उससे पूर्व चाहमान वंशीय राजाओं का इस पर स्वामित्व था। तेरहवी शताब्दी मे दिल्लीश्वर **अल्लावदीन ने रणस्तम्भपुर** को अपने आधीन करने केलिए आक्रमण किया। उस समय यह किला **हम्मीरदेव** के हाथ में था। हम्मीर ने कुछ ऐसे यवनों को शरण प्रदान[1] किया था जिनको अल्लावदीन दण्डित करना चाहता था। **अल्लावदीन** ने उन दण्डनीय यवनों को वापस करने को कहा किन्तु हम्मीर ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया।

अतः क्रोध से भर कर हम्मीर को पराजित करने के लिए अपनी सेनाओं को भेज दिया। किन्तु हम्मीर के वीरसेनाओं के समक्ष उसकी सेना निर्बल होकर भाग खड़ी हुई। बाद में बहुत प्रयास के साथ तथा अति क्रोधित होकर **अल्लावदीन** ने स्वयं युद्ध करने के लिए **रणस्तम्भपुर** की तरफ प्रस्थान कर दिया।

हम्मीर के साथ उसका भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में यवन राज की बड़ी क्षति हुई किन्तु अन्त में उसने ही विजय प्राप्त किया। **राजस्थान** के इतिहास में इस युद्ध का अद्वितीय स्थान है। 1559 ई० में **सुर्जन हाँडा** ने यहाँ शासन किया। इसके बाद अकबर ने इसे ग्रहण किया था। तदनन्तर

1. हम्मीर महाकाव्य—11/61

मित्रता के कारण उसने महाराज **माधव सिंह प्रथम** को इस **रणस्तम्भपुर** किले को सम्मानपूर्वक भेंट कर दिया। आज भी यह दुर्ग अपने अतीत एवं बहादुरी के इतिहास को याद दिलाता है। **कविवर नयचन्द्र** ने अनेक बार **रणस्तम्भपुर** का उल्लेख अपने महाकाव्य[1] में किया है।

चित्रकूट दुर्ग, चित्तौड़ दुर्ग

अजमेर—रेलमार्ग से **खण्डवा** नामक उपनगर की ओर जाते समय **चित्तौड़गढ़** नामक रेलवे जंक्शन है। इस स्थान से एक कोश की दूरी पर विस्तृत भू भाग से ढंकी हुई एक पर्वत माला दिखलाई पड़ती है जहाँ **चित्रकूट** नाम का सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग विराजमान है। यह दुर्ग सागर तल से 1850 फुट की ऊँचाई पर तथा समतल क्षेत्रसे 500 फुट की ऊंचाई परस्थित है। यहाँ गाँव, मन्दिर तथा महलों के खण्डहर आज भी प्राप्त होते हैं। यहाँ जलकुण्ड, तालाब, नहर तथा झरने सर्वदा जल से परिपूर्ण रहते हैं। अधिक सूखे समय में भी इस दुर्ग में जलाभाव नहीं दिखलाई पड़ता है। इसके निचले भाग में कृषि योग्य खेत हैं। इसी कारण से आक्रमण काल में खाद्य सामग्री का कभी भी अभाव[2] नहीं होता था।

इस दुर्ग की प्रसिद्धी का मुख्य कारण यह है कि यहाँ सुसंख्य क्षत्रीय वीरो ने देश और स्वाभिमान की रक्षा के लिए सहर्ष अपने प्राणों का परित्याग कर दिया था। यहाँ पर अनेकों राजकुल की स्त्रियों तथा अन्य वीरांगनाओ ने अपने जाति एवं वंश की मर्यादा के लिए मरणोपरान्त शत्रु के हाथ में जाने की अपेक्षा सहर्ष अग्नि मे प्रवेश करना स्वीकार कर लिया।

यह जनश्रुति है कि यह दुर्ग पाण्डवो के समय में विद्यमान था जहाँ

---

1. हम्मीर महाकाव्य—4/23, 26 , 28
2. कनिंघम आकिलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया भाग—23 पृ0 113, 187

भीमसेन ने आकर एक जलकुण्ड खना था। वही जलकुण्ड इस समय **भीमताल** नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु 660 विक्रमी में प्राप्त शिलालेख से प्रतीत होता है कि **यहाँ मौर्य वंशी भीमसेन** शासक हुआ था। शिलालेख की प्रतिलिपि **कर्नलटाडे**[1] द्वारा लिखे ग्रन्थ में भी प्राप्त होती है। सम्भवतः लेखकों ने पाण्डव भीमसेन के साथ इसका तादात्म्य ही किया है। शिलालेख की वंशवली से मौर्यवंशी भीम का चित्रकूट में स्थिति सत्य ही प्रतीत होती है। इसी भीम का उत्तराधिकारी माना[2] था जिसे चित्रांग मौर्य भी कहा जाता है। कहा जाता है कि इसी के नाम से यह दुर्ग **चित्रकूट** नाम से प्रसिद्ध हुआ तालाब चित्रांग मौर्य नाम से प्रसिद्ध हुआ। नरेश **सामन्तसिंह** ने हरा कर इस दुर्ग को अपने आधीन कर लिया। **डॉ. दशरथ शर्मा** के मतानुसार **जैत्रसिंह** 1213–1253 तक प्रथम **चित्रकूट दुर्ग**[3] का विजेता था। इसके कुछ काल के बाद यह शकराज अल्लाबदीन के तदनन्तर सम्राज्य अकबर के अधिकार में चल गया। किन्तु प्रायः इसके ऊपर मेवाड़ के राजाओं का अधिकार था। इस समय दुर्ग के स्मारक की भारतीय पुरातत्व विभाग कर रहा है। सम्पूर्ण दुर्ग मजबूत दीवारों से घिरा है। इसकी रक्षा के लिए मुख्य मार्ग के साथ सात द्वार बनाये गये[4] है।

उनमे प्रथम द्वार पाटव नामक (पाटनपोल) जगह है। अन्त में जहाँ प्रतापगढ़ के राजा व्याघ्र सिंह का स्मारक निर्मित है। **गुजरात** के शासक बहादुर शाह ने जब दुर्ग के ऊपर आक्रमण किया तब व्याघ्र सिंह दुर्ग की रक्षा करते हुए ही प्राणों को[1] त्याग दिया। दुर्ग का दूसरा द्वार भैरव नामक

1. इर्सकिन राजपूताना पजे टियर भाग 2 पृ. 101
2. टाड राजस्थान भाग 1पृष्ठ 25 एपेडिम्स नं.–3
3 प्रोसीडिग्स आफ इण्डियन हिस्ट्री क्रांग्रेस 1960
4. हिन्दी आफ मेवाड़ रायचौधरी पृ.3 उदयपुर राज्यका इतिहास ओझा भाग। पृ. 45–46
5 वंशावली श्री राणा जी ने पत्र सं. 63

है। (भैरव पोल) जहाँ जयमलकुल के कल्लावीर का राठोडवीर का तथा जयमल का छत्र तथा मण्डप है। **महराज उदय सिंह** के अनुपस्थिति में **जयमल** ही दुर्ग का प्रमुख रक्षक था। **कल्ला** तथा **जयमल** ये दोनों सम्राट **अकबर** के साथ 1567 ई. में युद्ध में वीर गति को प्राप्त[1] (मूल) हुए। इसके बाद से क्रमशः गणेश द्वारा लक्ष्मण द्वार, जोडन द्वार तथा रामद्वार ये स्थित है। **हम्मीर महाकाव्य** के नवम[2] सर्ग में इसका रमणीय वर्णन प्राप्त होता है।

अजयमेरूदुर्ग (तारागढ़ दुर्ग)

अजयमेरू नगर के समीप **अरावली** शाखा का एक मार्ग **विट्ठलीगिरि नाम** से पुकारा जाता है। इसी पर्वत श्रेणी में सातवी शताब्दी में राजा **अजय पाल** ने **अजयमेरु दुर्ग** का निर्माण करवाया। इसके बाद राजा **मेरुपाल रायमल** के पुत्र **महाराज कुमार पृथ्वी राज** ने वहीं एक भाग में महल का निर्माण करवा कर अपनी राजरानी **ताराबाई देवी** के नाम से इस दुर्ग का नाम **तारागढ़** रखा। यही भी कहा जाता है कि **शाहजहाँ** के सेनानायक **विट्ठल दास** ने मजबूत किले के रूप में इसका जीर्णोद्धार करवाया। **राजस्थान** के इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस दुर्ग के लिए बहुत बार क्षत्रिय राजाओं के साथ यवन शासकों का भयंकर युद्ध हुआ। **हम्मीर महाकाव्य**[3] के प्रथम सर्ग में अजय मेरु दुर्ग का महत्व महाकवि ने मुक्त कण्ठ से वर्णन किया है।

माण्डल कृत दुर्ग

धारा मण्डल में स्थित आधुनिक **माण्डूरनगर** ही मण्डल कृत है अभी

---

1. अकबरनामा भाग–2 पृ. 401–402
2 हम्मीर महाकाव्य 9/26
3. हम्मीर महाकाव्य– 1/52

पूरी सम्भावना है। **उदयपुर राज्य** का प्राचीन **मण्डलगढ़ दुर्ग** यह ही है। भेदपाट माण्डलगढ़ का पूर्वी भाग पृथ्वीराज के समय में चाहमान कुलवासियों के हाथ में था। किन्तु उसके ऊपर 1193 ईस्वी में यवनो का अधिकार हो गया। **रणस्तम्भपुर** के चाहमान वंशीय राजा **हम्मीर देव** के समय 1288 ईस्वी में लिखे गये **कव्वाल**[1] कुण्ड के शिलालेख से पता चलता है कि **हम्मीर के** पिता राजा जैत्र सिंह ने **मण्डप के (माडल कृत दुर्ग के)** शासक **जयसिंह** को अत्यधिक पीड़ित किया। उसके सौ से ज्यादा वीर सैनिकों को पराजित करके रणस्तम्भपुर के जेल खाने में डाल दिया। **हम्मीर महाकाव्य में**[2] हम्मीर विजय यात्रा के प्रसंग में वर्णित है कि हम्मीर देव मण्डल कृत दुर्ग पर अधिकार करके शीर्घ ही धारा नगरी में आ गयी भेदपाट में आज भी माडलगढ़ नामक दुर्ग विराजमान है।

प्रमुख मन्दिर

अर्बुदा नाम की दैवी ही **अर्वुदाचल** मे निवास करती है यह वहाँ के लोग धारणा है। अर्बुदाचल के धरातल से 450 सिड़ियों के चढ़ने के बाद अर्बुदा देवी दर्शन होता है। इसका मन्दिर पर्वत की गुफा में बना है। प्रतीत होता है कि आर्य विद्वानों का आपस में विचार विनिमय का यह भी उचित स्थान था। लोग बुद्धि देवी के रूप में इसकी पूजा करते थे। यहाँ सम्वत 1575 विक्रमी का अभिलेख प्राप्त होता है। इस देवी के मन्दिर का आधा

---

1. ततोऽभ्युदयमासाध जैत्रासिहों रविर्नवः ।
   अपिमण्डपमध्यस्थं जयसिंहतीतपात।।
   न झम्यादूथाघट्टे मालवेशभटाः शतम् ।
   बद्वा रणस्तम्भपुरे शिप्तानीताश्च दासताम।।
   कव्वाल जीकुण्ड प्रशास्ति 8 9 2 हम्मीर महाकाव्य 9/18,19 जी
2. हम्मीर महाकाव्य 9/18,19

भाग पत्रावलियों से ठका हुआ है। इसके चारो तरफ नालियाँ वहाँ से बाहर आकर चक्र के समान घूमती हुई अन्त में **वर्णनाशा (वनास)** नदी में मिल जाती है। **हम्मीर महाकाव्य** के नवमें सर्ग में **कविवर नयचन्द्र** ने इस देवी का भी वर्णन[1] किया है। **अर्वुदेश्वर** हम्मीर महाकाव्य में भगवान **अर्बुदेश्वर**[2] का भी उल्लेख मिलता है। दिग्विजय के अवसर पर भगवान अर्बुदेश्वर हम्मीर देव के लिए सर्वदाता हुए ऐसा वर्णन कवि ने किया है। इसकी स्थिति भी **अर्बुद** नामक पर्वत पर थी।

श्री आश्रम का शिव मन्दिर

धार्मिक स्थान **केशवराय पाटन** के प्राचीन कोटर राज्य में चर्मणवती नदी के तटपर स्थित यह एक नगर है। यह नगर वृन्दावती (बूंदी) से 22 मील पर्यन्त पूर्व दिशा में तथा कोटर नगर से 9 मील उत्तर पूर्व दिशा में चर्मणवती नदी के वाम भाग में विराजमान है। यहाँ पर केशवराय (विष्णू) का सुप्रसिद्ध मन्दिर है। इसीलिए यह स्थान केशवराय पाटन यह कहा जाता है।

पाटन एक अति प्राचीन नगर है। यहाँ चर्मणवती नदी पूर्व की ओर बहती है। इसी कारण प्राचीन काल से ही इस स्थान की गणना हिन्दू तीर्थो में की जाती है। चर्मणवती नदी के ऊँचे घाट पर केशवराय का मन्दिर स्थित है। जिसका निर्माण सम्वत 1715 विक्रमी में राव राजा शत्रुशाल हाडा ने

---

1. प्रणस्थ महतीभक्तिः सर्वदार्बुदां ततः।
   आश्रमेद्ररून्धतीजानेविशश्राम क्षणं नृपः।

   हम्मीर महाकाव्य 9/36

2. प्रचलइलपाथोधिमैनाकीकृतवैरिणः।
   अत्राभूत खर्वदो गर्पः सर्वदोऽस्यर्बुदैश्वरः।।

   हम्मीर महाकाव्य 9/39

कराया। शत्रशाल का दारा शिकोह औरंगजेब के पुत्र के साथ मित्रता थी। इसी द्वेष वृद्धि से औरंगजेब ने इस मन्दिर को तोड़ने के लिए सेना भेजा था उस सेना के साथ हाडा क्षत्रियों ने युद्ध किया। शत्रुसेना ने मन्दिर के शिखर का कुछ अंश तथा कलश गिरा दिया। बाद में मन्दिर को जीर्णोद्धार रावराज बुद्धसिंह ने अपने शासन काल में करवाया। इसी राजा के **कत्सवाह** नामक रानी ने बड़ी श्रद्ध से सोने का कलश समर्पित किया था।

इस मन्दिर में इस समय गणेश की पूजा होती है। इस मन्दिर के निकट ही **जम्बूदीप** महादेव का विशाल देवालय शुशोभित होता है। यह क्षेत्र **जम्बूद्वीप** नाम से अथवा **जम्बुकारण्य** नाम से प्रसिद्ध है। यहॉ महाशिव रात्रि के अवसर पर विशाल मेला का आयोजन होता है। गर्भ गृह में भगवान शिव का लिंग स्वरूप स्थापित किया गया है। इस मन्दिर के सम्बन्ध में कहा जाता है कि बहुत प्राचीन काल में परशुराम नामक कोई महापुरुष **जम्बुकेश्वर** महादेव के मन्दिर का निर्माण करवाया। उस जीर्णमन्दिर के गिर जाने पर सम्वत 1698 विक्र वृन्दावती नरेश श्री मान शत्रुशाल ने पुनः विशाल मन्दिर का निर्माण करवाया। इस देवालय में भगवान विष्णु का चार भुजाओं से युक्त सफेद पत्थर से बनी हुई सुन्दर और दर्शनीय मूर्ति है। **रणस्तम्भपुर** इतिहास के अनुसार राजरानी के साथ राव हम्मीर ने भी श्री **जम्बुकेश्वर** का रत्नो से पूजन करके तुलादान भी किया था।

हम्मीर देव के पिता महाराज **जैत्रसिंह** हम्मीर को साम्राज्य देकर अन्त में शरीर तथा घर आदि` प्रति निरीहचित्त हो कर श्री आश्रम को चले गये। उसी आश्रम में पार्वती के साथ जम्बू पथ सार्थवाही भगवान शंकर विराजमान रहते है। जो ध्यान मात्र से भक्तों को भोग सुख तथा मोक्ष सुख तुरन्त प्रदान करते है। इसीलिए भगवान शिव आशुतोष भी कहे जाते है। जैसा कि कवि

ने कहा भी है।

शिवा पि जम्बूपथ सारथवाही विराजते यत्र शिवः स्वयम्भूः।
यो ध्यान मात्रोऽप्युरुभक्ति माजं दत्ते न किं भुक्ति मिवाशु मुक्तिम॥[1]

उसी आश्रमस्त मन्दिर के निकट पवित्र लक्ष्मी के वेणी की तरह चर्मणवती नाम की नदी[2] बहती है।

वस्तु पाल मन्दिर

यह मन्दिर **अर्बुद पर्वत** पर स्थित है। वास्तव में यह मन्दिर एक जैनमन्दिर है। **वास्तुपाल** और **तेज पाल** का घर है। यह ही **नेमिनाथ** मन्दिर अथवा लूणवसाही मन्दिर कहा जाता है। इसकी स्थापना सम्वत 1287 विक्रमी **वस्तुपाल** के भाई **तेजपाल** ने की थी। इस मन्दिर की निर्माण कला विमल शाह मन्दिर के निर्माण पद्धति के अनुरूप है। मन्दिर के ऊपरी भाग की चन्द्रशालाओं में जैनधर्म की अनेक कथाओं से सम्बन्धित चित्र भी अंकित है। इस देवालय की रचना शोभन देव नामक[3] कारीगर ने किया है। हम्मीर महाकाव्य के नवमें सर्ग में वस्तुपाल मन्दिर का संकेत[4] मिलता है।

ब्रह्म मन्दिर

पुष्कर तीर्थ में लगभग चार सौ मन्दिर है। जन परम्परा से मालूम होता है कि सारे भारतवर्ष में केवल यहाँ ही एक मात्र ब्रह्मा जी का मन्दिर है। दिल्लीश्वर औरङ्गजेब ने अपने शासनकाल में इस मन्दिर को तोड़वा दिया

---

1. हम्मीर महाकाव्य 8/107
2. हम्मीर महाकाव्य 8/108
3. राजपूताने का इतिहास पृ. सं. 23
4. हम्मीर महाकाव्य 9/34-35

था। सन 1719 ई. में **जयपुर** की किसी पवित्रशील ने इस ब्राह्मणी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था। बाद में दौलत राव सिन्धि नाम वाले राजा के मन्त्री **गोकुलचन्द पारीक** ने पुनः इसका निर्माण करवाया। इस मन्दिर के निकटस्थ पर्वतों के शिखर पर **सावित्री देवी** तथा **शापविमोचनी गायत्री देवी** के दर्शनीय मन्दिर है। यहाँ बने हुए देव मन्दिरों में भगवान वीरंगदेव का मन्दिर भी दर्शनीय है। इस मन्दिर में विष्णु, लक्ष्मी तथा श्री नृसिंह की मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित है। **हम्मीर महाकाव्य** के नवमें सर्ग में **आदिवराह** नाम वाले हरि का वर्णन उपलब्ध होता है वह वास्तव में ब्रह्मा का ही वर्णन है। जैसा कवि ने कहा है–

आनर्च मूपस्तत्रादि वराहारव्याधरं हरिम[1]
चित्रं दशव तारोऽपि नयो दाहात्मता गतः।।

पुष्कर तीर्थ में प्रतिवर्ष असंख्य धार्मिक लोग स्नान के लिए जाते है। हजारों विदेशी पर्यटक पुरातत्व वेत्त लोग, ऐतिहासिक खोज में लगे विद्वान इसकी सुन्दरता को देखने तथा इसकी पवित्रता का अनुभव करने के लिए आते है। चन्द्र सूर्य ग्रहण के अवसर पर, कार्तिक पूर्णिमा के मेले पर बड़े उल्लास के साथ बालक युवक, युवतियाँ तथा वृद्ध लोग स्नान के लिए आते है। दान देकर आश्रय पुण्य अर्जित करते हैं। वे सभी लोग भगवान ब्रह्मा जी का अवश्य दर्शन करते हैं तथा अपने मनःकामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना भी करते है।

अचलेश्वर मन्दिर

यह मन्दिर भी **अर्बुद पर्वत** पर ही स्थित है। यह स्थान **अर्बुद नगर** से (आबू) तीन कोस की दूरी पर **अचलगढ़** नाम से प्रसिद्ध है। जो प्राचीन

1. हम्मीर महाकाव्य 9/42 ।

काल में परमार राजाओं का प्रमुख स्थान था। इस स्थान पर विद्यमान भगवान अचलेश्वर का मन्दिर दर्शनीय है। राजा **कुम्भः** (कुम्प) ने किसी समय यही पर शरण लिया था ऐसा सुना जाता है। भगवान **अचलेश्वर** ही अर्वुद का रक्षक है ऐसी धारणा लोगों में है। चार कोनो वाला मन्दिर आकार से अपनी प्राचीनता सिद्ध कर रहा है। यहाँ पर स्थित एक पूजापात्र राक्षसराज के अंगूठे के रूप में अति\प्रसिद्ध है। मन्दिर में प्रवेश के बाद सर्वप्रथम पर्वत की देवी मीरा दर्शकों को आकर्षित करती है। नीचे पृथ्वी के प्रस्तर खण्ड में एक विशाल छेद दिखलाई पड़ता है। जिसे संसार में ब्रह्मनखाल इस नाम से कहा जाता है। वह छिद्र शिव के निर्मल नख की शोभा को धारण करता है। मन्दिर के सामने बड़े आकार का पीतल से बना हुआ बैल दिखलाई पड़ता है जिसमें धन के लालची अत्याचारी तथा लुटेरों के धन प्रहार का चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

मन्दिर के बाहर द्वार प्रदेश में वने खम्भो में गदह का चिन्ह अंकित है। मन्दिर के चारो तरफ विशाल वृक्ष स्थित है। इस मन्दिर के अन्दर कोई शिलालेख प्राप्त नहीं है किन्तु मन्दिर के परिसर मे बारहवी शताब्दी से लेकर सोलह शताब्दी तक के बहुत से लेख मिलते है जिसका उस समय के ऐतिहासिक ज्ञान के लिए अत्यधिक महत्व है। यहाँ पर नन्दिकेश्वर के निकट दुरसा आढ़ा नामक उसके चारण कवि का पीतल की बनी मूर्ति सुशोभित हो रही है। जिसने सम्राट **अकबर** के राजसभा में **महाराणा प्रताप** की निडरता के साथ प्रशंसा की थी। दिग्विजय के समय **हम्मीर देव** ने इसी मन्दिर मे भगवान **अचलेश्वर** की श्री श्रद्धा पूर्वक पूजा किया ऐसा वर्णन हम्मीर महाकाव्य में मिलता है।

मन्दाकिला विद्यायोच्चैः स्नापणं शमनं रूजाम
अपूजयज्यगपूज्यमथासावचलेश्वरम् ।।[1]

इस प्रकार अर्बुदक्षेत्र में इस मन्दिर का अति महत्वपूर्ण स्थान है।

विमलवसति मन्दिर (विमल वसद्दी)

हम्मीर महाकाव्य[2] के अध्ययन से प्रतीत होता है कि यहाँ भी हम्मीर भ्रमण करते हुए आया। यह मन्दिर भी **अर्बुद नगर** से आधा कोश की दूरी पर स्थित है। इसके निर्माण में सफेद पत्थरों (संगमरमर) का प्रयोग किया गया है। यहाँ पर यद्यपि पाँच देवालय हैं किन्तु दो मन्दिरो का निर्माण अतिशय प्रशंसनीय है। उन दोनों में एक मन्दिर **विमलशाह** का है। वास्तव में यह **आदिनाथ** का जैन मन्दिर है। जिसकी स्थापना गुजरात प्रदेश के सोलंकी राजा भीमदेव के मन्त्री सेनापति विमलशाह ने सम्वत 1088 विक्रमी में बनवाया था। परमार शासक धन्धुक को हरा कर विमल शाह ने इस भूमि को लेकर वहाँ मन्दिर का निर्माण करवाया। अर्बुद का यह मन्दिर **भुवनेश्वर** परम्परानुसार निर्मित है। यह मन्दिर **विमलशाही** नाम से प्रसिद्ध है। इस मन्दिर में स्थापित **आदि नाथ** की मूर्ति में हीरो से बने हुए दोनों नेत्र हैं तथा माला मोतियों की है।

इसका चबूतरा तथा मैदान 48 खम्भों पर अवलम्बित है। यहाँ सुरक्षित छोटे छोटे जिनालय भी है। मन्दिर के सामने हस्तिशाला भी बनी हुई है। जिसके मुख्य द्वार के सामने विमल शाह की घोड़े पर चढ़ी मूर्ति भी सुशोभित हो रही है। हस्तिशाला में पत्थर से बने हुए दश हाथी दिखलाई

---

1. हम्मीर महाकाव्य 9/87
2. वसतौ विमलात्मा यं विमलास्थर्षभप्रभुम।
   ननामनोत्तमानां हि चित्ते स्वपरकल्पना।।

   हम्मीर महाकाव्य 9/34

पड़ते हैं।

महाकालेश्वर मन्दिर

भगवान महाकाल का मन्दिर उज्जयिनी मे है। यह भी एक तीर्थ स्थान है। जहाँ **हम्मीरदेव ने** भी श्रद्धा से महाकाल की पूजा की थी। यह सुप्रसिद्ध **शिप्रा नदी** के तट पर स्थित है। जब भगवान महादेव की प्रतिमूर्ति हम्मीर अवन्ती गया तब वहाँ उसने शिप्रा में स्नान करके ब्राह्मणो को दान देकर बैरियों के काल भगवान महाकाल की पूजा की ऐसा वर्णन इस महाकाव्य के नवम सर्ग में प्राप्त होता है।[1]

शकम्मरीछदः (शकम्भरी मन्दिर)

दुर्लभराय के मृत्यु के पश्चात यवनों के आक्रमण से दुःखी माणिक्यराय अत्यधिक व्याकुल हुआ। वह प्राण रक्षा के लिए अपने नगर से दूर भाग गया। सौभाग्य उस समय उसने भगवती **शाकम्भरी देवी** के दर्शन किया। देवी ने **माणिक्य राय** से कहा कि तुम इस स्थान पर अपना राज्य स्थापित करो। घोड़े पर चढ़कर तुम जितनी दूर जा सकते हो वह सब स्थल तुम्हारे राज्य में होगा परन्तु यह याद रखना कि जब तक तुम लौट कर न आये उतने समयतक मार्ग में कभी भी अपने पीछे घूम कर नही देखना।

शाकम्बरी देवी के आर्शीवाद वचनों को सुनकर माण्क्यि राय ने उस स्थान से अपने घोड़े पर बैठकर प्रस्थान किया। कुछ दूर जाने के बाद वह देवी के आदेश को भूल गया। उसने अपने पीछे घूमकर देखा। वह आश्चर्य

1. नृपोऽपि निर्मितस्थानो हितदानैकता नधीः।
तत्राचर्यः महाकालं कालं दुष्कर्मवैरिणाम।।

हम्मीर महाकाव्य 9/24

चकित हुआ। जितनी दूर उठती दृष्टि गई उसने सारी मरुभूमि सफेद वस्त्र से ढंकी हुई देखा। **राजस्थान** प्रदेश के राजपूत क्षत्रीय लोग सुप्रसिद्ध नामक सरोवर की उत्पत्ति का यही कारण स्वीकार करते है। **माणिक्य राय** ने इस तालब का नाम देवी **शाकम्भरी** के नाम से **शकम्भरी ह्रद** रखा। शाकम्भरी का नाम मुखशुद्धि के कारण संसार में साम्मट ऐसा नाम पड़ा।[1] इस तालाब के समीप है। छोटे से द्वीप में माणिक्य राय ने भगवती शाकम्भरी देवी की मूर्ति समारोह पूर्वक प्रतिष्ठापित किया। यह दिव्य मूर्ति आज भी वहाँ विराजमान है। उसका वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि भगवती शाकम्भरी अत्यधिक संकल्पों को पूर्ण करने में कल्पलता के समान तथा शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने में माले के समान है। इसके चरणो की वन्दना तीनो लोकों के निवासी करते है। और इसकी सेवा का प्रसाद प्राप्त करते है। शाकम्भरी देवी को प्रसन्न करके शाकम्भरी जलाशय राशि प्रकट कर दिया इस प्रकार का वर्णन यहाँ **हम्मीर महाकाव्य** में कविवर **नयचन्द्र**[2] ने किया है। आज भी न केवल **राजस्थान** में ही अपितु सारे भारत वर्ष में **शाकम्भरी देवी** की कृपा से मन की कामना की पूर्ति के लिए तथा विविध कल्याण की भावना से श्रद्धा पूर्वक दर्शन के लिए जाते है।

---

1. राजस्थान का इतिहास—टाड
2. अन्ल्प संकल्पनमल्पवल्ली विपक्षपक्ष ब्रजभेद भल्लीम।
   त्रैत्रोक्यलोकावलिवन्द्यपादां सेवापरप्रत्त महाप्रसादाम।।
   शकम्भरी स्थानाकृताधिवासां शाकम्भरी नाम सुरी प्रसाद।
   विश्वपतिर्विश्वहिताय शाकंभर्या यः प्रकटी चकार।।

   हम्मीर महाकाव्य 1/80–81

प्रमुख नगर

(काशी) वाराणसी

गंगा नदी के बायें तट पर **वाराणसी** नाम का नगर है। वरुणा तथा गंगा के मध्य में स्थित यह नगर वाराणसी नाम से जाना जाता है।[1] इसे काशी तथा बनारस नाम से भी जाना जाता है। बौद्ध जातकों में वाराणसी का काशी जनपद की राजधानी के रूप में उल्लेख बहुत जगहों पर प्राप्त होता है।[2] यह नगर हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है। यहाँ गंगा में स्नान करने से बहुत पुण्य की प्रापति होती है यह मानकर कहा जाता है काशी का पत्थर भी शंकर की तरह निरन्तर मंगल ही करता है।

आदिकाल से ही वाराणसी नगर विद्या का केन्द्र था। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र ने यही पर चाण्डाल वृत्ति स्वीकार किया था।[3] यह नगर बौद्धो का प्रसिद्ध केन्द्र तथा ऐतिहासिक स्थान है। भगवान बुद्ध ने यहाँ सारनाथ नामक स्थान में बुद्ध धर्म का प्रथम उपदेश किया था।[4] इस समय भी यहाँ उपलब्ध तत्कालीन भग्नावशेष इस नगर की ऐतिहासिकता को प्रतिपादित करते हैं। यहाँ बहुत से देव मन्दिर है उनमें काशी विश्वनाथ मन्दिर[5] परम ऐतिहासिक तथा प्रसिद्ध है।

इस समय भी यह नगर संस्कृत विद्या का प्रधान केन्द्र है। यहाँ पर काशी विद्यापीठ, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय तथा हिन्दू विश्वविद्यालय

---

1. एन्शेन्ट ज्योग्राफी (कनिघम) पृ0 499
2. प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन पृ0 922
3. मार्कण्डेय पुराण, अध्याय 6
4. भारत भ्रमण, पृ0 66
5. भारत भ्रमण, 1/22

ये तीन विश्वविद्यालय है तथा बहुत सी पाठशालाएं हैं। जिनमें वेदशास्त्रों का पठन-पाठन होता है। 1018 ईस्वी में गजनी निवासी महमूद 1194 ईसवी में मोहम्मद गोरी ने लूटपाट करके इस नगर की महती हानि की। औरंगजेब 1658 ईस्वीतः 1606 ईस्वीय पर्यन्त यहाँ के बहुत से मन्दिरों को विनष्ट करके उनके ऊपर मस्जिदों का निर्माण कराया।[1] इस नगर की महिमा का वर्णन भी पुराणादि ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। हम्मीर महाकाव्य के नवम सर्ग में 83 पद्यों में इसका नाम प्राप्त होता है।

कांची

हम्मीर महाकाव्य[2] में भी कांची नगरी का नाम मिलता है। यह नगरी दक्षिण भारतीय नगरियों में प्रसिद्धतम थी। ग्यारहवीं शताब्दी में यह चोल लोगों की राजधानी थी। उस समय यह अति वैभव सम्पन्न नगरी थी। मद्रास नगर से 5 कोश की दूरी पर पश्चिम दक्षिण दिशा की ओर स्थित यह नगरी इस समय कांचीवरम् इस नाम से पुकारी जाती है। यह नगरी क्रमशः पल्लव चोल विजय नगर की राजसत्ता के समय सपरम उन्नति को प्राप्त थी। सभी राजाओं ने यहाँ पर अनेक मन्दिरों तथा भव्य भवनों का निर्माण करवाया था।[3] यह नगरी हिन्दुओं की प्रसिद्ध तीर्थ स्थली है।

यह नगरी सात मोक्ष देने वाली नगरियों में एक है।

> अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।[4]
> पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मुक्ति मुक्ति दाः।।

---

1. भारत भ्रमण—1/22
2. हम्मीर महाकाव्य—10/16
3. हिन्दी विश्वकोष—8 पृ0 419
4. काची माहात्म्य—1/59-60

एतान्यन्यानि पुण्यानि क्षेत्राणि वसुधा तले।
तेषु पुण्यतमा कांची कलि कल्मष नाशिनी।।

अवन्ती

सोलह जनपदों में अवन्ती की भी गणना की जाती है उसकी राजधानी **उज्जयिनी** संसार में प्रसिद्ध थी। इसका निर्माण अच्युतगमी ने करवाया[1] था। स्थूल दृष्टि से वर्तमान **मालवा निमाड** तथा **मध्य प्रदेश** के समीपवर्ती क्षेत्र अवन्ती के ही **कुऔपुरा** गिने जाते थे। दे० रा० भण्डारकर महोदय ने सत्य ही कहा है कि प्राचीन अवन्ती दो भागों में बंटी थी। उत्तर भाग की राजधानी उज्जयिनी, दक्षिण भाग अवन्ती दक्षिणापथ[2] नाम से कहा जाता था। उसकी राजधानी महिष्मती थी। दीर्घनिकाय के महागोविन्द सुन्तान्त के अनुसार महिष्मती अवन्ती की राजधानी थी जिसका राजा वेस्समु था। महाभारत में[3] अवन्ती और माहिष्मती इन दोनों का अलग-अलग दो देश के रूप में उल्लेख मिलता है। **ब्रह्माण्ड पुराण** के अनुसार यही क्षेत्र अवन्तिका कहलाता था।[4] किन्तु निश्चित रूप से यह कहा नहीं जा सकता कि उज्जयिनी अथवा मुख्या अवन्ती नहपान राजा के राज्य के अन्दर स्थित थी।

स्कन्दपुराण[5] के अवन्ती खण्ड के अनुसार महादेव ने त्रिपुरासुर को मार कर अवन्तीयों की राजधानी अवन्तीपुर में आ गये। वही अवन्ती भगवान महादेव के विजय सम्मान के रूप में उज्जयिनी नाम से प्रसिद्ध हुई। हम्मीर महाकाव्य के नवम सर्ग में हम्मीरदेव के दिग्विजय के प्रसंग में अवन्ती का भी उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे कि—

1. दीपवस—57
2. कामइकेल लेक्चर्स—1918 पृ० 54
3. महाभारत—2/31/10
4. ब्रह्माण्ड पुराण—4/40, 91
5. स्कन्दपुराण, अवन्ती खण्ड-43

ततोऽतिवलामारेण कासारित महीतले:[1]।
व्याधादवन्तीं दन्तीन्द्रमदाक्तप्रान्तकननाम्।।

गोपाचल नगर

इस नगर का नाम हम्मीर महाकाव्य[2] में दूसरे सर्ग में प्राप्त होता है। वर्तमान ग्वालियर नगर को पहले गोपाचल नगर कहा जाता था।

वक्षस्थलपुर

हम्मीर महाकाव्य के चौथे सर्ग[3] के 91वें श्लोक में वक्षस्थलपुर नगर का वर्णन दिखलाई पड़ता है किन्तु विस्तार से इसका भी परिचय नहीं प्राप्त होता।

प्रमुख देश

कुन्तल देश

चालुक्यों के समय में कुन्तल देश की सीमा उत्तर में नर्मदा तक, दक्षिण में तुंगभद्रा तक पश्चिम में अरब सागर तक तथा पूर्व में गोदावरी तक थी। इस देश की राजधानी समय भेद के अनुसार नासिक नगर में तथा कल्याण[4] नगर में थी। इसके बाद महाराष्ट्र देश का दक्षिण भाग कुन्तल देश कहा जाने लगा।[5] इस देश में मैसूर देश का उत्तर भाग भी सम्मिलित था।[6] **दशकुमारचरित** के अनुसार यह देश विदर्भ देश[7] के आधीन था। किन्तु

1. हम्मीर महाकाव्य—9/19
2. हम्मीर महाकाव्य—2/285
3. हम्मीर महाकाव्य—4/91
4. इण्डियन एण्टीक्वेरी—खण्ड 22, 1893 पृ० 182
5. अर्ली हिस्ट्री आफ दकन। डा० आर० जी० भण्डारकर। वामन पुराण अध्याय 13
6. जनरल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, 1911 पृ० स० 812
7. दशकुमारचरित—अध्याय 8

दसवीं शताब्दी में विदर्भ देश की स्थिति कुन्तल देश[1] के अन्तर्गत दिखलाई पड़ती है। उत्तरवर्ती शिलालेखों में यह देश कर्णाटक नाम से पुकारा जाने लगा। हम्मीर महाकाव्य के दशम सर्ग के सोलहवें पद्य[2] में कुन्तल देश का मनोरम वर्णन प्राप्त होता है।

मालव देश

कुन्तल देश के उत्तर में मालव देश था। इसकी सीमा शक्ति संगम तन्त्र में निम्न प्रकार से बतलाई गई है—

अवन्तितः पूर्व भागे गोदावर्यस्तथोत्तरे।[3]
मालवाख्यो महादेशो धन धान्य परायणः।।

सातवीं शताब्दी में इसकी सीमा निम्न रूप से उपलब्ध होती है—उत्तर दिशा में वदरी तक, पश्चिम में वल्लभी तक, पूर्व में उज्जैन तक, दक्षिण में महाराष्ट्र तक थी।[4] इस देश की राजधानी धारा नगरी इस नाम से प्रसिद्ध थी। इसके पूर्व मालव देश की राजधानी अवन्ती नगरी भी थी। यह भौगोलिक अनुसन्धान से प्रतीत होता है। मयूर हलायुध-वाग्भट्ट इत्यादि विद्वान मालव भूपति के आश्रित थे। इस देश का नाम पुराणों में भी वर्णित है।[5] हम्मीर महाकाव्य के चौथे सर्ग के 100वें पद्य में मालव देश का नाम प्राप्त होता है।

काश्मीर देश

परि पांचाल इस नाम वाले पर्वतमाला के एवं हिमालय के प्रमुख

---

1 कर्पूरमजरी (राजशेखर कृत) अंक—1
2. हम्मीर महाकाव्य—10/16
3. शक्तिसंगम तन्त्र—3/6/21
4. ज्योग्राफी आफ एन्शेण्ट इण्डिया—कनिघम, पृ0 414
5. ब्रह्माण्ड पुराण—पूर्व खण्ड—अध्याय 48

श्रेणियों के मध्य 850 कोश तक लम्बा 35 अथवा 25 कोश तक चौड़ा क्षेत्र काश्मीर नाम से पुकारा जाता था।[1] **राजतरंगिणी** पुस्तक के अन्वेषण से प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में काश्मीर क्षेत्र में एक बहुत बड़ा तालाब था। जिसे **कश्यप ऋषि ने वराहमूल**[2] के पास पर्वत काट कर प्रवाहित किया था। अतः कश्यप के नाम से ही उस क्षेत्र का नाम **काश्मीर** पड़ा।

प्रद्युमन पर्वत पर (हारीनाम से प्रसिद्ध) कश्यप का आश्रम स्थान था ऐसा प्रतीत होता है। **डा0 विलसन** के मतानुसार काश्यपपुर से ही काश्मीर यह नाम पड़ा लेकिन यह मत डा0 स्टाइन महोदय के अनुसार उचित नही है, उसके अनुसार काश्मीर कभी भी कश्यपपुर नाम से नहीं बना।[3] इस देश का सदा काश्मीर नाम से ही व्यवहार तत्सम्मत है। (टॉलमी)

काश्यपी यह स्थान का परिचय मुलतानों के स्थान से सम्बन्धित है। खासा जाति सम्बन्ध से भी खम्मीर (काश्मीर)[4] व्यवहार से अनुमान किया जाता है किन्तु पौराणिक कश्यप कथा का आधार मानकर कश्यप सम्बन्ध से काश्मीर यह नाम करण अधिक संगत मालूम पड़ता है। विल्हण ने इस देश का वर्णन काव्य में अति सुरम्य शब्दों मे किया है। 631 इस्वीय में चीन देश के ह्वेनसांग नाम यात्री भी यहाँ आया था। उसके यात्रा विवरण में भी काश्मीर देश का वर्णन उपलब्ध होता है।[5] शक्ति संगम तन्त्र मे काश्मीर देश का परिचय इस प्रकार दिया गया है—

---

1. हिन्दी विश्वकोष—2/399
2. राजतरंगिणी (डा0 स्टाइन) पृ0 5
3. एन्शेण्ट ज्योग्राफी आफ काश्मीर (डा0 स्टाइन) पृ0 114
4. हिन्दी विश्वकोष—2/39
5 दि एन्शेण्ट ज्योग्राफी आफ इण्डिया, कनिंघम, पृ0 106

शारदामठमारम्य कुङ्कुमाद्रितटान्तकम्।
तावत् काश्मीर देशः स्थात्पंचाशद्योजनान्तकः।।[1]

पुराणों में भी अनेक स्थलों पर इस देश का वर्णन प्राप्त होता है।[2] हम्मीर महाकाव्य[3] के दसवें सर्ग में काश्मीर देश का नाम प्राप्त होता है।

खण्डिल्ल (खण्डेला)

उस समय खण्डेला नाम का एक राज्य था। रायसल भटनेर समर में समागम से पूर्व खण्डेला राजा के कुमारी के साथ विवाह किया। वह उस विवाह में दहेज के रूप में थोड़ा धन देखकर अप्रसन्न हो गया। अतः खण्डेला राज्य के ऊपर आक्रमण करने के लिए चला। इधर आता हुआ उसे सुनकर भयभीत होकर खण्डेला नरेश अपना नगर छोड़कर भाग गया। खण्डेला वासियों ने रायल के आदेश का पालन किया।

तदनन्तर खण्डिल शेखावाटी क्षेत्र में सम्मिलित हो गया। हम्मीर महाकाव्य के नवम सर्ग में खण्डिल नाम का वर्णन उपलब्ध होता है।[4]

शिरोह (सिरोही)

इस राज्य की गणना अर्बुद प्रदेश (आबू) के मध्य किया जाता था। अरावली पर्वत माला राजस्थान के ईशान कोण से आरम्भ होकर नैऋत्यकोण तक फैली हुई है। तब दक्षिण दिशा में आगे जाकेर गुजरात प्रदेश में सतपुड़ा पर्वत माला के साथ मिलती है। उत्तर दिशा में इसकी पर्वतमाला फैली हुई

---

1. शक्ति सगम तन्त्र—3/6/9
2. वराह पुराण अध्याय—56
3. हम्मीर महाकाव्य—10/23
4. हम्मीर महाकाव्य—9/46

नहीं है परन्तु अजयमेरु के दक्षिण दिशा में जाकर फैल जाती है। सिरोही राज्य का अधिकांश भाग इन पर्वत मालाओं से ढंका हुआ है। आज भी यह क्षेत्र राजस्थान प्रदेश में है। हम्मीर महाकाव्य के दशम सर्ग मे शिरोहनाम से इसका वर्णन प्राप्त होता है। संयोगवश धर्मसिंह से प्रेरित होकर हम्मीरदेव ने जब भोज का अपमान किया तब वह काशी शिरोह मार्ग से ही गया। कहा भी है नयचन्द्र ने

धरणीरमणापमाननादथ भोजः सः शिरोहमागतः[1]
परिमाव्य मुहुः स्वदुर्दशीम निमानेन हृदीत्यचिन्तयत्।।

वर्धनपुर

हम्मीर ने दिग्विजय[2] के बाद वर्धनपुर को अपने प्रताप से निर्धन कर दिया। वर्धनपुर को ही इस समय[3] बदनौर कहा जाता है। यह स्थान निश्चय ही भेदपाट राज्य में स्थित है।

प्रमुख पर्वत

मलय शैल

प्रसिद्ध लेखक **पार्जिटर** प्राचीन मलय शैल विषय में कहते है कि नील गिरि से कन्याकुमारी तक विस्तृत पश्चिम घाट का एक भाग ही मलय शैल कहलाता है। कावेरी नदी के आगे पश्चिम घाट की दक्षिण भाग जो आज त्रावणकोर पर्वत श्रेणी के रूप में कहा जाता है वास्तव में वह ही मलयशैल का पश्चिम अन्तिम भाग है। **हर्षचरित्र**[4] एवं **चैतन्यचरितामृत** ग्रन्थ सिद्ध

1. हम्मीर महाकाव्य—10/1
2. हम्मीर महाकाव्य—9/40
3. हम्मीर महाकाव्य का प्रास्ताविक परिचय-लेखक डा0 दशरथ शर्मा, पृ0 18
4. भागवत पुराण—11/79

करते हैं कि बहुत दूर दक्षिण में मदुरा तक फैली हुई महेन्द्र पर्वत की श्रेणियाँ मलय गिरि के साथ मिलती थी। मलय पर्वत ही श्रीखण्डाद्रि अथवा चन्दनाद्रि भी कहलाता है। यह ही पोडिगायी है। जिसे टालेमी वेट्टिगो[1] ने कहा है। मलयकूट पर्वत अथवा मलगिरि शिखर पर ऋषि अगस्त का पवित्र आश्रम था। मलयगिरि से सम्बन्धित दर्दुरनाम्नी पर्वत श्रेणी है जिसका परिचय नील गिरि अथवा पलनी नामक लघु गिरि श्रेणी देती है। महाकवि कालिदास ने भी रघुवंश[2] में इसका वर्णन किया है। हम्मीर महाकाव्य में ऋतुराज वसन्त के वर्णन के अवसर पर मलय शैल का तथा उससे उत्पन्न हवा का संकेत प्राप्त होता है।[3]

अर्बुदाचल

इस समय जो भूभाग माउण्ट आबू कहलाता है वह ही प्राचीन काल में अरबुद नाम से विख्यात था।

यह स्थान 4000 फुट की ऊँचाई पर स्थित है। इस पर्वत का सबसे ऊँचा शिखर गुरु शिखर कहलाता है जो सागर तल से 5650 फुट की ऊँचाई पर विराजमान है। भूगर्भशास्त्रियों का कहना है कि अर्बुद पर्वत ही पूर्व सागर था कालान्तर में वह ही हरिभूमि के रूप में विर्भूत हुआ और ईशा से 25000 वर्ष पूर्व वह ही पर्वत के रूप में परिणत हो गया। यह स्थान परम्परा के अनुसार ब्रह्मर्षि वशिष्ठ का निवास स्थान था। आर्यो के गुरु का

---

1 भागवत पुराण—11/79

2 रघुवंश—4/46

3. पुपुषेध्रुवं मलयशैलभवोऽनिल एष भोगियुवतिश्वासितै
कथमन्यथाऽस्य सहता भवति स्म वियोगिनी झगितिमूर्च्छयितुम्।

हम्मीर महाकाव्य—5/2

निवास होने से बुद्धिमान लोगों के आने-जाने का केन्द्र हो गया। सम्भवतः बुद्धिमानों का पर्वत होने से इसका नाम अरबुद्ध ऐसा हुआ। वशिष्ठ मुनि के नेतृत्व में यज्ञों द्वारा आर्यों को पवित्र करके आर्य रूप में परिवर्तित होने की प्रथा इसी स्थान से आरम्भ हुई। राजा हम्मीर भी अर्बुद पर्वत पर निष्पक्ष भाव से अनेक तीर्थों में भ्रमण किया तथा अनेक देवताओं का पूजन अर्चन किया। **सिरोही** राज्य के इतिहास में अर्बुद क्षेत्र का विशिष्ट स्थान है। आगरा अथवा दिल्ली से **अजयमेरु, वाग्वर, एरनपुर** तथा **सिरोही** स्थानों को पार करके अहमदाबाद नगर तक जाते हुए रेल मार्ग पर ही अर्बुद मार्ग है। आबू रोड नामक रेलवे स्टेशन आता है। उस स्थान से वस यान से यात्री गण अर्बुदाचल (माउण्ट आबू) जाते हैं।

हिन्दू शास्त्रों में तथा जैन साहित्य में अर्बुदाचल की महिमा अच्छी प्रकार वर्णित है। इस समय भी न केवल भारत में ही अपितु पाश्चात्य देशों में भी इसकी रमणीयता अत्यधिक प्रसिद्ध है। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार अर्बुदाचल पहले ऋषियों की तपश्चर्या के लिए अति उचित कहा गया है। यह भी कहा गया है कि यहाँ पर अति गहरे गड्ढे मे महर्षि वशिष्ठ की कामधेनु अचानक गिर पड़ी। वह अपने दूध से गड्ढे को भर कर निकल कर बाहर आ गयी। बाद में उसने इसके लिए प्रार्थना किया कि यह गड्ढा आप भर देवें। इसके बाद अर्बुद नामक सर्प नन्दी वर्धन को वहाँ लाया उसी ने गड्ढे को भर दिया। उसी सर्प ने भी नन्दीवर्धन पर्वत के नीचे भाग में निवास किया। उसी समय से यह स्थान अर्बुदाचल अथवा नन्दिवर्धन नाम से प्रसिद्ध हुआ। **मेगस्थनीज** एवं **एरियन** के अनुसार पुण्य अर्बुद की समानता **कैपिटेलिया** के साथ किया जा सकता है जो 6500 फिट ऊंचे स्थित अरावली पर्वत माला के अन्य शिखर से ऊंचा है।[1] **पद्मपुराण** में

1 मैक्रिडिल एन्शेण्ट इण्डिया एज डिस्क्राइड बाई मेगस्थनीज एण्ड एरियन—पृ0 147

वर्णन आता है कि साभ्रमती नदी का उद्गम स्थान अर्बुद पर्वत में है।[1]

प्रमुख आश्रम

वशिष्ठ-आश्रम

ब्रह्मर्षि के नेतृत्व में यज्ञों द्वारा आर्यों को पवित्र करके आर्य रूप में परिवर्तित करने की परम्परा यहाँ से हुई ऐसी सम्भावना है। इसी परम्परा के कारण सम्भवतः अर्बुद क्षेत्र के अग्निकुण्ड की परम्परा प्रचलित हुई। यह परम्परा वशिष्ठ के गोमुख से सम्बद्ध है। अर्बुद नगर से एक कोश की दूरी पर गोमुख नाम का स्थान है जहाँ पर 500 सीढ़ियों को पार करके जाया जाता है। यहाँ पर वशिष्ठ का मन्दिर है। यहाँ स्थित अभिलेख से पता चलता है कि 1337 ईस्वी में महादेव पाडही नामक किसी व्यक्ति ने चन्द्रावती चाहमान शासक तेज सिंह के पुत्र कान्हदेव के (कानरदेव) के सहयोग से वशिष्ठ मन्दिर का निर्माण करवाया। मन्दिर के बगल में धारावर्पवस्मार की मूर्ति स्थापित है। कुछ लोग इस मूर्ति को इन्द्र की मूर्ति स्वीकार करते हैं। यहां प्रसिद्ध अग्निकुण्ड आज भी सुरक्षित है।

वशिष्ठ मन्दिर छोटा तथा सामान्य दिखलायी पड़ता है। मूर्ति काले पत्थर से बनी है तथा एक वेदी पर विराजमान है। मन्दिर के प्रवेश द्वार के दोनों तरफ संगमरमर के दो शिलालेख है। मन्दिर में परमार राजा का एक छत्र भी है। उसके समीप ही परमार की पीतल निर्मित मुनि वशिष्ठ के प्रति विनम्र भाव से झुकी हुई मूर्ति स्थापित है। यह ही वशिष्ठ की प्राचीन आश्रम था। **हम्मीर महाकाव्य** में अरुन्धती जानु का आश्रम नाम से इसी का

1. पद्मपुराण—अध्याय 136

उल्लेख किया गया है।[1] यहीं पर राजा हम्मीरदेव अर्बुद देवी की अर्चना करके बाद में विश्राम किया।

वशिष्ठ आश्रम का वर्णन कालिदास के रघुवंश महाकाव्य[2] में भी दिखलायी पड़ता है। यहाँ विश्वामित्र भी आये थे। वाल्मीकि रामायण[3] के आदि काण्ड में भी वर्णित है कि यह आश्रम ऋषियों से युक्त विविध पुष्पों तथा नाना लता वृक्षों के कारण दर्शनीय था। कहा जाता है कि वशिष्ठ ने कामधेनु के अपहरण के समय अपने अग्नि कुण्ड से विश्वामित्र का विरोध करने के लिए परमार नामक किसी योद्धा की सृष्टि की थी। परमार निश्चय ही परमार राजपुत्र कुल का जनक था। रघुवंशी राजा दिलीप अपनी रानी सुदक्षिणा के साथ पुत्र की कामना से गुरु वशिष्ठ[4] के आश्रम में गये थे। ऐसा वर्णन रघुवंश में उपलब्ध होता है।

श्री आश्रम पत्तन

इस आश्रम का वर्णन हम्मीर महाकाव्य में देखा जा सकता है। **केशवरायपत्तन** के साथ इसका भी परिचय जाना जा सकता है। केशवराय पत्तन में यह तीर्थ स्थान है। सुर्जनचरित महाकाव्य के पढ़ने से ज्ञात होता है कि इस तीर्थ का नाम पत्तन था श्री आश्रम नहीं। किन्तु नयचन्द्र ने उसका वर्णन श्री आश्रम के नाम से किया है। हम्मीर देव के पिता राजा जैत्रसिहराज्य

---

1. प्रणम्य महती भक्तिः सर्वदामर्वुदां ततः।
   आश्रमे रुन्धतीजानेर्विशमश्राम क्षणं नृपः।।

   हम्मीर महाकाव्य—9/36

2 रघुवंश महाकाव्य—2/26

3. वाल्मीकि रामायण—51/22-23

4. अथाम्यर्च्य विधातारं प्रयतौ पुत्रकाम्यया।
   तौ दम्पती वशिष्ठस्य गुरो जग्मतुराश्रमम्।।

   रघुवंश—1/35

हम्मीर को देकर श्री आश्रम में आत्मलाभ के लिए चले गये। कहा भी है—

'जैत्र प्रभु स्वात्महितं चिकीर्षन श्री आश्रम पत्तनमन्वचालीत्।'[1]

तीर्थराज पुष्कर

यह तीर्थ स्थान अजयमेर (अजमेर) से उत्तर पश्चिम भाग में 11 किलोमीटर की दूरी पर अरावली पर्वत के सुन्दर अधित्यका गिरि द्रोणी में समुद्र तल से 530 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। अजमेर से पुष्कर मार्ग प्रसिद्ध **आनासागर तालाब** के किनारे-किनारे नाग पर्वत को पार करके पुष्कर क्षेत्र में प्रवेश करता है। पुष्कर तीर्थ की गणना हिन्दुओं के पाँच प्रमुख तीर्थ स्थलों में की जाती है। चार अन्य तीर्थ हैं—**कुरु क्षेत्र, गया, गंगा** तथा **प्रयाग**। पुष्कर का निकट रेलवे स्टेशन है अजयमेरु। जो दिल्ली-अहमदाबाद रेलमार्ग पर स्थित है।

पौराणिक युग से ही पुष्कर में स्नान, दान, तर्पण आदि का अधिक महत्व स्वीकार किया गया है। उसके समक्ष यह समस्या उपस्थित होती है कि यज्ञ कहाँ करना चाहिए। इस पर विचार किया गया कि भगवान विष्णु के नाभि प्रदेश से उत्पन्न कमल को वेदपाठी लोग पुष्कर कहते हैं। तीर्थराज पुष्कर निश्चय ही उसी का व्यक्त रूप है। यही मन में विचार कर उन्होने एक कमल को तीन बार उछाला। इस प्रकार उस कमल के पत्ते जिन तीन स्थानों पर गिरे वहाँ से जल उत्पन्न हुआ। वे तीन स्थान ज्येष्ठ, मध्य, कनिष्ठ पुष्कर के नाम से संसार में प्रसिद्ध हुए। उन तीनों पुष्कर के स्वामी क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश हुए। उनमें जेष्ठ पुष्कर ही सामान्य रूप से पुष्कर नाम व्यवहार में आता है। कनिष्ठ पुष्कर को वृद्ध पुष्कर कहते हैं।

---

1. हम्मीर महाकाव्य—8/106

इस यज्ञ में ब्रह्मा ने सभी देवताओं, ऋषियों तथा मुनियों को आमन्त्रित किया। कार्तिक शुक्ल एकादशी को यज्ञ आरम्भ किया गया। एक योजन तक की भूमि यज्ञ के लिए निर्धारित की गई। यही क्षेत्र पुष्कर तीर्थ हुआ। यज्ञ के आरम्भ में सभी आमन्त्रित देव आदि के आने के बाद जब ब्रह्मा यज्ञ दीक्षा ग्रहण करने केलिए तत्पर हुए तब पता चला कि पत्नी सावित्री वहाँ नहीं थी।

सावित्री को मनाने के लिए नारद गये। सन्देश प्राप्त कर सावित्री ने लक्ष्मी, पार्वती तथा इन्द्राणी के लिए पवन को भेजा और नारद से बोली कि मैं इन सब के साथ आ रही हूँ। इधर दीक्षाका मुहूर्त समाप्तप्राय देखकर अमृत कलश को सिर पर धारण किए हुए विलम्ब के कारण बहुत दुखी हुए। उन्होंने किसी भी कन्या को विवाह के लिए लाने का आदेश इन्द्र को दिया इन्द्र जाकर गुजरात की कन्या को लाया। उसे यज्ञ स्थान पर पहुँचाया गया। पहले तो उस कन्या को गाय के मुख भाग से प्रवेश कराके पूछ के भागसे बाहर निकाल कर शुद्ध किया।

गाय के गर्भ से जन्म के कारण वह कन्या गायत्री नाम से प्रसिद्ध हुई। ब्रह्मा ने उसके साथ विवाह करके यज्ञ आरम्भ किया।

जब तक यज्ञ आरम्भ हुआ तब तक अचानक बीच मे बाधा उपस्थित हो गई। कोई नग्न पुरुष न जाने कहाँ से आत्मत-आत्मत ऐसी चीत्कार करता हुआ अपना भिक्षा पात्र फेंक दिया। बाद में जैसे-जैसे उस कपाल को फेंकने का प्रयास किया जाता वैसे-वैसे कपालों की संख्या बढ़ने लगी। अन्त में भगवान शिव ने ब्राह्मणों के पुनः-पुनः प्रार्थना को सुनकर इस शर्त पर कपालों को बाहर कराया कि पुष्कर में मेरा भी एक विशिष्ट स्थान निर्धारित होगा। इसी के अनुसार शिव लिंग की स्थापना हुई। वही **आत्मतेश्वर** नाम

से प्रसिद्ध हुआ। राजस्थान में उसे ही लोग अटपटेश्वर नाम से याद करते हैं। यज्ञ का रूप पुनः आरम्भ हुआ। इसके बाद सावित्री आकरके ब्रह्मा के साथ बैठी हुई अन्य स्त्री को देखकर अतीव नाराज हुई। ब्रह्मा के दूसरे विवाह के कारण सावित्री ने कुपित होकर ब्रह्मा के साथ उस यज्ञ में आये हुए देवादि लोगों को शाप दिया। इसके बाद बहुत खिन्न होकर पर्वत शिखर पर चली गयीं। वहां सावित्री[1] का एक मन्दिर बना हुआ है। सावित्री देवी के आगमन के बाद ब्रह्मा ने पुनः यज्ञ आरम्भ करने का आदेश दिया किन्तु सभी देवताओं ने कहा कि यज्ञ आरम्भ करने से पूर्व हम सबों का शाप विमोचन आवश्यक है। सावित्री देवी ने सभी के शापों को दूर कर दिया। इसी कारण इसका नाम **शाप विमोचनी** भी है।

इसके बाद दक्षिण दिशा से कुछ ब्राह्मण आये। वे बहुत कुरूप थे। उन लोगों ने जब पुष्कर में स्नान किया तब सुन्दर आकृति वाले हो गये। जहाँ उन लोगों ने स्नान किया था वह स्थान आज सुरूप घाट नाम से पुकारा जाता है। कार्तिक शुक्ल एकादशी में ब्रह्मा के कथनानुसार ब्राह्मणों ने पूर्व सरस्वती में स्नान किया। लुप्त सरस्वती पुष्कर में पंच धाराओं में प्रकटित है। वे धाराएं हैं सुप्रभा, सुधा, कनका, नन्दा और प्राची है। इन पंच धाराओं में प्रथम तीन क्रम से ज्येष्ठ मध्यम तथा कनिष्ठ पुष्करों में गिरती है। नन्दा प्राची तथा सरस्वती नन्द के निकट मिलती है। तब लूनी नदी के नाम से दोनों प्रसिद्ध होती है। इसी दिन यज्ञ में ब्रह्मा के पुत्र सनत ऋषि के पुत्र वटु ने यज्ञशाला में एकसांप छोड़ा जो मृग ऋषि के पैरों में लिपट गया। जिसे कुपित होकर भृगु ऋषि का पुत्र च्यवन ने सांप हो जाओ ऐसा वटु को शाप दे दिया। इस शाप से व्याकुल वटु दादा ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा ने धैर्य

---

1. ब्रह्म पुराण—अध्याय 102

के साथ उसे वर दिया कि वह नागों के नवम कुल का संचालक कुल पुरुष होगा। ब्रह्मा के आशीर्वाद के अनुसार वटु नाग पर्वत पर निवास करने लगा। वही स्थान इस समय नाग कुण्ड नाम से जाना जाता है। यहाँ पर श्रावण महीने के कृष्ण पञ्चमी के दिन स्नान और पूजन का अत्यधिक महत्व है।

ब्रह्मा के यज्ञ का कार्य कार्तिक पूर्णिमा तक निर्विघ्न चला। इस दिन ब्रह्मा के आदेश को प्राप्त कर सभी ब्राह्मण पुष्कर क्षेत्र में विद्यमान सभी कुण्डों की परिक्रमा करके गयाकूप (गयाकुण्ड) में स्नान किया। यज्ञ की पूर्ति के बाद अतिशय पवित्र पुष्कर की महिमा तीर्थ राज के रूप में हुई। बहुत बड़े-बड़े पापी लोग भी पुष्कर में स्नान मात्र से पाप रहित होकर स्वर्ग चले गये। स्वर्ग में मनुष्यों के भीड़को देख कर देवों ने ब्राह्मण से कहा कि ऐसा करने पर सृष्टि क्रम का संचालन अत्यधिक कठिन हो जायेगा। इसे सुनकर ब्रह्मा बोले अब पुष्कर में तीर्थ का वास केवल कार्तिक शुक्ल एकादशी से आरम्भ होकर कार्तिक पूर्णिमा तक ही होगा।

शेष दिनों में तीर्थ आकाश में वास करेगा। 'आपो हिष्ठा भयो भुवः' इत्यादि मन्त्रोंके पाठसे सामान्य दिनों में भी पुष्कर में तीर्थ का फल प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार तीर्थराज पुष्कर का अति महत्व हमारे देश में है।

कार्यों को जानने वाले हम्मीर देव ने पुष्कर में तीर्थ प्राप्त करके देव पूजन दर्शन-दानादि द्वारा पुष्कर में पुण्य कमाया ऐसा इस महाकाव्य में वर्णित है। तीनों पुष्करों की परिक्रमा पंचकोश परिक्रमा कही जाती है। पुष्कर के चारों तरफ स्थित सभी पुण्य स्थलों की परिक्रमा चौबीस कोशी परिक्रमा कही जाती है। यह परिक्रमा सात दिनों मे पूरी होती है। यही पांच भीष्म स्नान नाम से प्रसिद्ध है। जेष्ठ पुष्कर के छः किलोमीटर की दूरी पर गया कुण्डस्थित है जहाँ यदि किसी भी महीने के शुक्ल पक्ष के चतुर्दशी में

मंगलवार होवे तो वहाँ गया तीर्थ का भी आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। इस अवसर पर राजस्थान के विभिन्न मार्गों से हजारों तीर्थ यात्री यहाँ आते हैं।

ज्येष्ठ पुष्कर से एक किलोमीटर की दूरी पर **भर्तृहरि** का एक गुफा है। जनश्रुति से पता चलता है कि यहाँ राजभर्तृहरि ने योग ग्रहण के बाद ही कठिनतर तपस्या की। यहस्थान भी निश्चय दर्शनीय है।

पुष्कर तीर्थ का वर्णन **वृहत्संहिता**[1] के **योगिनी**[2] तन्त्र में भी प्राप्त होता है। हिन्दू समाज में ऐसी धारणा है कि हिन्दुओं की तीर्थ यात्रा तब तक पूर्ण नहीं होती जब तक लोग अति पवित्र पुष्कर तीर्थ में जाकर पुष्कर तालाब में स्नान न कर लें। इससे इस क्षेत्र के हिन्दुओं की अति श्रद्धा प्रतीत होती है।

इस प्रकार की जनश्रुति है कि मन्दसौर के राजा नाहरराव परिहार कभी शिकार के लिए सूअर का पीछा करते हुए पुष्कर क्षेत्र में गये। इन्होंने वहाँ जल से आचमन आदि किया जिससे ये असाध्य चर्म रोग से मुक्ति पा गये। इस प्रकार यह पुष्कर तीर्थ तथा पुष्कर सरोवर के विषय में पुण्यदायी व गौरवमयी कथा प्रचलित है।

प्रमुख सरोवर

जैत्रसागर सर

कोटा राज्य के राजमार्ग में छोटी पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा हुआ **जैत्रसागर** नामक सरोवर है। जिसका निर्माण मीणा प्रमुख सामन्त जैत्र ने

---

1. वृहत्सहिता—31 के योगिनी2 2. योगिनीतन्त्र—2/4/206
2. योगिनीतन्त्र—2/4/206

आरम्भ करवाया था। इसलिए मीणा सामन्त से देवराव ने अधिगृहीत किया था। रावसुर्जन की माता गहलोत वंशीय रानी जैवत जी ने 1625 विक्रम संवत् (1598 ई0) में पुनः इस सरोवर के बन्ध आदि का निर्माण करवाया था। इन्हीं राजमहिषी के द्वारा इसका संवर्द्धन भी हुआ। इसी सरोवर के तट पर महाराव राजा विष्णु सिंह ने सुखमहल नामक सुन्दर भवन का निर्माण करवाया था।

हम्मीर महाकाव्य[1] के छठे अध्याय में सर्वप्रथम जैत्रसागर सरोवर का वर्णन प्राप्त होता है। राजकुमार **हम्मीर देव** अपने समवयस्क तरुणों के साथ जलक्रीड़ा के लिए जैत्रसागर नामक सरोवर गये। उसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया—

तीररुढतरुनीलपलाशस्ममेरजालकहरिन्मणिमुक्तम्।[2]
वृत्तरम्यमवनीवनितायाः कर्णकुण्डलतुलामवहत्पत्।।

जैत्रसर तालाब में नीले कमल खिले हुए थे। अतः नील मलों से समन्वित उस जैत्रसागर की तुलना चन्द्रमा के कलंक के साथ कवि ने किया है। माना जाता है कि चन्द्रमा राहु के भय से पृथ्वी पर आकर यही दृष्टिगत होता है।[3]

दिल्लीश्वर अल्लावदीन का अनुज निसुरत खान जब हम्मीर पर आक्रमण के लिए आया था तब बीच में कुछ समय तक जैत्रसर के पास विश्राम किया। इसका वर्णन महाकाव्य के एकादश अध्याय मे किया गया

---

1. हम्मीर महाकाव्य—6/1
2. हम्मीर महाकाव्य—6/4
3. नीलनीरजदलावलिदम्भव्यक्तलक्ष्मविधृतामृतपूरम्।
   यत्कृतावतरं भुवि रेजे चन्द्रबिमृबमिव राहुभयेन्।।

   हम्मीर महाकाव्य—6/5

है।[1]

पद्मसर

रणस्तम्भपुर के मध्य में पद्मसर विद्यमान है। रणस्तम्भपुर के अभयारण्य में यद्यपि तीन सरोवर है परन्तु उनमें पद्मसर का सर्वाधिक महत्व है। देश के विभिन्न स्थानों और विदेश से विभिन्न प्रकार के पक्षी जल विहार के लिए पद्मसर में आते हैं। इस समय विदेशी पर्यटकों की रुचिवर्द्धन के लिए **राजस्थान** प्रशासन ने इस सरोवर की रमणीयता और निर्मलता को संरक्षित करने के लिए अनेक उपाय किये हैं।

जब हम्मीरदेव ने देखा कि विश्वस्त लोग भी विश्वासघात में तत्पर हैं, युद्ध में बहुत से वीर मारे जा चुके हैं, अब थोड़े से सैनिक अल्लावदीन की विशाल सेना के वेग को रोकने में असमर्थ[2] है तो इन्होंने अपनी प्रिय रानियों को अग्नि में प्रवेश का आदेश दिया और स्वयं दानादि देकर और पद्मसर के किनारे पूजन किया। इस दृश्य का वर्णन इस महाकाव्य में कवि ने इस प्रकार किया है—

स्वयं च कृतदानादि धर्मोऽर्चितं जनार्दनः।
क्षणं पद्मसरस्तीरे निषसाद विषादमुक्।।

इति

पुष्कर सरोवर

यह सरोवर डण्डाकार सदृश है। 90 मीटर गहरा यह सरोवर पुण्यतीर्थ

---

1. मुण्ड्या प्रतोत्यामनुजस्य शस्य श्रीमण्डपे दुर्गवरे निजं च।
सरश्च जैत्रं परितः परेशामतिष्ठिपत् सैन्यामपास्तदैन्य·।।

हम्मीर महाकाव्य—11/24

2 हम्मीर महाकाव्य—13/170-171

स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। इस सरोवर के किनारे 52 घाट हैं, जिनमे वराह घाट, ब्रह्मघाट, गोघाट विशेष रूप से प्रसिद्ध है। जनश्रुति से पता चलता है कि वराह रूप में भगवान विष्णु यहीं प्रकट हुए थे। प्राचीन काल में ब्रह्म घाट पर स्वयं ब्रह्मा ने यज्ञ की पूर्ति करके विष्णु एवं महेश के समक्षस्नान किया था। 1705 ईस्वी वर्ष में सिक्खों के दसवें गुरु गोविन्द सिंह ने गोघाट पर गुरु ग्रन्थ का पाठ किया था। 1809 ई0 में महाराष्ट्र ने यहाँ सवा लाख रुपये व्यय करके एक विशाल छत्र का निर्माण करवाया था। 1911 ई0 वर्ष में जार्ज पंचम की रानी मेरी ने स्त्रियों के स्नान योग्य एक घाट का निर्माण करवाया था। इसी घाट में महात्मा गाँधी की अस्थियाँ विसर्जित की गयी हैं। उसी समय से यह गाँधी घाट के नाम से जाना जाता है। इस घाट में प्रतिदिन प्रातः काल एवं सायंकाल में पुष्कर राज्य का पूजन, अर्चन किया जाता है। तब यहाँ दीपदान आदि किया जाता है। सरोवर के ऊपर तैरते दीपक अद्भुत सौन्दर्य उत्पन्न करते हैं। वहाँ पर स्थित भगवान ब्रह्मा का मन्दिर देश भर में प्रसिद्ध है। राजस्थान के प्रायः सभी राजकुलों एवं श्रेष्ठ लोगों ने पुष्कर क्षेत्र में पुष्कर सरोवर के चारों तरफ अनेकों धार्मिक भवन तथा हर्म्यों का निर्माण करवाया है। पुष्कर तीर्थ की सीमा में जीव हिंसा निषिद्ध है।

उपसंहार

सहृदयों के हृदय को आह्लादित करने वाले काव्य की महिमा निश्चित रूप से वर्णनीय है, जिसके प्रभाव से समय-समय पर भित्ति भी चलने लगती है, पर्वत अट्टहास कर उठते हैं, पाषाण भी करुणा से रोने लगते हैं। भगवान श्री राम का स्वरूप व महत्व का वास्तविक स्वरूप जो कोई भी रहा हो, परन्तु यदि उसकासम्यक् रूप से आदि कवि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य में प्रकाशन न किया होता तो माना जाता है कि सम्पूर्ण संसार में उनके विषय में प्रचार-प्रसार तथा आदर की भावना का उदय न होता। श्री राम की मर्यादा के स्थापना में आदि कवि वाल्मीकि का प्रमुख योगदान है। इसी कारण महाबलिष्ठ और विलक्षण विद्वान होने पर भी रावण अपने दुराचार के कारण कवि के द्वारा तिरस्कृत किया गया और सदाचार आदि गुणों से सुशोभित लोकाभिराम राम आदर प्राप्त किये। यह सब कुछ विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न कवि का ही गौरव है। महाकवि विल्हण ने अपने विक्रमांकदेव चरित में सुस्पष्ट कहा है कि कवि सम्भवतः कभी भी राजा और प्रशासकों के द्वारा कोप भाजन नहीं हुए हैं—

लंकापतेः संकुचितं यशो यत्
यत् कीर्तिपात्रं रघुराज पुत्रः।
स सर्व एवादिकवेः प्रभावो
न वंचनीयाः कवयाः क्षितीन्द्रैः।।[1]

वस्तुतः काव्य सागर के मन्थन से कोई रत्न नहीं उत्पन्न होता अपितु मानव जीवन के सरोवर में विकसित अद्वितीय, अद्भुत और अद्वितीय ऐसा कमल है जिसमें जीवन की सम्पूर्ण सुन्दरता, पावनता और मधुरता की

---

1. विक्रमांक देव चरितम्

अभिव्यक्ति होती है। हम्मीर महाकाव्य भी उस जैसा ही एक महत्वपूर्ण कमल है जिसके मकरन्द रस के पान के अनन्तर भ्रमर स्वरूप रसिक अन्य काव्यकमल के अन्वेषण से उदासीन हो जाता है।

यही कारण है कि कविवर नयचन्द्र द्वारा रचित हम्मीर महाकाव्य का संस्कृत साहित्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

हम्मीर महाकाव्य निःसंदेह एक अद्वितीय ऐतिहासिक महाकाव्य है। इस महाकाव्य के भली-भाँति पर्यालोचन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि महाकाव्यत्व की दृष्टि से यह रचना पूर्णतया सफल है। महाकाव्य की सफलता के लिए जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे सभी इसमें विद्यमान है। न केवल भारतीय काव्य निकष पर अपितु पाश्चात्य काव्य निकष पर यह ग्रन्थ उज्ज्वल मणि की तरह प्रमाणित हो चुका है। इसमें इतिहास के कल्पना के साथ समुचित सन्निवेश से प्रतिपाद्य विषय का महत्व थोड़ा भी कम नहीं हुआ है।

नयचन्द्र ने हम्मीर महाकाव्य की रचना जिस चाहमान वंश के दीपक हम्मीर देव के चरित्र का आलम्बन लेकर लिखा वह कथानाय चिरकाल से सम्पूर्ण संसार में शौर्य कथा के इतिहास में स्वाभिमान रक्षकों में अग्रगण्य है। अतएव आज भी भारत के घर-घर में 'तिरियातेल हम्मीर हठ चढ़े न दूजी बार'' यह उक्ति प्रचलित है। इसलिए हम्मीरदेव को नायक बनाकर संस्कृत, 'हिन्दी, राजस्थानी व अन्य प्रदेशीय भाषाओं में अनेकों ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार के ओजस्वी देशभक्त, तेजस्वी और यशस्वी नायक महापुरुष के चरित्र चित्रण में किस कवि की लेखनी स्वयं ही प्रवृत्त नहीं हुई होगी? नयचन्द्र ने हम्मीर महाकाव्य को कठिन परिश्रम से लिखा। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आश्रय लेकर रचित इस महाकाव्य की कथावस्तु सुघटित

व्यापक और महाकाव्य के अनुकूल है। उदात्त और शालीनता से परिपूर्ण चरित्र-चित्रण महाकाव्य की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं।

हम्मीर महाकाव्य की कथावस्तु की समीक्षा से ज्ञात होता है कि आरम्भ के चार सर्गों में इति वृत्तात्मकता का आधिक्य है। इन सर्गों में चौहान वंश का इतिहास वर्णित है। इसके पश्चात् चार सर्गों में कवि ने महाकाव्यत्व साधक पद्धति का अनुकरण किया है।

इसके पश्चात् पुरानी घटनाएं नवम् सर्ग से लेकर तेरह सर्गों तक चलती हैं। वहीं ही कथा की समाप्ति होती है। चौदहवां सर्ग प्रशस्ति रूप में है। वस्तुतः हम्मीर महाकाव्य एक दुखान्त काव्य है जिसका समापन नायक की मृत्यु एवं पराजय से होती है। इस महाकाव्य में कवि ने यद्यपि ऐतिहासिक तथ्यों की अपेक्षा नहीं की तथापि काव्य पढ़कर पाठक के मन में निराशा नहीं उत्पन्न होती है। अपितु उसका शिर शरणागत, जाति और देश की रक्षा के लिए हम्मीर देव द्वारा दिये गये बलिदान से ऊँचा हो जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह महाकाव्य एक सुघटित, स्फुट अलौकिक तत्व से शून्य और भव्य कृति है। चाहमान वंशीय राजाओं के ऐतिहासिक वर्णन में वर्ष, पक्ष, तिथि, दिन, नक्षत्र आदि के उल्लेख के साथ घटनाओं के कार्य-कारण-सम्बन्ध को प्रदर्शित कर कवि ने इतिहास प्रेमियों के हृदय में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में वीर शब्द का प्रयोग दिखायी पड़ता है। इसका कारम है कि यह वीरांक महाकाव्य है।[1]

रस आदि दृष्टियों से यह महाकाव्य अपने युग की एक श्रेष्ठ रचना है। इसमें श्रृंगार रस को भी वीर रस के साथ-साथ महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसलिए कवि ने कहा है कि—"श्रृंगारवीराद्‌भुतम्"। वीर रस प्रधान इस

---

1. हम्मीर महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग का अन्तिम पद्य

महाकाव्य में यथावसर रौद्र, करुण, भयानक, शान्त, अद्भुत रसों का भी मनोरम उदाहरण मिलता है। इसमें माधुर्य आदि तीनों गुणों का कमनीय समन्वय है। रस परिपाक और प्रवाहपूर्ण वर्णन की दृष्टि से यह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

इस कारण स्वयं नयचन्द्र भी पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों से अपनी कृति को जरा भी न्यून नहीं मानते हैं।

इसमें कहीं भी कथाप्रवाह में अवरोध नहीं दिखायी पड़ता है। शिल्प कौशल की दृष्टि से भी रचना स्मरणीय है। यद्यपि कहीं-कहीं काव्य में थोड़ा स्खलन भी दिखायी पड़ता है किन्तु—एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणोष्विवाकंः।

इस कालिदास की उक्ति के अनुसार उसका दुष्प्रभाव गणनीय नहीं है। भाषा वर्ण्य विषय के सम्यक् प्रकाशन में समर्थ और सरल है। सङ्घटना की दृष्टि से भी यह महाकाव्य प्रशंसनीय है। स्थान-स्थान पर समुचित पदविन्यास के द्वारा काव्य में ध्वनि सौन्दर्य भी उत्पन्न होती है। संगीतात्मक कोमल कान्त पदावली के द्वारा सहृदय के हृदय में स्थायी प्रभाव उत्पन्न करते हैं। अर्थगौरव, भावव्यंजना, उदात्त कोमल व नवीन कल्पना के प्रयोग से इस महाकाव्य के सौन्दर्य में सम्यक् वृद्धि हुई है। महाकवि के सूक्ष्म निरीक्षण, अलंकृत वर्णन पद्धति, उत्कृष्ट प्रकृति प्रेम, असीम शब्द राशि और मौलिक उद्भावना आदि सभी महान गुण यहाँ आसानी से प्राप्त होते हैं। इस महाकाव्य में दृश्य चित्रण स्वाभाविक रूप से हुआ है। अलंकारों के उचित प्रयोग के साथ विविधता का दर्शन भी होता है। कवि द्वारा प्रयुक्त अलंकार सभी जगह कविता कामिनी के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। अनेक प्रकारके छन्दों का प्रयोग करने से काव्य में संगीतात्मकता के साथ ही ध्वन्यात्मक सौन्दर्य

का भी दर्शन होता है। इसमें प्रयुक्त अत्यन्त छोटी परन्तु गौरवपूर्ण सूक्तियाँ कठिन समस्याओं के समाधान में अत्यन्त सहायक है।

इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति के अनुकूल धार्मिक प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होती है। हम्मीर महाकाव्य के मंगलाचरण पद्य में ऋषभ देव, पार्श्वनाथ, वीर विभु शान्तिनाथ आदि जिन देवों के वर्णन के साथ कवि ने ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सरस्वती की भी सृतुति किया है। अनेक प्रकार से उनकी धार्मिक सहिष्णुता का परिचय प्राप्त होता है। नयचन्द्र जैन धर्मावलम्बी होकर भी हिन्दू धर्म के प्रसिद्ध देवों के प्रति आस्थावान थे। हम्मीर देव के माध्यम से बाधा निवारण के साथ-साथ सप्त व्यसन वर्जना की भी शिक्षा कवि ने प्रदान किया है।

इस महाकाव्य में तात्कालिक समाज और तात्कालिक संस्कृति का वास्तविक चित्रण प्राप्त होता है। उस समय के जिन प्रमुख अस्त्रों का प्रयोग होता था, कवि ने उसका भी वर्णन किया है। नर-नारियों की वेशभूषा की तरफ भी कवि ने ध्यान दिया है। उस समय अनेक प्रथाएं प्रचलित थी जैसे पति के आदेशानुसार स्वयं ही अग्नि प्रवेश तथा शासकों द्वारा शत्रु की कन्या को अपने अधीन करना आदि। शकुन शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र के प्रति भी लोगों में आदर तथा विश्वास दिखायी पड़ता है। उस समय भी राजाओं और राज्याधिकारियों के मनोविनोद के लिए धारा सदृश[1] नर्तकियाँ नृत्य करती थीं। इस रचना में चाहमान वंशीय प्रमुख राजाओं, भौगोलिक स्थलों, तीर्थ स्थलों, नगरों, नदी तालाबों, दुर्गों, उस समय के प्रचलित शाकम्भरी अर्बुदा व अचलेश्वर आदि देवताओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है। इन सभी के वर्णन से इस महाकाव्य का ऐतिहासिक महाकाव्यों में महत्वपूर्ण

---

1. हम्मीर महाकाव्य

स्थान है।

पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी महाकवि ने अपनी प्रतिभा का समुचित प्रयोग किया है। जहाँ नयचन्द्र ने कथानक के नायक हम्मीर देव के गुणों की प्रशंसा किया है वहीं उनके कुछ अवगुणों को भी सहृदयों के समक्ष उद्घाटित किया है। इस महाकाव्य के पढ़ने के पशचात् अनुभव किया जाता है कि क्रोध की अधिकता, अनुचित कर ग्रहण से प्रजा में उत्पन्न असन्तोष, पारस्परिक और विश्वस्त होने पर अचानक उनमें अविश्वास भावना ये सभी हम्मीर देव के साम्राज्य पतन के कारण थे।

प्रतिनायक अल्लावदीन के यथासमय उत्पन्न विविध भावनाओं का वर्णन करके कवि ने उसके चित्रण के माध्यम से हम्मीर की उत्कृष्टता प्रदर्शित की है। जहां एक ओर जाजदेव, महिमासाहि, वीरमदेव[1] सदृश वीर स्वामिभक्त वर्णित हैं वहीं दूसरी ओर रतिपाल जैसा कृतघ्न भी विद्यमान है। यवन पक्षीय उल्लूगखान नुसरतखान, मोल्हण खान आदि का वर्णन भी प्राप्त होता है। नारी पात्रों में देवल देवी[2] रंगदेवी का चरित्र अत्यन्त संक्षिप्त होकर हृदय को छू लेते हैं। नर्तकी धारा के प्रति भी कवि की दृष्टि उदार है। इस प्रकार पृथ्वीराज, जैत्रसिंह आदि विशिष्ट शासकों के चित्रण के साथ-साथ महाकवि ने धारा सदृश स्त्रियों कीस्थिति के विषय में समान रूप से ध्यान दिया है। महाकवि नयचन्द्र ने यशःप्राप्ति के लिए हम्मीर देव के चरित्र का वर्णन करने के साथ-साथ अपने पाण्डित्य प्रदर्शन, राजन्य पुपूषा इन तीन प्रयोजनों का आश्रय लेकर हम्मीर महाकाव्य का निर्माण किया। कवि अपने लक्ष्य की प्राप्ति में पूर्ण रूप से सफल हुए। यह ग्रन्थ राजनीति

---

1. हम्मीर महाकाव्य—13/152-162, 181
2. हम्मीर महाकाव्य—13/173

विषयक ज्ञान का भी अनुपम भण्डार है। कान्तासम्मित उपदेश के द्वारा अपने अभिप्राय के प्रकाशन में कवि नयचन्द्र अद्‌भुत रूप से समर्थ हुए हैं।

प्रस्तुत महाकाव्य के अन्तिम सर्ग में कवि ने स्वयं सिद्ध विषयों के प्रति भी संकेत किया है। कवि की मौलिकता यहाँ प्रत्येक श्लोक में दर्शनीय है।

1440 विक्रम तक नयचन्द्र के कवित्व का पूर्ण विकास हो गया था, यह सुनिश्चित है। तात्कालिक राजाओं में पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो गया था कि पूर्ववर्ती कवियों की तरह यह कवि भी महाकाव्य के निर्माण में पूर्णतया समर्थ है। निःसंदेह हम्मीर महाकाव्य महाकवि की प्रौढ़तम रचना है।

संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि, कालिदास आदि महाकवियों के साथ नूतन महाकवियों का महत्व भी अक्षुण्ण है क्योंकि प्रत्येक नूतन काव्य कुछ न कुछ नवीनता अवश्य धारण करता है। प्राचीन कवि ने भी अपने समय में प्रचलित उपलब्ध अनेक ग्रन्थों को पढ़कर और पर्यालोचन करके अपने काव्य कौशल को प्रदर्शित किया है। यद्यपि यह सत्य है कि इस युग में कोई भी कवि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास की तरह नहीं हुआ किन्तु केवल चन्द्रमा से आकाश सुशोभित नहीं होता अपितु दूरस्थ तारागण भी अपने प्रकाश और सौन्दर्य से आकाश को विभूषित करते हैं। अतएव इन सभी का सम्मिलित रूप से महत्व है। प्रत्येक समय अपनी उपलब्धियों के साथ नवीनता चाहताहै। यह नूतन महाकाव्य निश्चय ही एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

इस प्रकार वर्ण्य विषयके कौशल पूर्ण पद्धति के उपस्थापन से मानव हृदय की सुकुमार भावना के प्रकाशन में, समाज के उन्नत चरित्र निर्माण में और उदात्त जीवन के सौजन्य पूर्ण व्यवहार के प्रदर्शन मे विविध राजनीतिक युक्तियों के द्वारा हमारे जीवन से सम्बन्धित विभिन्न सूक्तियों के कारण यह

महाकाव्य अद्वितीय है। मेरे द्वारा लिखित यह शोध प्रबन्ध संस्कृत के क्षेत्र में अनुसंधान तत्पर, चाहमान वंशीय राजाओं की घटनाओं से सम्बन्धित रचनाओं के विषय में और उसमें भी विशेष रूप से हम्मीर महाकाव्य के विषय में जिज्ञासु सहृदयों की जिज्ञासा का सम्यक् समाधान करेगा यह मेरा विश्वास है।

सहायक ग्रन्थों की सूची

क्र.सं.	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशक
1	अमरकोष	अमरसिह	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, 1927
2	अभिज्ञान शाकुन्तलम्	कालिदास	
3	औचित्य विचार चर्चा	खेमेन्द्र	हरिदास सस्कृत ग्रन्थमाला काशी 1933
4	अलंकार सर्वस्वम्	रुप्यक	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, 1931
5	अभिनव भारती	अभिनव गुप्त	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
6	अष्टाध्यायी	पाणिनी	वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
7	अग्निपुराण	व्यास	
8	अजितोदयमहाकाव्य	नित्यानन्द दाधिच	
9	ईश्वर विलास महाकाव्य	श्रीकृष्ण भट्ट	राजस्थान पुरातत्व अन्वेषण मन्दिर पुस्तकालय
10	इतिहास प्रवेश	जयचन्द्र विद्यालंकार	
11	ऋग्वेद सहिता		वैदिक सशोधन मण्डल, पूना
12	काव्य प्रकाश	मम्मट (आचार्य विश्वेश्वर	ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पचम सस्करण, स0 2031
13	काव्य प्रकाश	मम्मट (शशिकला व्याख्या) टीकाकार	चौखम्भा वि0 म0 वाराणसी प्र0 स0
14	काव्य मीमासा	राजशेखर	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
15	काव्यादर्श	दण्डी	
16	कालिदास ग्रन्थावली	सं0 डा0 रेवाप्रसाद द्विवेदी	भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ तृतीय सस्करण वि0 स0 2019
17	काव्यादर्श	दण्डी	चौखम्भा वि0 म0 वाराणसी
18	काव्यालकार	भामह	चौ0 वि0 म0 वाराणसी
19	काव्यानुशासन	हेमचन्द्र	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
20	किरातार्जुनीयम्	भारवि	चौखम्भा संस्कृत, सीरीज, वाराणसी

21	काव्यालंकारसूत्र	वामन	चौ० वि० वि०
22	कुमार सम्भवम्	कालिदास	
23	कीर्तिकौमुदी	सोमेश्वर	
24	कूर्म पुराण	व्यास	
25	कान्हवे प्रबन्ध	कवि पद्नाभ	राजस्थान पुरातत्व अन्वेषण मन्दिर पुस्तकालय
26	कुमारपालचरित	जयसिहसूरि	
27	कर्पूरमंजरी	राजशेखर	
28	गरुड़ पुराण	व्यास	सरस्वती प्रेस, कलकत्ता
29	चित्रमीमांसा	अप्पयदीक्षित	वारीविहार, वाराणसी
30	चौहान साम्राज्य पृथ्वीराज द्वितीय व उनका युग	डॉ० दशरथ शर्मा	
31	छन्दोमजरी	गंगादास	चौ० स० सि० 1942
32	जय वश महाकाव्य	श्री सीताराम पंखकर	
33	जैन साहित्य का वृहद् इतिहास भाग-6	डॉ० गुलाब चन्द्र चौधरी	
34	जैन साहित्य और इतिहास	प० नाथूराम प्रेमी,	बम्बई, 1956
35	13वी, 14वी शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य	डॉ० श्याम शंकर दीक्षित	
36	तारीख मुबारकशाही	प्रशस्ति संग्रह	महावीर ग्रन्थमाला, जयपुर
37	ताबकाते अकबरी		
38	दशकुमारचरित	दण्डी	
39	दशरूपक	धनञ्जय	चौ० स० सि० वाराणसी
40	ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन	
41	धर्मशर्माभ्युदय	हरिश्चन्द्र	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
42	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि	एशियाटिक सोसायटी कलकत्ता—1956
43	नैषधीयचरितम्	श्रीहर्ष	चौ० स० सि० वाराणसी

44	नैषधपरिशीलन	डॉ० चण्डिका प्रसाद शुक्ल	हिन्दुस्तान एकेडमी उ० प्र० इलाहाबाद
45	नवसाहसाकचरितम्	पद्मगुप्त परिमल	
46	पृथ्वीराजरासो	चन्दवरदाई	
47	पुरुष परीक्षा	विद्यापति	
48	पृथ्वी राजविजयम्	जयानक	
49	प्राचीन भारत का इतिहास	पुरुषोत्तम लाल भार्गव	लखनऊ, 1960
50	प्राचीन भारत का इतिहास	डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी	1962
51	प्राचीन राजस्थान पूर्व मध्यकालीन राजस्थान	श्री गोपाल नाराण बोहरा	
52	प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल	विमल चरणलाहा	उ० प्र० हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ
53	प्राकृत साहित्य का इतिहास	डॉ० जगदीश चन्द्र जैन	चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी
54	प्रबन्ध कोष	राजशेखर सूरि	
55	प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन	उदयनरायणराम इलाहाबाद	हिन्दुस्तान एकेडमी
56	बाल भारतम्	अमरचन्द्र सूरि	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई
57	बसन्त विलास महाकाव्य	बालचन्द्रसूरि	
58	ब्रह्माण्ड पुराण	व्यास	वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई
59	भारतीय काव्यशास्त्र	डॉ० सत्यदेव चौधरी	अलंकार प्रकाशन, दिल्ली
60	भारतीय इतिहास का	डॉ० राजबली पाण्डेय	चौ० वि० म० वाराणसी
61	मार्कण्डेय पुराण	व्यास	मथुरा 1941
62.	मत्स्य पुराण	व्यास	आनन्दाश्रम ग्रन्थावली, 1900 स०
63.	महाकवि माघ	डॉ० मनमोहन लाल	नवयुग प्रकाशन, दिल्ली
64	महाभारत	व्यास	गीताप्रेस, गोरखपुर

65	मालविकाग्निमित्रम्	कालिदास	चौ0 स0 सि0 वारामसी, प्र0 सं0
66	मेघदूतम्	कालिदास	चौ0 सं0 सि0 वाराणसी
67	मानवंश महाकाव्यम्	सूर्यनारायण शास्त्री	
68	मृच्छकटिकम्	शूद्रक	चौ0 स0 सि0 वाराणसी
69	रस गगाधर	पं0 राज जगन्नाथ	चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी
70	रघुवंश महाकाव्य	कालिदास	
71	रस सिद्धान्त	डॉ0 नगेन्द्र	दिल्ली
72	राजस्थान का इतिहास	डॉ0 टाड एवं जेम्स	हिन्दी साहित्य मदिर, जोधपुर
73	राजस्थान का इतिहास	सुखवीर सिह गहलोत	हिन्दी साहित्य मन्दिर, जोधपुर
74	राजपूताने का इतिहास भाग 2	स्व श्री0 जगदीश सिह गहलोत	
75	राजस्थान का इतिहास	डॉ0 गोपीनाथ शर्मा	
76	राजस्थान का इतिहास	प्रो0 बी0 एम0दिवाकर	
77	रम्भामजरी	नयचन्द्र	
78	राजपूताने का इतिहास	श्री गौरीशकर हीराचन्द्र ओझा	
79	राजतरगिणी	कल्हण	पण्डित पुस्तकालय, काशी
80	शखस्मृति	शंख	
81	शक्तिसगमतन्त्रम्	—	गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बडौदा
82	लघु सिद्धांत कौमुदी	वरदाचार्य	मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
83	वृत्त रत्नाकर	केदार भट्ट	निर्णय सागर प्रेस, ब्रम्बई
84	विक्रमांदेवचरितम्	विल्हण	हिन्दू विश्वविद्यालय, संस्कृत साहित्य अनुसन्धान समिति
85	वाल्मीकि रामायण	वाल्मीकि	
86	व्यक्तिविवेक	महिमभट्ट	चौ0 वि0 म0 वाराणसी, 1964
87	विष्णु गुणादर्श चम्पूकाव्य	वैंकटाध्वरि	चौ0 सं0 सि0 वाराणसी

88	वामनपुराण	व्यास	काशी राजन्यास, रामनगर वाराणसी, 1968
89	शिशुपाल वध	माघ	पाण्डुरग जावाजी, निर्णय सागर प्रेस बम्बई
90	शिवराज्योदय महाकाव्य	श्रीधरभाष्कर वर्णेकर	
91	शिव पुराण	व्यास	
92	सस्कृत काव्य के विकास मे जैन कवियो का योगदान	डॉ0 नेमिचन्द्र शास्त्री	वाराणसी
93	सस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास	पी0 वी0 काणे दिल्ली—1966	मोतीलाल बनारसीदास
94	सस्कृत विचार विमर्श	द्विजेन्द्र नाथ शास्त्री	भारती प्रतिष्ठानम्
95	सस्कृत साहित्य का इतिहास	छज्जूराम शास्त्री	मास्टर रेवडी लाल
96	सस्कृत साहित्य मे राष्ट्रीय भावना	डॉ0 हरि नारायण दीक्षित	देववाणी परिषद दिल्ली
97	सस्कृत शास्त्रो का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	
98	साहित्य और इतिहास दृष्टि	मेनेजर पाण्डे	
99	सस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	
100	संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ0 रामजी उपाध्याय बेनीमाधव,	राम नारायण लाल, इलाहाबाद
101	सस्कृत साहित्य का इतिहास	कन्हैयालाल पोद्दार	रामविलास पोद्दार ग्रन्थमाला नवलघढ
102	सस्कृत साहित्य का इतिहास	कीथ	1938
103	सस्कृत साहित्य का इतिहास	वाचस्पति गैरोला	चौखम्भा प्रकाशन
104	संस्कृत साहित्य का इतिहास	डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी	

105	साहित्य दर्पण	विमलाटीका	चौ० स० सी० वाराणसी 1960
106	स्कन्दपुराण	व्यास	गुरुमण्डल ग्रन्थमाला कलकत्ता
107	सुर्जनचरित महाकाव्य	चन्द्रशेखर कवि	
108	श्रीमद्भागवतपुराण	व्यास	गीताप्रेस, गोरखपुर
109	सूक्तिमुक्तावली	सोम प्रमाचार्य	श्री शान्तिसागर जैन प्रकाशिनी, सस्था
110	हम्मीरायण	अगरचन्दनाहटा	शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट
111	हम्मीर चौहान विषयो का ऐतिहासिक महाकाव्य	डॉ० हेमलता	अप्रकाशित शोध प्रबन्ध
112	हम्मीर महाकाव्य	नयचन्द्र सूरि	राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर
113	हम्मीर मद-मर्दन	जयसिहसूरि	दलसुख मालवणिया
114	हर्षचरितम्	बाणभट्ट	
115	हम्मीरायण	भाण्डदयास अमरचन्द्रनाहटा	
116	हम्मीर दे चड परं	डॉ० माता प्रसाद गुप्त	
117	हम्मीर रासो	महेश कृत अगरचन्द्र नाहटा	
118	हम्मीर हठ	चन्द्रशेखर वाजपेयी	
119	हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास	डॉ० शम्भूनाथ सिह	
120	एन्शियण्ट इण्डिया	आर० सी० मजूमदार	
121	ज्योग्रेफिकल डिक्शनरी आफ एन्शियण्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया	नन्दलाल डे	लन्दन 1927,
122	द थ्योरी आफ रस एण्ड ध्वनि	डॉ० शंकरम्	
123	हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर	एम० कृष्णमाचारियर	

124	ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर	ए0 मैक्डोनल	देहली 1962
125	अर्ली चौहान डाइनेस्टीज	डी0 शर्मा	
126	राजस्थान प्रो द एजेज्	डॉ0 डी0 शर्मा	
127	ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर	डी0 एण्ड दास गुप्ता	कलकत्ता यूनिवर्सिटी